हिन्दी का

(जीवनी, आत्मकथा, रे

[पंजाब विश्वविद्यालय की पी-

सन्मार्ग प्रकाशन, बंगलो रोड, दिल्ली-७

आधुनिक
हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य

(जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, पत्र एवं डायरी आदि)

[पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० शान्ति खन्ना
एम० ए० पी-एच० डी०

चिरसंचित स्नेह और वात्सल्य की करुणमूर्ति
परम पूज्यनीय स्वर्गीय पितृदेव
की
पुनीत स्मृति में

—शान्ति खन्ना

भूमिका

प्रस्तुत शोध का विषय है—

"आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य"

इसमें १८५० सन् से १९६४ सन् तक के हिन्दी साहित्य में प्राप्त जीवनीपरक साहित्य का विवेचन है। हिन्दी साहित्य के इतिहास एवं समीक्षा सम्बन्धी जितनी भी पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हुई हैं, उनमें गद्य की इन विधाओं का स्वतन्त्र रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। जो भी थोड़ा-बहुत विवेचन प्राप्त होता है, उससे इस साहित्य को साहित्य के अन्य भेदों के समान महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त हो सकता। इस साहित्य की आवश्यकता एवं महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए मैंने इस विषय को चुना है।

इस विषय का हिन्दी साहित्य में अपना ही महत्त्व है। सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि यह साहित्य हमें साहित्यिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का तो परिचय करवाता ही है, साहित्येतर व्यक्तियों की भी झाँकी प्रस्तुत करता है। लेखक अपने जीवन-चरित्र में अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए सम्पर्क में आए अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व की भी झलक प्रस्तुत करता है। ये व्यक्ति राजनैतिक, सामाजिक, एवं धार्मिक भी हो सकते हैं। यही नहीं, इन सभी प्रकार के व्यक्तियों के जीवन-चरित्र स्वतन्त्र रूप से भी प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस साहित्य में साहित्यिक व्यक्तियों की अपेक्षा साहित्येतर व्यक्तियों के व्यक्तित्व की झाँकी भी प्राप्त होती है।

इसके अतिरिक्त साहित्यकार के अपने हाथों से लिखा हुआ, उसके अपने व्यक्तित्व का विवेचन समीक्षक एवं पाठक दोनों के लिए अधिक लाभप्रद होता है। आलोचक अत्यन्त सुविधा से साहित्यकार की कृतियों की आलोचना कर सकता है। इससे साहित्यिक आलोचना में अधिक मनोवैज्ञानिक गहराई, सामाजिक गहनता, कृतियों की प्रामाणिकता तथा यथार्थता का स्वस्थ विकास हो सकता है।

इस प्रकार के साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं का, उसके स्वभाव रुचियों एवं प्रेरणा स्रोतों का स्पष्ट रूप से विश्लेषण होता है जिसके अनुशीलन से पाठक उन सभी विशेषताओं की तुलना करके तादात्म्य या विश्लेषण करता है। इससे साहित्यकार और पाठक में अधिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उसे उस व्यक्तित्व का अध्ययन कुछ और ही आनन्द देता है। ऐसे साहित्य के अनुशीलन से हम साहित्यकार के मानसिक एवं भावात्मक जीवन के और अधिक समीप पहुँच जाते हैं।

इस प्रकार के साहित्य के अनुसंधान, अनुशीलन और संचयन के पश्चात् 'साहित्य के इतिहास'' प्रकाशित होंगे उनकी प्रामाणिकता के विषय में किसी भी क को सन्देह नहीं उत्पन्न हो सकेगा। इन सभी विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए इस विषय पर शोध कार्य किया, और निस्सन्देह इन सभी विशेषताओं का दिग्दर्शन इस साहित्य में हुआ है।

इस विषय से सम्बन्धित एक ग्रन्थ डॉ० चन्द्रावती सिंह द्वारा लिखित "हिन्दी हित्य में जीवन-चरित का विकास" प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त डॉ० कृष्णलाल, ० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय एवं डॉ० भोलानाथ तिवारी के इतिहासों में इस विषय जो भी वर्णन है वह साधारण-सा है। चन्द्रावती सिंह के ग्रन्थ में इस विषय का जो वेचन है वह अनेक सीमाओं से बँधा हुआ है। इस ग्रन्थ में विशेषरूप से जीवनी हित्य की ओर ही ध्यान दिया गया है। जीवनीपरक साहित्य की अन्य विधाओं को स विषय के भीतर ही समेट लिया गया है तथा किसी को भी स्वतन्त्र विधा नहीं ना गया है। रेखाचित्र साहित्य का तो वर्णन ही नहीं है, केवल रेखाचित्र परक कुछ स्तकों का नामोल्लेख लेखिका ने अपनी पुस्तकों की सूची में कर दिया है। इस ग्रन्थ सन् १९५० तक के जीवनी साहित्य का उल्लेख है। लेखिका ने जीवनीपरक साहित्य के अन्तर्गत कल्पनात्मक सृजनपरक साहित्य भी समेट लिया है जिससे उसके थार्थ एवं कल्पना — दोनों पक्षों का गड्ड-मड्ड-सा हो गया है।

जीवनी-साहित्य के प्रकारों का वर्णन करते हुए लेखिका ने जहाँ उसके सैद्धा-न्तिक पक्षों का विवेचन किया है वह भी अपूर्ण ही है। ग्रन्थ में विषय और शैली तत्त्व पर ही अधिक विवेचन है। अन्य तत्त्वों का नगण्य-सा वर्णन है। अन्य किसी भी विधा के सैद्धान्तिक पक्षों का उल्लेख नहीं है। सभी पक्षों के इन्हीं तत्त्वों को स्वीकार किया गया है। इससे स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक पक्ष की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अपूर्ण-सा प्रतीत होता है।

वर्णन ही नहीं है, इतिहास को भी क्रमानुसार सम्यक् रीति से नहीं रखा गया है। प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर किसी भी साहित्य की विधा का विकास वर्णित करना कठिन बात नहीं है। इसलिए लेखिका के ग्रन्थ में इतिहास वर्णन में कोई विशेष अन्वेषण दृष्टिगोचर नहीं होता है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आत्मकथा साहित्य का कहीं नामोल्लेख तक नहीं है।

इसी प्रकार रेखाचित्र, संस्मरण, पत्र एवं डायरी साहित्य के विषय में कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में केवल इन विधाओं की प्रकाशित पुस्तकों का नामोल्लेख ही मिला है कोई विशेष अन्वेषण सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता। वर्णित ग्रन्थ की इन त्रुटियों का इस प्रबन्ध में विसर्जन हुआ है। जहाँ तक हो सका है मैंने इसमें नवीनता लाने का प्रयास पूर्णरूप से किया है। मैंने जीवनीपरक साहित्य की सीमा को प्रामाणिक इतिहास से बाँधा है। अतः लेखक द्वारा लिखे गए पत्र, डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथादि, अथवा अन्य लेखक द्वारा लिखी गई जीवनी, संस्मरण, रिपोर्ताज़ आदि ही शामिल किए गए हैं। हमारी कसौटी यथार्थतः एवं प्रामाणिकता की ओर रही है। अतः हमने इनके कल्पित रूपों को यथासम्भव पृथक् रखा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के **प्रथम अध्याय** में लेखक और उल्लेख्य के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए इस विषय के अनेक प्रकारों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही यह सिद्ध किया गया है कि जीवनीपरक साहित्य के जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र संस्मरण पत्र और डायरी आदि प्रमुख भेद हैं। इसके पश्चात् (ख) भाग में जीवनी से सम्बन्धित तत्त्वों का वर्णन ही नहीं अपितु उनके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। जीवन से सम्बन्धित किन-किन तत्त्वों का विवेचन लेखक को जीवन-चरित्र के अन्तर्गत करना पड़ता है, इसका सम्यक् रूप से वर्णन है। जीवनी से सम्बन्धित तत्त्वों में अन्तर्गत मैंने शारीरिक रचना, व्यक्तित्त्व, वातावरण के भीतर उसके जीवन का तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों में योगदान, एवं उन परिस्थितियों का उसके जीवन में महत्त्व आदि का विवेचन किया है। इससे नायक के जीवन का समाज, धर्म, साहित्य एवं राजनीति से क्या तथा कैसे सम्बन्ध रहे हैं, इनका स्पष्ट रूप से ज्ञान हो जाता है। इसके पश्चात् (ग) भाग में जीवनीपरक साहित्य और इतिहास का तुलनात्मक विवेचन है। इस भाग में मैंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि दोनों विधाओं में भिन्नता अधिक है और समानता कम हैं। विषय, शैली और उद्देश्य सभी दृष्टियों से दोनों विधाओं में भिन्नता है। यदि समानता है तो वह इसी बात में है कि दोनों में जिन घटनाओं का वर्णन होता है वे पूर्णतया सत्य होती हैं।

इसके बाद (घ) भाग में मैंने इन जीवनीपरक तथ्यों की रचना शैलियों का विवेचन किया है। जीवन-चरित शैली, आत्मकथा शैली, रेखाचित्र शैली, संस्मरण

ा, पत्र शैली एवं डायरी शैली का स्वतन्त्र रूप से वर्णन है। इन सभी शैलियों
त विशेषताओं का संक्षिप्त उल्लेख भी किया गया है

द्वितीय अध्याय में सर्वप्रथम तो जीवनीपरक साहित्य की सभी विधाओं, यथा
वनी आत्मकथा, रेखाचित्र संस्मरण, डायरी एवं पत्र साहित्य के सैद्धान्तिक पक्षों
सम्यक् रूप से विवेचन है। सर्वप्रथम 'जीवनी' के अन्तर्गत विभिन्न विद्वानों द्वारा
गई परिभाषाओं का उल्लेख करते हुए उत्कृष्ट परिभाषा की रचना की गई है।
के पश्चात् जीवनी साहित्य के वर्ण्य-विषय, चरित्र-चित्रण, देशकाल, उद्देश्य एवं
जी तत्वों का सम्यक् रूप से विवेचन हुआ है। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक तत्व की
शेषताओं का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। फिर इस साहित्य के विभाजन के
धारों का भी उल्लेख है। विभाजन में मैंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वर्ण्य
रित्र के आधार पर साहित्यिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक पुरुषों की जीव-
यां हो सकती हैं। इसके पश्चात् शैली के आधार पर संस्मरणात्मक शैली में,
त्रन्धात्मक शैली में एवं कथात्मक शैली में भी जीवनियां लिखी जा सकने की
म्भावना है।

इस वर्णित सैद्धान्तिक पक्ष में मैंने यह सिद्ध करने का पूरा प्रयत्न किया है कि रेखाचित्र साहित्य के तत्वों के भीतर जो विशेषताएँ पाई जाती हैं वे अन्य विधाओं के तत्वों से भिन्न हैं। यही कारण है कि यह साहित्य हिन्दी जीवनीपरक, साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

'संस्मरण' के अन्तर्गत भी प्रसिद्ध समीक्षकों की परिभाषाओं का उल्लेख करते हुए एक संशोधित परिभाषा दी गई है। तत्वों के भीतर वर्ण्य विषय, चरित्र-चित्रण, देशकाल, उद्देश्य एवं शैली तत्त्व का वर्णन है। वर्ण्य विषय के अन्तर्गत, विषय सम्बन्धी विशेषताओं की रोचकता, स्वाभाविकता, स्पष्टता एवं सुसंगठितता आदि का विवेचन करते हुए वर्ण्य विषय के प्रकारों का उल्लेख हुआ है। चरित्र-चित्रण के वर्णन में चारित्रिक विशेषताओं एवं उसकोवर्णन करने के प्रकारों का उल्लेख हुआ है। देश-काल एवं वातावरण के सन्दर्भ में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक लेखक आव-श्यकतानुसार अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए देशकाल एवं वातावरण का वर्णन करता है। उद्देश्य के साथ-साथ शैली तत्त्व के अन्तर्गत संस्मरण शैली की सभी विशेषताओं का वर्णन है जिनसे यह शैली परिपक्व एवं पुष्ट बनती है। इसके पश्चात् संस्मरणात्मक साहित्य का विभाजन कितने प्रकार से हो सकता है, इसका भी उल्लेख है।

'पत्र साहित्य' के अन्तर्गत प्रसिद्ध समीक्षकों की पत्र सम्बन्धी विचारधारा का विश्लेषण करते हुए पत्र लेखक एवं भावग्राहक के सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। इसके पश्चात् व्यक्तिगत परिभाषा का उल्लेख है। यह परिभाषा सभी विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के विश्लेषण के पश्चात् दी गई है। पत्र साहित्य के तत्वों का विवेचन भी किया गया है। वर्ण्य विषय के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि विषय की दृष्टि से पत्र कई प्रकार के हो सकते हैं। वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट बनाने के लिए जिन विशेषताओं का पत्र में होना आवश्यक है उनका भी वर्णन है। अन्य तत्त्व 'पात्रों और घटनाओं से सम्बद्ध और उनके प्रति प्रतिक्रिया' के प्रसंग में यह स्पष्ट किया गया है कि पत्र में लेखक किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का केवल वर्णन ही नहीं करता अपितु आवश्यकतानुसार टीका टिप्पणी भी करता है। उद्देश्य एवं देशकाल वातावरण के साथ-साथ शैली तत्त्व के अन्तर्गत पत्र शैली की विशेषताओं का वर्णन है। शैली सम्बन्धी विशेषताओं में से आत्मीयता, संक्षिप्तता, स्पष्टता, स्वाभाविकता एवं भाव-ग्राहकानुकूलता का स्पष्ट रूप से विवेचन किया गया है। इन विशेषताओं के महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया है। वर्गीकरण के प्रसंग में साहित्यिक, आत्मकथात्मक, अन्य चरित्रमूलक, वर्णनात्मक एवं विचारात्मक पत्रों का विवेचन है।

प्रसिद्ध समीक्षकों द्वारा दी गई डायरी साहित्य की परिभाषाओं का विश्लेषण करते हुए एक संशोधित परिभाषा देने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त डायरी साहित्य के सैद्धान्तिक पक्ष का स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया गया है। तत्वों के अन्तर्गत विषयवस्तु का विस्तार, सम्पर्क में आए हुए व्यक्तियों एवं घटनाओं से

ा सम्बन्ध और उनकी प्रतिक्रियाएँ, देशकाल-वातावरण, उद्देश्य एवं शैली
लिया गया है। प्रत्येक तत्त्व की पृथक्-पृथक् विशेषताओं का वर्णन स्पष्ट रूप
गया है। डायरी साहित्य के वर्गीकरण के आधारों का भी स्पष्ट रूप से
है।

जीवनीपरक साहित्य के रूपों के अन्तर्सम्बन्धों के अन्तर्गत मैंने आत्मकथा जीवनी,
था डायरी, आत्मकथा संस्मरण एवं रेखाचित्र और संस्मरण का तुलनात्मक
न प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट करने का पूर्णतया प्रयास किया है कि इन विधाओं
स्परिक सम्बन्ध होते हुए भी कुछ असमानताएँ हैं जिनसे जीवनीपरक साहित्य में
पृथक्-पृथक् अस्तित्व है।

इन जीवनीपरक साहित्य की विधाओं द्वारा जिन विशिष्ट शैलियों का प्रव-
हिन्दी साहित्य में हुआ है उन सभी शैलियों की विशेषताओं का स्पष्ट रूप
वचन किया गया है। इसके पश्चात् इस जीवनीपरक साहित्य का गद्य की अन्य
ओं से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। बीच में गद्य की उन
को रखा गया है जिसका सम्बन्ध अन्य वर्णित दोनों विधाओं से है। यहाँ नाटक,
ास और जीवनी, जीवनी संस्मरण और आत्मकथा, पत्र, रेखाचित्र तथा डायरी,
त, काव्य तथा गद्यगीत एवं रिपोर्ताज और पत्रकारिता के सम्बन्ध को स्पष्ट करने
यत्न हुआ है। इन विधाओं के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए अनेक
तीय एवं पाश्चात्य आलोचकों के मतों को भी आवश्यकतानुसार प्रस्तुत किया
है।

तृतीय अध्याय में सर्वप्रथम जीवनीसाहित्य के तत्त्वों का जो विवेचन द्वितीय
याय में किया गया था उनमें से प्राप्त विशेषताओं को सोदाहरण देने का प्रयत्न
ा गया है। इससे यह स्पष्ट हो गया है कि ये सभी तत्त्व किसी भी जीवन-चरित्र
विश्लेषण सम्यक् रूप से करने में पूर्णतया सहायक सिद्ध होते हैं। इसके पश्चात्
.५० से लेकर १९६४ तक के जीवनी साहित्य के इतिहास का उल्लेख किया गया
। इस समस्त विकास को भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग एवं वर्तमानकाल — तीन भागों में
भाजित किया गया है। इस विकास को मैंने प्रकाशित जीवनी साहित्य के आधार
[illegible] किया है। जिन जीवन-चरित्र एवं उनके लेखकों का साहित्य एवं इतिहासपरक
[illegible] है, पूर्णरूपेण उनका विवेचन मैंने कर दिया है। प्रकाशित जीवनी साहित्य में
मृतराय द्वारा लिखित 'प्रेमचन्द कलम का सिपाही' जीवनी विशेष रूप से महत्व
[illegible] जा सकती है। इसके पश्चात् मैंने सर्वप्रथम उत्कृष्ट साहित्यिक जीवनी
[illegible] बाबू शिवनन्दन सहाय को माना है जो द्विवेदी युग के प्रसिद्ध लेखक थे। इन्हीं
[illegible] द्वारा हिन्दी जीवनी साहित्य का विशेष रूप से प्रारम्भिक विकास हुआ है। [illegible]
[illegible] इस दिशा में [illegible] 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' [illegible]
[illegible] हिन्दी साहित्य में [illegible] स्थान [illegible]
[illegible] जीवनी [illegible] लिखी गई है। [illegible]

प्रकाशित जीवनी साहित्य के आधार पर विभाजन खण्ड के अन्तर्गत किया है। यह विभाजन वर्ण्य-चरित्र के आधार पर किया गया है जिसमें साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियों को लिया गया है। इन सभी प्रकार की जीवनियों की विशेषताएँ दिखलाने का पूरा प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त शैली के आधार पर इसका विभाजन किया गया है जिसमें यह सिद्ध किया गया है कि हिन्दी जीवनी साहित्य अनेक प्रकार से लिखा गया है। निबन्धात्मक एवं औपन्यासिक शैली में लिखी हुई जो जीवनियाँ प्राप्त होती हैं उनका वर्णन भी हुआ है। साथ-ही-साथ शैली सम्बन्धी गुणों का वर्णन भी यथास्थान किया गया है।

'आत्मकथा साहित्य' सम्बन्धी अध्याय में उन तत्वों का सोदाहरण विवेचन किया गया है जिनका विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है। इस सैद्धांतिक पक्ष को सोदाहरण वर्णन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस साहित्य का भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, और इसके तत्वों की विशेषताएँ साहित्य के अन्य तत्वों से भिन्न हैं। आत्मकथा साहित्य के विकास का जहाँ विवेचन किया गया है उस समस्त विकास को मैंने भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग एवं वर्तमानकाल भागों में विभाजित किया है। भारतेन्दु युग के अन्तर्गत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास एवं श्रीधर पाठक प्रभृति लेखकों का वर्णन है। इन सभी लेखकों ने आत्मचरित लिखने का बहुत कुछ यत्न किया है परन्तु वे अपने इन प्रयासों में सफल नहीं हो सके हैं। द्विवेदी युग के अन्तर्गत आत्मकथा साहित्य का विश्लेषण करने के उपरान्त मैंने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस युग में आत्मकथा साहित्य का विकास पूर्णगति से हुआ। तब अच्छे लेखकों के आत्मचरित प्राप्त होते हैं। इस युग में मौलिक आत्मकथाओं के साथ-साथ अनूदित आत्मकथाओं की भी कमी नहीं रही। इसके अतिरिक्त वर्तमान काल में आत्मकथा साहित्य का विश्लेषण करते हुए मैंने साहित्यिक आत्मकथाओं में से आचार्य चतुर्सेनशास्त्री की 'मेरी आत्मकहानी' को सप्रमाण उत्कृष्ट आत्मकथा माना है। इसके पश्चात् पत्र-पत्रिकाओं एवं स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित आत्मकथा साहित्य के आधार पर विभाजन किया गया है। लेखकों के आधार पर जो वर्गीकरण किया गया है उसमें कवि, कथा, लेखक आलोचक एवं राजनैतिक धार्मिक पुरुषों को लिया गया है। शैली के आधार पर जो वर्गीकरण है उसमें निबन्धात्मक शैली, संस्मरणात्मक शैली, डायरी शैली एवं आत्मकथात्मक जीवन-चरित शैली पर लिखी हुई आत्मकथाओं का वर्णन है। इन विभिन्न शैलियों की विशेषताओं का भी साथ-साथ उल्लेख किया गया है।

रेखाचित्र साहित्य के भी उन सैद्धान्तिक तत्वों का सोदाहरण विश्लेषण किया गया है जिनका सैद्धान्तिक निरूपण द्वितीय अध्याय में हो चुका है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह बताई गई तत्वों सम्बन्धी विशेषताएँ रेखाचित्र साहित्य पर पूर्ण रूप से लागू होती हैं। रेखाचित्र साहित्य का आरम्भ मैंने १६२४ सन् में स्वीकार किया है और पद्मसिंह शर्मा को सर्वप्रथम लेखक माना है। इसके पश्चात् जितना भी

न साहित्य पत्र-पत्रिकाओं एवं स्वतन्त्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ, ी का विश्लेषण 'विकास खण्ड' में किया गया है। इसके साथ मैंने यह स्पष्ट कि इस साहित्य की उन्नति विशेषतया पत्र-पत्रिकाओं के सहयोग से हुई है। त्र साहित्य का विभाजन मैंने समस्त साहित्य को दृष्टि में रखते हुए किया है। षय के अनुसार—साहित्यिक लेखकों के रेखाचित्र, मानवीय गुणों से सम्पन्न ण पुरुषों के रेखाचित्र, राजनैतिक पुरुषों के रेखाचित्र एवं मानवेतर जड़ या सम्बन्धी रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। इन सभी प्रकार के रेखाचित्रों की विशेष- का उल्लेख भी किया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में रेखाचित्र य कई प्रकार से लिखा गया है। कथात्मक शैली में लिखा हुआ रेखाचित्र य, संस्मरणात्मक शैली में लिखे हुए रेखाचित्र एवं प्रतीकात्मक शैली में लिखे खाचित्र प्राप्त होते हैं। इन सभी प्रकार की शैलियों की विशिष्टता का उल्लेख कया गया है।

इसी प्रकार संस्मरणात्मक साहित्य की भी आरम्भ में परिभाषा देते हुए उसके । तत्त्वों का विवेचन स्पष्ट रूप से किया गया है। प्रत्येक तत्त्व की विशेषता को हरण प्रस्तुत किया गया है। संस्मरण साहित्य के विकास में मैंने यह स्पष्ट किया ि हिन्दी साहित्य में यह सन् १९२० ई० के पश्चात् हुआ है और इसके सर्वप्रथम क बालमुकुन्द गुप्त हैं। हिन्दी संस्मरण साहित्य का विकास मैंने प्रकाशित पत्र- काओं एवं प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर अंकित किया है। इसके अतिरिक्त संस्मरण लेखकों की कृतियों का सम्यक् रूप से विवेचन भी किया गया है। समस्त साहित्य का विभाजन विषय वस्तु के आधार पर, वर्ग के आधार पर, क एवं शैली के आधार पर किया गया है। इस प्रकार समस्त संस्मरणात्मक त्य का विवेचन पूर्णरूपेण किया गया है। सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों यथासम्भव पूर्णरूपेण लिखा गया है और जितना भी अधिक-से-अधिक साहित्य मिल ा है उनका विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

प्रमुख रूप से पत्र-पत्रिकाओं का ही सहयोग रहा है। विभाजन करते समय समस्त पत्र साहित्य का अवलोकन करते हुए इसको साहित्यिक, आत्मकथात्मक अन्य चरित्र-मूलक वर्णनात्मक एवं विचार प्रधान पत्रों की श्रेणी में बाँटा गया है। इन सभी प्रकार के पत्र लेखकों एवं उनकी इस साहित्य से सम्वन्धित विशेषताओं का वर्णन करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

डायरी-साहित्य के सैद्धान्तिक पक्ष का भी उदाहरण सहित स्पष्ट वर्णन किया गया है। हिन्दी साहित्य में डायरी साहित्य के प्रारम्भिक लेखक के रूप में वालमुकुन्द गुप्त को स्वीकार किया गया है। इसके पश्चात् हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की छानवीन से जो भी इस विषय में सामग्री प्राप्त हुई है उसका क्रमिक विकास दिया गया है। इसके साथ ही प्रकाशित डायरियों एवं डायरी सम्बन्धी पन्नों को भी लिया गया है। डायरी साहित्य की पर्याप्त सामग्री मुझे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त हुई है जिनके नाम मैंने यथास्थान दिए हैं। पंडित सुन्दरलाल त्रिपाठी और डा० धीरेन्द्र वर्मा को हिन्दी डायरी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट लेखक माना जा सकता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा की डायरी यद्यपि उनके सम्पूर्ण जीवन का परिचय नहीं देती परन्तु उसमें जो विशेषताएँ प्राप्त होती है वे किसी भी डायरी में नहीं पाई जातीं। उक्त विशेषताओं को देने का प्रयास किया गया है। समस्त डायरी साहित्य का विभाजन लेखकों के अनुसार, विपय-वस्तु के अनुसार एवं स्थानहेतुकादि के आधार पर किया गया है।

इस समस्त जीवनीपरक साहित्य के विवेचन के पश्चात् अष्टम अध्याय में मैंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि अमुक-अमुक काल में किस-किस विधा की विशेषरूप से प्रगति हुई और क्यों हुई? जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, पत्र एवं डायरी साहित्य का किस काल में इन विभिन्न विधाओं का विशेष रूप से प्रादुर्भाव हुआ क्योंकि इनका विकास या विशेप प्रगति तात्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल थी। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग एवं वर्तमानकाल की समस्त परिस्थितियों का विवेचन करते हुए एवं लेखकों पर इन परिस्थितियों का प्रभाव दिखाते हुए इन जीवनीपरक साहित्य की विधाओं की विशेष प्रगति का भी वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् साहित्येतिहासों के आलोक में जीवनीपरक साहित्य का क्या महत्व है इसका सर्वप्रथम मौलिक विवेचन किया गया है। गार्सा द तासी से डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी तक के इतिहासों तक सभी साहित्य के इतिहासों के विश्लेपण के द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि इन इतिहासकारों ने किसी भी लेखक के जीवनीपरक तत्वों की भूमिका का पूर्णतया निवेश नहीं किया है। इनकी जीवनीपरक ऐतिहासिकता की सीमा वंश जन्म-तिथि जन्म स्थान आदि तक ही सीमित रही है। इतिहासकार तो देश की परिस्थितियों का वर्णन करके उनका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर दिखलाता है। वह किसी विशेप व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण नहीं करता। उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त जीवनीपरक साहित्य की महत्ता को संक्षेप में वर्णन किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत इस समस्त जीवनीपरक साहित्य के अनुशीलन एवं विश्लेषण से मुझे क्या उपलब्ध हुआ है उसका आलोचन किया गया है। इसके साथ ही इस साहित्य के द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास में क्या-क्या परिवर्तन आ जाते हैं, इनका भी समावेश किया गया है।

यदि इस ग्रन्थ में मैं कुछ नवीनता ला सकी हूँ तो मेरा परिश्रम सार्थक माना जाएगा। इस प्रबन्ध के निर्देशक डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने अपने निर्देशन द्वारा मेरे इस कार्य को आगे बढ़ाया है। इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा मुझे गुरुवर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी से मिली जिन्होंने मुझ हतोत्साहित को प्रेरित किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में मुझे इतने लोगों से उपकृत होना पड़ा है कि उनका उल्लेखमात्र तो अकृतज्ञता होगी लेकिन फिर भी मैं इतना कह देना चाहती हूँ कि परिवार के सदस्यों में से इस कार्य को करने की प्रेरणा मुझे अपने पिता आदरणीय विद्यारत्न विद्यालंकारजी एवं भैया डा० अमरजीवन से मिली है। उन सभी लोगों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे सहायता पहुँचाई है।

इसके अतिरिक्त मैं काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष, मारवाड़ी पुस्तकालय दिल्ली के अध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं पंजाब विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों के व्यवस्थापकों का भी धन्यवाद करती हूँ जिनके सहयोग से मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सकी हूँ।

सन्मार्ग प्रकाशन के व्यवस्थापक श्री सुरेन्द्रजी का भी हार्दिक धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने बहुत ही अल्प समय में इस शोध ग्रन्थ को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

—शान्ति खन्ना

विषय-सूची

1 जीवनीपरक साहित्य में लेखक और उल्लेख्य के सम्बन्ध

जीवन और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य के अभाव में जीवन नीरस लगता है और जीवन के अभाव में साहित्य एकांगी बन जाता है। जीवन की प्रतिच्छाया होने के कारण साहित्य भी विविध भावनाओं और मनोविकारों से अनुप्राणित रहता है। साहित्य को जीवन से पृथक नहीं रखा जा सकता। साहित्य और जीवन में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का सम्बन्ध है। जीवन की प्रेरणाएँ ही साहित्य की प्रेरणाएँ होती हैं। जीवन का जटिल इतिहास ही साहित्य का मुख्य विषय होता है। इससे स्पष्ट है कि साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है वरन् वह उसका ही मुखरित रूप है। वह जीवन के महासागर से उठी हुई उच्चतम तरंग है। मानव जाति के भावों विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में प्रसारित होती है। साहित्य जीवन विटप का मधुमय सुमन है। वह जीवन का चरम विकास है किन्तु जीवन के बाहर उसका अस्तित्व नहीं। उसमें पाचन (Assimilation), वृद्धि (Growth), गति और पुनरुत्पादन (Reproduction) आदि जीवन की सभी क्रियाएं मिलती हैं। अंग अंगी से भिन्न गुण वाला नहीं होता, इसलिए जीवन की मूल प्रेरणाएं ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं। जो वृत्तियाँ जीवन की और सब क्रियाओं की मूल स्रोत हैं वे ही साहित्य को भी जन्म देती हैं।[1] इस प्रकार साहित्य में जीवन की विशाल रूप से विवेचना होती है। जीवन का ऐसा कोई भाग नहीं जिसका साहित्य में उल्लेख न हो, जिसे स्पष्ट और व्यक्त न किया गया हो। जिस भी साहित्य में जीवन के तत्वों का विवेचन नहीं होता वह महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता। अतः जीवन और साहित्य का अविच्छिन्न एवं अटूट सम्बन्ध है।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना अस्तित्व होता है। वह अपने व्यक्तिगत मानवीय गुणों के कारण समाज में अपना स्थान रखता है। उस व्यक्तित्व का अध्ययन अत्यन्त रोचक एवं आकर्षक होता है। पाठक उसके जीवन की गूढ़ एवं गुह्य समस्याओं से परिचित हो जाता है जो उसे अन्य व्यक्तियों के जीवन से पृथक् रखती हैं। इस जीवनीपरक साहित्य में हमें उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है जो साधारण होते हुए भी साधारण नहीं हैं एवं जो अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं के कारण असाधारण बन पड़े हैं।

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन, ले० गुलाबराय, द्वितीय संस्करण, पृ० ६६

जीवनीपरक साहित्य में लेखक किसी विशेष व्यक्ति को, घटना को, मित्र एवं यात्रा-वर्णन के साथ व्यक्तिगत जीवन को अपना विषय स्वतन्त्र एवं पृथक् रूप में अपना सकता है। जब वह किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का चित्र कुछ सामाजिक घटनाओं के आधार पर वर्णन करता है तब वह जीवनी साहित्य के अन्तर्गत आता है। लेखक उसी व्यक्ति को अपनी लेखनी का आधार बनाता है जिससे वह स्वयं प्रभावित होता है और साथ में उसको यह विश्वास हो जाता है कि अमुक व्यक्ति के जीवन चरित्र से पाठकगण प्रभावित हो सकते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति साहित्यिक ही हो, राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेपण एवं विवेचन कर सकता है। जीवन चरित्र लेखक अपने चरित्र नायक के जीवन के व्यक्तित्व से प्रभावित अवश्य होता है और उसके चरित्र-चित्रण से उसे मानसिक संतोप होता है। इस प्रकार जीवनीपरक साहित्य में लेखक का विषय किसी श्रद्धेय व्यक्ति का जीवन चरित्र लिखना भी होता है जिसे 'जीवनी' कहा जाता है। इस प्रकार जीवनीपरक साहित्य का प्रथम प्रकार 'जीवन चरित्र, रहा।

जीवनीपरक साहित्य में **'संस्मरण साहित्य'** का भी अपना विशिष्ट स्थान है। जब लेखक अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन करता है तब उसे 'संस्मरण' कहते हैं। संस्मरण में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करता है जिनसे लेखक के जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों का संकेत मिलता है और जो अन्य जनों के कौतूहल को शान्त करने में सहायक होते हैं। इन घटनाओं का उल्लेख वह इसलिए करता है कि ये समय-समय पर उसे प्रेरणा देती रहें और साथ ही इनके वर्णन से उसे मानसिक संतोष प्राप्त होता है। संस्मरण भी प्रसिद्ध व्यक्ति लिख सकता है।

जब लेखक अपने प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाओं का वर्णन ही नहीं इसके साथ-साथ मानसिक प्रतिक्रियाओं का वर्णन भी जिस पुस्तक में संक्षिप्त एवं सुसंगठित रूप से करता है उसे **डायरी** कहते हैं। इसमें लेखक जीवन में अनुभव की हुई कोई ऐसी घटना, नई अनुभूति, विचित्र वस्तु का वर्णन करता है जो सामान्यतः मानव समाज के लिए भी शिक्षाप्रद नवीन एवं लाभदायक होती है। डायरी में लेखक व्यक्तिगत जीवन की गुह्य गुत्थियों का विवेचन करता है इस प्रकार साहित्य की यह विधा जीवनीपरक साहित्य में अपना स्थान रखती है।

पत्र-साहित्य भी जीवनीपरक साहित्य के अन्तर्गत ही जाता है। पत्र वह लेख है जो दूरस्थ व्यक्ति को प्रेषित किया जाता है और जिसमें लेखक अपनी भावनाओं को उसकी रुचि, समझ एवं योग्यता के अनुसार वर्णन करता है। इसमें लेखक व्यक्तिगत जीवन के विषय में एवं अन्य व्यक्ति के विषय में अपने विचार प्रकट कर सकता है। जीवन चरित्र लेखक के लिए पत्र विशेष रूप से सहायक होते हैं।

इस प्रकार जीवनीपरक साहित्य के जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण पत्र एवं डायरी आदि भेद हैं। विषय एवं शैली की दृष्टि से इनका अपना-अपना महत्व है।

जीवनी से सम्बन्धित तत्त्वों का कथन और उनकी विशिष्टता

प्रत्येक जीवन चरित्र लेखक अपने नायक के जीवन की विशेष प्रकार की विशेषताओं एवं विशिष्ट प्रकार के जीवन सम्बन्धी तत्त्वों के चुन लेने से ही जीवन चरित्र लिखने में सफल हो सकता है। यही बात आत्मकथा लेखक के विषय में कही जा सकती है। इस प्रकार प्रत्येक लेखक को जीवन सम्बन्धी तत्त्वों का चयन करना पड़ता है और इसके साथ ही उसके जीवन से उन तत्त्वों का क्या सम्बन्ध है यह भी दिखलाना पड़ता है।

प्रत्येक लेखक जिस भी व्यक्ति को अपना नायक चुनता है सर्वप्रथम उसके सम्मुख उसकी आकृति और शारीरिक रचना आती है। लेखक अपने पाठकों को अपने

यक के शारीरिक गठन के विषय में अवश्य ज्ञान करवाता है। जीवनी के इन तत्त्व वर्णन ही अपने जीवन चरित्र में नहीं करता प्रत्युत उसका जो भी प्रभाव उसके वन पर पड़ता है उसको दिखलाता है। शारीरिक रचना में शरीर के सभी अवयवों वर्णन तो होता ही है उसके साथ लेखक नायक के व्यक्तित्व को इन अवयवों में प्रका-त दिखलाता है। प्रत्येक व्यक्ति के अवयव एक जैसे होने पर भी उनमें भिन्नता होती इसीलिए जीवनी लेखक को इन अवयवों का ज्ञान पाठक को करवाना पड़ता है। न शारीरिक अवयवों के आकार-प्रकार एवं विशिष्टता का वर्णन न करने से पाठक ो उस व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ज्ञान नहीं हो सकता। जिस प्रकार किसी भाषा ा ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उसके शब्दों का अध्ययन करना आवश्यक है उसी रकार किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम उसके शारी-रिक अवयवों की विशिष्टता को देखना पड़ता है।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को आंका जाता है। व्यक्तित्व की नम्र और क्रूर एवं शक्तिशाली विशेषताओं को नायक की शारीरिक रचना व शारीरिक गठन से भी आंका जाता है। व्यक्तित्व को पहचानने के लिए शारीरिक गठन का अपना ही स्थान है। जिसका व्यक्तित्व शक्तिशाली, सख्त एवं क्रियाशील होता है वह अपनी इन चारित्रिक विशेषताओं को जीवन के आवश्यक प्रथम स्तर पर ही अपनी शक्ति और स्वभाव के सख्त होने को अपनी गिड़गिड़ाती हुई आवाज से, सख्त हड्डियों से और भारी चाल से दिखा सकता है जिसका सम्बन्ध वास्तविक बनावट से ही नहीं अपितु प्रतिवचन की प्रधानता से भी है।[1]

इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य की आन्तरिक एवं बाह्य विशेषताओं का प्रभाव उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर पड़ता है। अतः जीवन चरित्र लेखक के लिए व्यक्तित्व का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण तत्व जिसका जीवनी लेखक को ध्यान रखना पड़ता है वह वातावरण है। वातावरण से अभिप्राय उन परिस्थितियों से है जिनमें नायक का व्यक्तित्व निखरता है। लेखक को नायक के जीवन से सम्बन्धित सभी परिस्थितियों का वर्णन करना पड़ता है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों के निरीक्षण के बिना कोई भी लेखक सफल जीवन चरित्र नहीं लिख सकता। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर अपने समय की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। साधारण व्यक्ति तो परिस्थितियों से प्रभावित ही होते हैं परन्तु प्रतिष्ठित व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से जनता को भी प्रभावित करते हैं और अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व से भी प्रभावित होते हैं। यहाँ कहने का अभिप्राय यह है कि विशिष्ट प्रकार के व्यक्ति जिनका जीवन चरित्र लिखा जाता है वह परिस्थितियों से प्रभावित भी होते हैं और अपनी इच्छानुसार उन परिस्थितियों को ढाल भी सकते हैं उनमें इतनी विशाल शक्ति होती है। किसी भी राजनैतिक पुरुष की जीवनी लिखने के लिए लेखक को तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन तो करना ही पड़ता है परन्तु उसको यह भी दिखलाना पड़ता है कि उसका नायक उन परिस्थितियों से कितना प्रभावित हुआ है और उनको अपनी योग्यतानुसार सफल बनाने में कहाँ तक उसका व्यक्तित्व निखरा है। राजनैतिक पुरुष का व्यक्तित्व तो निखरता ही राजनैतिक परिस्थितियों से है इसलिए लेखक के लिए उनका वर्णन करना आवश्यक है। जहाँ तक अन्य व्यक्तियों का प्रश्न है साहित्यिक पुरुष भी अपनी परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। प्रत्येक लेखक समयानुसार ही रचना करते हैं। इसलिए राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव

1. There is also a place for the recognition of structure...A very strong or tough or active individual...these characteristics lie for the most part at the first level may show his strength or toughness in ablooming voice tight muscles structed but only generality of response, is involved.

व्यक्ति का जीवन अपने ही ढंग का होता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका समस्त जीवन अपने धर्मप्रचार में ही व्यतीत हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों का जीवन आदर्श जीवन कहलाता है। जो लेखक ऐसे व्यक्तियों को अपना नायक बनाते हैं वह उपदेश कथन के उद्देश्य से ही उनको ग्रहण करते हैं। लेखक को अपने नायक के जीवन में यह देखना होता है कि कहाँ तक उसने अपने जीवन में पाप या पुण्य कर्म किए हैं, कहाँ तक वह धार्मिक नियमों पर चला है और कहाँ तक उनका उल्लंघन किया है। इन सभी बातों का वर्णन, चाहे वह अपने जीवन का उल्लेख करे चाहे अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विवेचन करे, अवश्य ही करता है। इस प्रकार लेखक को नायक के सम्पूर्ण मस्तिष्क के विकास का अपनी जीवनी में वर्णन करने के लिए उसके चतुर्दिक फैले हुए राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक वातावरण का वर्णन करते हुए उसके व्यक्तित्व का इनमें स्थान निर्धारित करना पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि लेखक नायक के जीवन सम्बन्धी सभी तत्वों का चयन करके जीवन चरित्र लिखता है।

साहित्यिक व्यक्ति का जीवन चरित्र लिखने के लिए लेखक को जहाँ उपरि-लिखित जीवन सम्बन्धी तत्वों का चयन करना पड़ता है वहाँ उसे तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए यह सिद्ध करना पड़ता है कि इनके अनुसार चलने में कहाँ तक उसका व्यक्तित्व सफल हुआ है और कहाँ तक उसका व्यक्तित्व सफल हुआ है और कहाँ तक इसने परिस्थितियों के प्रतिकूल होकर साहित्यिक रचना की है। कुछ साहित्यिक व्यक्ति परिस्थितियों से प्रभावित ही रहते हैं और कुछ आवश्यकता-नुसार परिवर्तन कर लेते हैं। वे अपने को परम्परावादी मानने से इनकार कर देते हैं और अपने ही व्यक्तित्व के अनुसार साहित्य को लिखते हैं। साहित्यिक व्यक्ति का जीवन चरित्र लिखने में तो उसकी कृतियाँ भी विशेष रूप से सहायक हो जाती हैं। लेखक को उन कृतियों को पढ़ना आवश्यक हो जाता है क्योंकि उन्हीं से उसके मस्तिष्क के विकास का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि लेखक को जीवन चरित्र लिखने के लिए जीवन सम्बन्धी किन तत्त्वों का चयन करना पड़ता है और वे तत्व उसके व्यक्तित्व में कितना स्थान रखते हैं। इसके साथ ही लेखक को यह वर्णन करना पड़ता है कि व्यक्ति जिसका वह जीवन चरित्र लिख रहा है उसके व्यक्तित्व में अर्थात् उसके जीवन में किस तत्व की अधिकता है और कहाँ तक वह अन्य तत्वों को सफल बना सका है।

जीवनीपरक तथ्य और इतिहास की प्रवृत्तियाँ

जीवनीपरक साहित्य और इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जीवन चरित्रकार और इतिहासकार में समानता कम है और विषमताएँ अधिक हैं। समानता तो केवल इस बात की है कि दोनों लेखकों में सत्य का आग्रह रहता है, लेखक अपनी इच्छानुसार घटनाचक्र में परिवर्तन नहीं कर सकता। जीवनीपरक साहित्य के लेखक को भी उन्हीं घटनाओं का वर्णन करना पड़ता है जो कि सत्य पर आधारित होती

है। जीवन चरित शैली में सुसंगठितता, रोचकता, सत्यता, स्वाभाविकता
वेशेषताएँ होती हैं। इन गुणों से युक्त होने पर ही जीवनचरित शैली प्रभावो-
वन सकती है। इसके अतिरिक्त लेखक आवश्यकतानुसार अपने नायक के
को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए अन्य शैलियों का प्रयोग भी कर सकता
खक का मुख्य उद्देश्य नायक के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण-दोषों का विवेचन ही
ापितु विश्लेषण भी करना होता है। इसलिए नायक के जीवन के प्रति अपने
ों को भी प्रकट करना होता है। इसीलिए जीवन चरित शैली में वर्णनात्मक,
मक एवं औपन्यासिक शैली का कहीं-कहीं प्रयोग लक्षित होता है।

आत्मचरित शैली में लेखक स्वयं नायक होता है। उसे अपने व्यक्तित्व का
पण स्वयं करना होता है। यह कोई सुगम कार्य नहीं है। ऐसे कार्य के लिए
को स्पष्ट एवं निःसंकोच रूप से कार्य करना पड़ता है। यही कारण है कि
कथा वही लेखक लिख सकता है जिसका व्यक्तित्व साधारण व्यक्तियों जैसा
होता। उसके व्यक्तित्व में ईमानदारी और सत्यता होती है तभी वह अपने गुण-
का विवेचन स्वयं करता है। इस प्रकार आत्मकथा शैली में स्पष्टता, स्वाभा-
ता एवं सम्बद्धता आदि गुणों का समावेश होता है। अपने व्यक्तित्व को अधिक
सित करने के लिए अर्थात् स्पष्ट रूप से गुण-दोषों का विवेचन करने के लिए वह
श्यकतानुसार अन्य शैलियों की सहायता भी ले सकता है।

रेखाचित्र शैली इन दोनों ही शैलियों से पृथक् है, इस शैली का लेखक तो चित्र-
र की तरह समस्त व्यक्तित्व का चित्रण करता है। रेखाचित्रकार का कार्य चरित्र
उद्घाटित करना ही है विश्लेषण करना नहीं। विश्लेषण तो स्वयं ही हो जाता
। रेखाचित्र लेखक को तो सीमित क्षेत्र में समस्त चित्र चित्रित करना होता है।
लिए इस प्रकार की शैली में संक्षिप्तता, प्रभावोत्पादकता चित्रात्मकता आदि
शेषताएँ होती है। इस शैली में भी गौण रूप से लेखक अन्य शैलियों की सहायता
सकता है। रेखाचित्र लेखक को तो शैली का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। उसकी
फलता तो शैली पर ही निर्भर होती है।

संस्मरण शैली का जहाँ तक प्रश्न है इसमें भी वे सभी विशेषताएँ होती हैं
ो अन्य शैलियों में पाई जाती हैं। संस्मरण आत्मकथात्मक शैली में भी लिखे जाते
हैं और जीवन चरित शैली में भी परन्तु फिर भी इस शैली की अपनी ही विशेषताएँ
हैं जो इसे अन्य शलियों से पृथक् करती हैं। संस्मरण चाहे लेखक के अपने जीवन से
सम्बन्धित हों चाहे किसी और व्यक्ति के, दोनों में ही लेखक का व्यक्तित्व मुख्य रूप
से लक्षित होता है। इसलिए इस शैली में आत्मीयता का गुण विशेष रूप से पाया
जाता है। प्रत्येक घटना का वर्णन जो भी लेखक करता है जिस भी व्यक्ति के विषय
में वह इस शैली में लिखता है अवश्य ही उसका सम्बन्ध इसके व्यक्तित्व के साथ
होगा। यही कारण है कि संस्मरण रोचक एवं प्रभावोत्पादक होते हैं। संस्मरण लेखक
को भी अपनी शैली को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उसमें संक्षिप्तता, सुसंगठितता

एवं रोचकता आदि गुणों का समावेश करना पड़ता है। अपनी इन प्रमुख विशेषताओं के कारण ही यह शैली अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

पत्र साहित्य की शैली तो इन सभी शैलियों से पृथक् होती है। पत्र शैली में आत्मीयता का गुण प्रमुख रूप से पाया जाता है। लेखक का सम्बन्ध अपने व्यक्तित्व से तो होता ही है, दूरस्थ व्यक्ति के साथ भी होता है। यही कारण है कि लेखक को पत्र का विषय भावग्राहक के अनुकूल ही चुनना पड़ता है। इस शैली की सबसे बड़ी महत्ता इसलिए है कि लेखक का जो व्यक्तित्व हम पत्रों में प्राप्त करते हैं वह अन्यत्र नहीं। लेखक अपने जीवन की गोपनीय घटनाओं का वर्णन अपने पत्रों में ही करता है, इसलिए उसके व्यक्तित्व का निखरा हुआ जो रूप हमें पत्रों में मिलता है वह अन्यत्र नहीं। लेखक जिस भी घटना, स्थान व दृश्य का वर्णन पत्रों में करता है वे समस्त उसके व्यक्तित्व से सम्बन्धित होते हैं। जिन पत्रों में हम किसी व्यक्ति के जीवन के विषय में झाँकी प्राप्त करते हैं उनमें जीवन चरित शैली का प्रयोग होता है। इसी प्रकार लेखक विषयानुसार शैलियों का प्रयोग कर सकता है परन्तु फिर भी प्रधानता लेखक के अपने व्यक्तित्व की होती है। इस शैली का आकार भी सीमित होता है। लेखक को अपने विचार का वर्णन समास शैली में करना होता है।

डायरी लेखक की शैली भी अपने ही ढंग की है। इसमें लेखक को अपने समस्त जीवन की घटनाओं को दिन, तिथि, समय और स्थान के अनुसार करना पड़ता है। इस शैली में स्वाभाविकता, सत्यता एवं सुसम्बद्धता आदि विशेषताएँ होती हैं। डायरी में लेखक अपने जीवन की सभी घटनाओं को स्पष्ट रूप से लिखता है। जिन जीवन सम्बन्धी तत्वों का किसी भी व्यक्ति को पता नहीं होता वह उस व्यक्ति की डायरी में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार इस शैली में निःसंकोचशीलता का जो गुण प्राप्त होता है वह अन्यत्र नहीं पाया जाता। इस शैली का लेखक भी आवश्यकतानुसार विभिन्न शैलियों का प्रयोग कर सकता है।

2 जीवनीपरक साहित्य की विधाएँ एवं उनके अन्तर्बन्ध

रक साहित्य की विधाएँ

१. जीवनी—साहित्य में जीवन का विस्तृत वर्णन होता है, जीवन की गूढ़तम में एवं उलझनों का उसके सौंदर्य और विभूतियों का साहित्य में स्पष्ट रूप से होता है। इसीलिए जीवन और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य का गा स्रोत मनुष्य जीवन है और साहित्य जीवन को व्यक्त करने का साधन है। वह साहित्य जिसमें जीवन के गूढ़तम तत्वों का विवेचन नहीं होता कोई महत्व न और आकर्षण नहीं रखता है। इसीलिए जीवन और साहित्य का अटूट है।

वैसे तो साहित्य के सब रूपों में किसी न किसी रूप में मानव जीवन का होता है। अतः सारा ही साहित्य जीवनी है। यहाँ हमारा अभिप्राय 'जीवनी' ान्य अर्थ से नहीं है प्रत्युत व्यक्ति विशेष की जीवनी से है। इसके लिए सामान्य समाज में से किसी विशिष्ट व्यक्ति को चुन लिया जाता है और अधिक गहराई वास्तविकता से उसके जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों का अध्ययन किया है। जब लेखक इस अध्ययन के परिणामस्वरूप अपनी प्रतिक्रियाओं को इतिहास ा वर्णित करता है तब वह एक प्रकार के साहित्य का निर्माण करता है अपने ं जीवनी शब्द इसी साहित्यिक रूप का परिचायक है।

वास्तव में जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है। वह साहित्य की है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के अन्तर बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है। जिस प्रकार चित्रकार अपने विषय का ऐसा पक्ष पहचान लेता है जो विभिन्न पक्षों में ओतप्रोत रहता है और जिसमें क की सभी कलाएँ और छटाएँ समन्वित हो जाती हैं उसी प्रकार जीवनी : अपने नायक के आपे की कुञ्जी समझकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का ाण करता है।[1] इस परिभाषा के अनुसार 'जीवनी' में लेखक के आन्तरिक और ह्य स्वरूप का विवेचन कलात्मक रूप से होता है। 'कलात्मक' शब्द के प्रयुक्त होने ही यह परिभाषा अधिक उपयुक्त जान पड़ती है। इस शब्द के प्रयोग करने से

. काव्य के रूप लेखक गुलाबराय पृ० २३८

लेखक का अभिप्राय है कि 'जीवनी' में वे सभी गुण होने चाहिए जोकि साहित्यिक कृति में होते हैं।

जीवन चरित्र जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का स्थूल साहित्यिक उल्लेख भी नहीं है, जीवनी साहित्य एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। मनुष्य की मुद्रा और भावना उसके मन की क्रिया-प्रतिक्रियाएँ और जीवन के क्रम में उसके मस्तिष्क के विकास का अध्ययन एक अत्यन्त गूढ़ विषय है। मनुष्य का व्यक्तित्व मानसिक क्रियाओं का परिणाम है। इन मानसिक क्रियाओं का अध्ययन और उनका सफल चित्रण जीवनी साहित्य का अनिवार्य विषय है।[1]

इस परिभाषा में लेखिका ने जीवनी साहित्य को एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन माना है जिसमें मनुष्य के मस्तिष्क के विकास क्रम को स्पष्ट रूप से लिखा जाता है। जहाँ इन्होंने मानसिक क्रियाओं के 'सफल चित्रण' का उल्लेख किया है उससे स्पष्ट है कि यह जीवनी में उन सभी विशेषताओं का समावेश रखने के पक्ष में है जो कि इनको एक उत्कृष्ट साहित्यिक जीवनी बना सकती हैं।

जीवनी शब्दों में संगृहीत ज्ञात प्रमाण है। इसमें मानवीय स्वभाव एवं भावनाओं का ऐसा प्रवाहित रूप से दृढ़ वर्णन होता है जैसे किसी पारे जैसा तरल पदार्थ के बहाव का होता है।[2]

A biography is a record, in words of something that is as mercurial and as flowing, as compact of temperament and emotion as the human spirit itself.

इससे स्पष्ट है कि जीवनी में मनुष्य जीवन के उत्थान पतन, सभी पक्षों का धारावाहिक रूप से वर्णन होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवनी में लेखक व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप से विवेचन करता है, उसके वर्णन में एक विशेष प्रकार की कलात्मकता होती है, जो उसे गद्य की अन्य विधाओं से पृथक करती है। इतिहास की अपेक्षा इसमें अधिक वैयक्तिकता होती है और साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा इसमें वास्तविकता होती है। अतः जीवनी की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है—जब कोई लेखक कुछ वास्तविक घटनाओं के आधार पर श्रद्धेय व्यक्ति की जीवनी कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है तो साहित्य का वह रूप 'जीवनी' कहलाता है।

तत्व

वर्ण्य विषय—जीवनी साहित्य का यह महत्वपूर्ण तत्व है। इसमें [illegible]

.१ हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, लेखिका चन्द्रावती सिंह [illegible]

२. Literary Biography by Leon Edel Page I.

वन का विश्लेषण होता है। नायक के जीवन का यह विश्लेषण लेखक घटनाओं के आधार पर करता है। जहाँ तक नायक का प्रश्न है वह साहि- जनैतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक कोई भी हो सकता है परन्तु उसका यथेष्ट स्थान होना आवश्यक है जिसके चरित्र को पढ़ कर पाठक कुछ प्रेरणा ष्ट ज्ञान ग्रहण कर सकें।

वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट एवं सफल बनाने के लिए उसमें कुछ गुणों का होना है। सर्वप्रथम वर्ण्य विषय में सत्यता का होना है। जॉनसन ने भी इसको किया है। जहाँ इन्होंने अपनी पुस्तक 'One Mighty Torrent' में एक जीवनी के गुणों के विषय में वर्णन किया है वहाँ इस गुण को इन्होंने सर्वप्रथम किया है—"सर्वप्रथम मेरे विचार में जिसको कि हम कह सकते हैं सचाई त्रित मानव जीवन के चरित्र की सचाई। बिल्कुल निष्पक्ष—जोकि न तो तन का दमन करे न ही उपेक्षा करे जो भी स्पष्ट रूप से समझता हो उसका रे। ऐसे उद्देश्य के लिए विश्लेषण एवं समीक्षा की आवश्यकता है। केवल सीधे । आवश्यक नहीं अर्थात् वे ही कार्य को पूरा नहीं कर सकते। विश्लेषण कार्य । करने के लिए अवश्य किया जाता है। कभी-कभी केवल एक चारित्रिक ा की सचाई को व्यक्त करने के लिए सारी सामाजिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठ- नी आवश्यक हो जाती है और इससे कभी-कभी आत्मा की अत्यन्त कपटी ाओं को भी खोजा जाता है। इससे स्पष्ट है कि जीवनी एक मनोवैज्ञानिक पुस्तक ही नहीं है प्रत्युत एक कला है।"[1]

(Primarily, I think we must say truth—truth to the acter of the human life it portrays. An absolutec andouy, ing neither to blacken nor to palliate, but as clearly as man to understand. Such an aim necessarily involves interpre- on for a mere recital of fact will not do. Analysis must coml he aid of the deed. Sometimes an entire background of socia historical color may be needed to reveal the truth about a gle characteristic, and sometimes a delving into the most ive problems of the soul. In saying these things it becomes ar that a biography is not a psychological casebook but a work art.)

से स्पष्ट है कि वर्ण्य विषय में सत्यता का होना नितान्त आवश्यक है। यता' से यहाँ अभिप्राय घटनाओं की सचाई है। लेखक वास्तविक घटनाओं के धार पर ही नायक के जीवन का चरित्र चित्रित कर सकता है। नायक के चरित्र न्धी गुण-दोषों का स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से वर्णन करने से ही लेखक द्वारा

One Mighty Torrent by Edger Johnson, P. 40.

लिखी हुई जीवनी सफल कही जा सकती है। 'जीवनीकार सत्य पथ से कभी विचलित नहीं होता। यह हो सकता है कि दोष-दर्शन में उसके हृदय में सहृदयता की भावना ऐसी हो कि वह यथार्थता की रक्षा करता हुआ चरित्र नायक की दुर्बलताओं का परिहास न करे। जीवनीकार सत्य का पल्ला कभी नहीं छोड़ता। वह इस मर्यादा की रक्षा के लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार रहता है।'[1] इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि वर्ण्य विषय में वास्तविकता एवं सत्यता का होना आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण विशेषता जो कि वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट बना सकती है वह है—प्रासादात्मकता व रोचकता। लेखक को नायक के सम्पूर्ण चरित्र का विश्लेषण इस ढंग से करना चाहिए जोकि पाठक को सरस एवं रोचक प्रतीत हो। नीरस जीवनी पढ़ने के लिए कोई भी पाठक नहीं तैयार होता है। इस प्रकार रोचकता का विषय में होना अत्यन्त आवश्यक है।

तीसरा महत्वपूर्ण गुण वर्ण्य विषय में वैज्ञानिकता का होना है। वही जीवनी सफल कही जा सकती है जिसमें नायक के सम्पूर्ण जीवन का मनोवैज्ञानिक रूप से विश्लेषण होता है। इस वैज्ञानिकता में त्रुटि आने से जीवन चरित्र भी दूषित हो जाता है। मनुष्य जीवन का क्रमिक विकास वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करना ही जीवनी में लेखक का उद्देश्य होता है। यदि वैज्ञानिकता में कुछ कमी रह जाएगी तो वह जीवन चरित्र काल्पनिक हो जाएगा, इसलिए विषय-वर्णन में वैज्ञानिकता का होना आवश्यक है।

वर्ण्य विषय में संक्षिप्तता एवं सुसंगठितता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। लेखक को समस्त जीवन की घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन करना चाहिए। ऐसा न हो कि उनमें एकसूत्रता का अभाव हो। घटना को इस ढंग से वर्णन करना चाहिए कि वह सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश भी डाले और साथ में संक्षिप्त रूप से भी कही गई हो।

अतः वही जीवनी सफल कही जा सकती है जिसके वर्ण्य विषय में उपर्युक्त गुणों का समावेश होगा।

चरित्र-चित्रण

जीवनी साहित्य का यह विधायक तत्त्व है। इसमें लेखक अपने नायक का चरित्र चित्रित ही नहीं करता अपितु उसका संश्लेषण-विश्लेषण एवं विवेचन भी करता है। नायक के आन्तरिक एवं वाह्य व्यक्तित्व का विश्लेषण चरित्र-चित्रण में किया जाता है।

जहाँ तक नायक के आन्तरिक विश्लेषण का प्रश्न है उसमें गुण भी होते हैं और दोष भी। गुणों का वर्णन तो सभी कर सकते हैं पर दोषों का वर्णन कोई ही

---

१. समीक्षाशास्त्र, ले० दशरथ ओझा, पृ० १९९, द्वितीय संस्करण जुलाई, १९५१

ाक्ति कलात्मक रूप से कर सकता है। चारित्रिक त्रुटियों का वर्णन लेखक को इस ग से करना चाहिए कि पाठक को यह भी अनुभव न हो कि स्पष्ट एवं कड़वे रूप से ायक की दुर्बलताओं को ही वर्णन करना लेखक का लक्ष्य है। इसमें लेखक को अपनी हानुभूतिशीलता का प्रयोग करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में गुण-दोष होते हैं, यह न्य बात है कि किसी में गुण अधिक हो और दोष कम पर दोनों का अवश्य समावेश ोता है। वही जीवनी उत्कृष्ट कही जाएगी जिसमें नायक के चारित्रिक गुण-दोषों का ववेचन हो। यदि लेखक नायक के केवल गुणों का उल्लेख ही अपनी जीवनी में कर ाएगा तो वह एक आदर्श जीवनी बन जाएगी जिसका अनुसरण पाठक भी नहीं कर कोंगे। इस मत का समर्थन ब्रजरत्नदास ने भी किया है—

"मनुष्य तभी मनुष्य रहेगा जब उसके दोष आदि भी प्रकट कर दिए जाएँगे। नुष्य देवता नहीं है उसमें दोष रहेंगे, किसी में एक है तो किसी में कुछ और हैं। दि एक महात्मा की जीवनी से हम दोषों को निकाल देते हैं तो हम एक ऐसा निर्दोष ादर्श उपस्थित कर देते हैं जिसको अनुमान करने का लोग साहस छोड़ बैठेंगे।— तात्पर्य यह है कि जीवन चरित्र में गुणों का विवेचन करते हुए दोषों को भी, यदि हों, तो विश्लेपण अवश्य कर देना चाहिए।"[1]

जहाँ तक बाह्य व्यक्तित्व का प्रश्न है लेखक को नायक की बाह्य वेशभूषा का ज्ञान भी पाठक को करवा देना चाहिए। उसके शारीरिक अवयवों का लेखक को अवश्य वर्णन करना चाहिए। बाह्य वेशभूषा के वर्णन से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि पाठक नायक के समस्त व्यक्तित्व का अनुमान उसकी वेशभूषा से ही लगा लेता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवनी में लेखक नायक के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व का विश्लेपण स्पष्ट रूप से करता है।

देशकाल

जीवनी साहित्य का यह भी एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। वर्ण्य चरित्र किसी देश या काल में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। इसलिए उसके समस्त जीवन की घटनाएँ देश और काल से सम्बन्धित होती हैं। परन्तु अन्य प्रकथनात्मक साहित्य की भाँति जीवनी साहित्य में देश काल का चित्रण मुख्य रूप से नहीं किया जाता। जीवन साहित्य में तो व्यंग रूप से ही इसका चित्रण किया जाता है। जो भी चित्रण किया जाता है अर्थात् जिन भी परिस्थितियों का वर्णन लेखक जीवनी में कर पाते हैं वह नायक के व्यक्तित्व के अनुसार ही होता है।

अतः स्पष्ट है कि नायक के व्यक्तित्व को उभारने के लिए ही लेखक तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करता है। यदि नायक कोई साहित्यिक व्यक्ति है तो उसकी जीवनी में हमें तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का अवश्य ही पाठक को

---

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० ब्रजरत्नदास, पृ० १५०

ज्ञान होता। यदि नायक राजनैतिक व्यक्ति होगा तो हमें तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का ज्ञान हो जाएगा। इस प्रकार यहाँ देशकाल वातावरण से यही अभिप्राय है कि किन-किन परिस्थितियों का सामना करते हुए लेखक का नायक अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है।

उद्देश्य

जीवनी साहित्य का यह भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रत्येक लेखक का कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होता है। वह कोई भी रचना निरुद्देश्य नहीं लिखता। इस प्रकार जीवनीकार का उद्देश्य भी उसकी रचना में प्रकारान्तर से समाविष्ट हो जाता है।

जीवन चरित हमें चरित नायक के शरीर और आत्मा में प्रवेश कराकर एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर बैठा देता है जहाँ से हम निष्पक्ष दृष्टि से अधिकार के साथ व्यक्ति के कार्य व्यापार, विचारधारा और इन दोनों के समन्वय को ध्यान से देखकर किसी निर्णय पर पहुँच सकते हैं। व्यक्ति का हृदय और मस्तिष्क एक व्यवच्छेद अथवा अंगच्छेद की भाँति स्फटिक की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। किसी ने कविता ही क्यों लिखी? अथवा उपन्यास ही क्यों लिखा? कोई राजनैतिक नेता ही क्यों बना? किसी ने दर्शन क्षेत्र में ही क्यों विजय प्राप्त की? कोई भक्त ही क्यों बना? आदि असंख्य प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँगे। अतएव मनुष्य को समझने के लिए उसके जीवन चरित्र का अध्ययन आवश्यक है।[1]

इससे स्पष्ट है कि जीवनीकार नायक के बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से वर्णन करता है। नायक के चरित्र का संश्लेषण विश्लेषण एवं विवेचन करना ही लेखक का उद्देश्य है।

जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी नहीं है। लेखक जहाँ नायक के जीवन में छिपे उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवन धारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है वहाँ जीवनी लेखक की कला सार्थक होती है। ऊपर से मनुष्य के दिखाई पड़ने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी लेखन कला संतुष्ट नही होती। वह उस आवरण को भेदकर अन्तःस्वरूप और आन्तरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।[2]

इस प्रकार जीवनीकार का उद्देश्य निरपेक्ष रूप से श्रद्धेय व्यक्ति के चरित्र को चित्रित करने का यह है कि पाठकगण इसके पढ़ने से कुछ विशिष्ट ज्ञान ग्रहण कर सकें। वह जैसा व्यक्ति होता है उसका स्पष्ट रूप से वैसा ही चित्रण करता है। उसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति की भावना नहीं दृष्टिगोचर होती। जीवनीकार का

---

१. आलोचना के सिद्धांत, ले० डॉ० सोमनाथ गुप्त, पृ० २२२

२. हमारे नेता, ले० रामनाथ सुमन, पृ० १२

उद्देश्य अपने चरित्र नायक का व्यक्तित्व अभिव्यक्त करना होता है किन्तु विरुद बखानवे वाले चारण का उद्देश्य चरित्रनायक के राई समान गुण को सुमेरु के समान विशाल दिखाकर उसकी कृपा का भाजन बनना होता है। जीवनीकार एक चित्रकार के सदृश अपने नायक के व्यक्तित्व को कुन्जी समझकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का चित्रण करता है।[1]

इस प्रकार जीवन चरित्र लिखने का एक उद्देश्य तो यह हुआ कि हम मनुष्य के वाह्य व्यक्तित्व के साथ-साथ उसके आन्तरिक व्यक्तित्व को भी जान जाते हैं। दूसरी बात यह है कि दुनिया में विशाल स्मारक भवन एव मंदिर आदि तो नष्ट हो जाते हैं, केवल अमर ग्रन्थ ही रह जाते हैं। किसी भी श्रद्धेय व्यक्ति की जीवनी अमरत्व की भावना को लेकर ही लिखी जाती है।

भाषा शैली

शैली अनुभूत विषय-वस्तु के सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाता है। जीवनी लेखन एक अत्यन्त दुरूह कला है। सम्पूर्ण व्यक्ति को शब्दों में चित्रित करना असाधारण कौशल का कार्य है। जीवन चरित्र लिखने की कला इसलिए भी अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अलग शैली होती है वह प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है और प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र चित्रण एक गूढ़ विषय होता है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन चरित्र लिखना एक लम्बे समय के अध्ययन और मनन के पश्चात् ही सम्भव है। जीवन सम्बन्धी बातों की छानबीन विवेकपूर्ण परिश्रम का कार्य है। उत्कृष्ट जीवन चरित्र लम्बे और विवेकपूर्ण परिश्रम से ही तैयार हो सकता है। एक व्यक्ति के जीवन भर के वृत्तान्त को ऐसी रूप-रेखा में उपस्थित करना कि पाठक उस व्यक्ति को पहचान और समझ सके, सरल कार्य नहीं है। इसलिए जीवनी लेखन एक उत्कृष्ट और असाधारण कला है।[2] इस प्रकार जीवनी शैली में कुछ विशेषताओं एवं गुणों का होना आवश्यक है जिससे वह उत्कृष्ट शैली कहला सकती है।

जीवनी शैली में सर्वप्रथम सुसंगठितता का होना आवश्यक है। जीवनीकार को नायक के जीवन की समस्त घटनाओं को इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे उनमें एकसूत्रता रहे। चरित्र लेखक को नायक की घटनाओं के पुंज में से अपेक्षित तथ्य को ग्रहण करने और अनपेक्षित को त्यागने में ऐसी बुद्धिमत्ता से काम लेना पड़ता है कि सामंजस्य कहीं भी बिगड़ने न पाये और सर्वत्र एकसूत्रता भी बनी रहे।[3] इस प्रकार सुसंगठित शैली का होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्य महत्वपूर्ण विशेषता जिसका जीवनी शैली में होना अत्यन्त आवश्यक है वह है – निरपेक्षता। जीवन चरित्र लेखक

१. समीक्षा शास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १९९
२. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, लेखिका चन्द्रावती सिंह, पृ० १२
३. समीक्षा शास्त्र, ले० डॉ० दशरथ ओझा, पृ० २००

को बड़े संतुलन की आवश्यकता होती है। उसका प्रत्येक विवरण पाठक के मन में सत्यासत्य धारणा बनाता है। यदि यह धारणा सत्य पर अवलम्बित न रही तो असत्य के समर्थन से जो हानि समाज में हो सकती है उसका डर सदैव बना रहेगा। अतएव जीवनीकार को निष्पक्ष, अनुभवी, वर्गहीन दृष्टिकोण धारक, स्पष्ट और सहनशील तथा सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए।[१] इस प्रकार शैली में लेखक के मस्तिष्क की तटस्थता का होना अत्यन्त आवश्यक है। जीवनीकार को इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वह नायक के चारित्रिक गुण-दोषों का वर्णन तटस्थ एवं निरपेक्ष रूप से करे। जीवनी की कृति में उनके चरित्र नायक का 'आपा' या उसकी स्वरूपता (Personality) उभर आती है वह न भलाइयों को राजदरबार के कवीन्द्रों की भाँति राई को सुमेरु कर के दिखाता है और न बुराइयों को चवाई लोगों की भाँति तिल का ताड रूप देता है। वह अनुपात का सदा ध्यान रखता है।[२] ऐसा करने से ही जीवनी शैली उत्कृष्ट बन सकती है।

अन्य महत्वपूर्ण विशेषता सहृदयता का होना है। केवल यही एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा हम अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझ सकते हैं। कुछ भी हो हमें यह पूरी तरह से विश्वास है कि लेखक के वास्तविक चरित्र को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक कि लेखक में काफी मात्रा में सहानुभूतिशीलता नहीं है। जीवन में साहित्य को ऊँचा स्थान प्राप्त करवाने के लिए सहानुभूति सर्वप्रथम तत्व है। केवल सहानुभूति से ही हम दूसरी आत्मा को समझ सकते हैं।[३]

In any event, we may rest assured that without some amount of initial sympathy we shall never understand an author's real character. To reach the best in literature as in life, sympathy is a preliminary condition. Only through sympathy can we ever get into living touch with another soul.

जीवनीकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि चंद्रमा में कलंक है अवश्य किन्तु वे साधारण हैं। सहानुभूति अंधभक्ति से भिन्न है। अंधभक्ति दोषों को भी गुण समझती है, सहानुभूति दोष को दोष ही समझती है किन्तु उसके कारण दोष की हँसी नहीं उड़ायी जाती। जीवनीकार छोटे-मोटे दोषों को अर्थात् गुणों के समूह या बाहुल्य में इस प्रकार छिपा जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक—दोषों के वर्णन में सहृदयता का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए।[४] इस प्रकार जीवनी शैली में लखक की सहृदयता का होना अत्यन्त आवश्यक है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। विषयानुकूल एवं भावानुकूल भाषा ही उत्कृष्ट होती है। भाषा में प्रसाद गुण का होना आव-

१. आलोचना के सिद्धांत, ले० डॉ० सोमनाथ गुप्त, पृ० २२५
२. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय, पृ० २३९
३. वहीं, पृ० २३९
४. वही, पृ० २३९

श्यक है। जीवनी को आकर्षक एवं रुचिकर बनाने के लिए उत्कृष्ट भाषा का प्रयोग आवश्यक है। भाषा ही एक ऐसा साधन है जिससे चरित्र के वास्तविक स्वरूप का पता चलता है। इस प्रकार जीवन चरित्र लिखने में सरल, सुबोध, आकर्षक और रुचिकर भाषा का प्रयोग आवश्यक है।

विभाजन

वर्ण्य चरित्र क्षेत्र के आधार पर जीवनी साहित्य को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. साहित्यिक पुरुषों की जीवनियाँ—साहित्यिक पुरुषों से अभिप्राय है जिन व्यक्तियों ने कुछ लिखकर हिन्दी साहित्य की प्रगति में सहयोग दिया है, इनमें कवि, कथा लेखक एवं आलोचकगण आते हैं। इस प्रकार की जीवनियों में हमें तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों के साथ इनका हिन्दी साहित्य में जो स्थान है उसका भी अनुमान हो जाता है। कुछ साहित्यिकों की जीवनियाँ तो लिखी ही इस उद्देश्य से जाती हैं कि उनका हिन्दी साहित्य में स्थान अमर रहे।

२. राजनैतिक पुरुषों की जीवनियाँ—इस श्रेणी में उन लोगों की जीवनियाँ आती हैं जो कि अपना समस्त जीवन अपनी मातृभूमि के लिए न्योछावर कर देते हैं। ऐसे पुरुषों का जीवन तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों में जूझा हुआ होता है। लेखक को नायक के व्यक्तित्व का पूरा चित्र उपस्थित करने के लिए उन परिस्थितियों का पाठक को परिचय करवाना ही पड़ता है। इसलिए ऐसी जीवनियाँ एक तो विशेष व्यक्ति के जीवन का परिचय देती हैं और दूसरे देश की तत्कालीन परिस्थितियों के विषय में पाठकगण को परिचय देती हैं।

३. ऐतिहासिक वीर पुरुषों की जीवनियाँ—कुछ जीवन चरित्र इस उद्देश्य से लिखे जाते हैं कि जनता उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर सके और साथ में हमारा मृत इतिहास पुनर्जीवित हो जाए तो ऐतिहासिक वीर पुरुषों की जीवनियाँ भी इस उद्देश्य से लिखी जा सकती हैं। ऐसी जीवनियों में वीर पुरुषों की वीरता एवं साहस का अधिकतर वर्णन होता है। ऐसी जीवनियों के पढ़ने से हमें अपने इतिहास का विशेष रूप से ज्ञान हो जाता है।

४. धार्मिक पुरुषों की जीवनियाँ—धार्मिक पुरुषों की जीवनियाँ भी लिखी जा सकती हैं। जिन पुरुषों ने अपने समय में प्रचलित धर्म में जो त्रुटियाँ देखीं और उनका जो भी विरोध किया और साथ में मानव धर्म का प्रचार जनता में किया उन पुरुषों की जीवनियाँ अवश्य लिखी जानी चाहिए। ऐसे पुरुषों की जीवनियों में धार्मिक विषयों पर अधिक चर्चा होती है। धर्म के विषय में जो भी उनकी मान्यताएँ होती हैं उनका उनकी जीवनियों में उल्लेख होता है। ऐसी जीवनियों में भी लेखक केवल उनके गुणों का ही वर्णन नहीं करता अपितु आरम्भ से अन्त तक उनके जीवन में जो भी गुण-दोष होते हैं उनका पूरी तरह से उल्लेख करता है। वे व्यक्ति भी तो एक तरह से साधारण पुरुष ही होते हैं कोई काल्पनिक व्यक्ति नहीं। इस प्रकार ऐसी जीवनियों में न तो

कल्पना का आधार लिया जाता है और न अप्रामाणिक बातें कही जाती हैं। जीवनी का मानवीय चित्र उपस्थित किया जाता है जिसको लोग ग्रहण कर सकें।

शैली के आधार पर

जीवन चरित जैसे कई प्रकार के हो सकते हैं अर्थात् कई प्रकार के व्यक्तियों के हो सकते हैं तो उनके लिखने के भी ढंग कई हो सकते हैं। जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है जीवन चरित संस्मरणात्मक शैली में भी लिखे जा सकते हैं। इस प्रकार की शैली में लेखक किसी अन्य व्यक्ति का जीवन संस्मरणों में ही लिख डालता है। ऐसी शैली में रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता अधिक होती है।

कुछ इस प्रकार के जीवन चरित भी हो सकते हैं जो कि निबन्धात्मक शैली में लिखे जाते हों। ऐसे जीवन चरित स्फुट निबन्धों के रूप में लिखे जाते हैं। कुछ जीवन चरित इस ढंग से भी लिखे जाते हैं जिनका लिखने का ढंग उपन्यास की शैली के समान हो अर्थात् जिनको पढ़ते हुए ऐसा अनुभव हो कि हम किसी वास्तविक जीवन चरित्र को पढ़ रहे हैं। ऐसी शैली में लेखक उपन्यास की तरह से जीवनी में वार्तालाप आदि का समावेश भी करता है। नायक के जीवन की समस्त घटनाओं को क्रमानुसार बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है। जीवनी में किसी प्रकार की असम्भवता नहीं आने देता। काल्पनिक घटनाओं का प्रयोग वह किंचित् रूप से भी नहीं करता। ऐसी शैली में लेखक नायक के जीवन की छोटी से छोटी घटना का वर्णन भी करता है परन्तु इस ढंग से करता है कि उसमें तनिक भी विस्तार नहीं होता।

आत्मकथा

आधुनिक गद्य की नवीनतम विधाओं में आत्मकथा भी गद्य की नवीनतम विधा है। आत्मचरित्र जीवनी साहित्य का उन्नतिशील अंग है जैसे इस शब्द से ही स्पष्ट है। आत्मचरित्र वह है जिसमें चरित्रनायक ने स्वयं अपनी जीवनी लिखी हों लेखक स्वयं अपना जीवन चरित्र लिखता है। विभिन्न देशों में जब से मनुष्य ने चेतना की अवस्था प्राप्त की उसी समय से अपनी मनोभावनाओं को, अपने को और अपने व्यक्तित्व को व्यक्त करने लगा, उसी समय से आत्मचरित्र जीवनी साहित्य का अंग हो गया। परन्तु कुछ लोग आत्मचरित्र की विशालता और :महानता का क्षेत्र असीम कहने में संकोच नहीं करते। आत्मचरित में लेखक जीवन की घटनाओं की महत्ता और विशेषता को, मनोभावों की क्रिया-प्रतिक्रिया को पहचानता है।[1] इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को एव अपनी मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को स्वयं लिखता है।

आत्मकथा जीवन की या उसके किसी एक भाग की वास्तविक घटनाओं को

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १४

जिस समय में वह घटित हुई उन समस्त चेष्टाओं को पुनर्गठित करती है। इसका मुख्य सम्बन्ध आत्मविवेचन से होता है, वाह्य विश्व से नहीं यद्यपि व्यक्तित्व को अद्वितीय बनाने के लिए वाह्य विश्व को भी लिया जा सकता है और अनावश्यकतानुसार छोड़ा भी जा सकता है। जीवन को पुनर्गठित करना एक असम्भव कार्य है। एक ही दिन के आगे-पीछे का अनुभव असीम होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आत्मकथा बीती हुई घटनाओं से बनती है। यह वैयक्तिक जीवन की कुछ स्थितियाँ बना देती है। उनमें सम्बन्ध स्थापित करती है और उनकी व्याख्या करती है। इसके साथ ही वह निःसंदेह और स्पष्ट रूप से अपने और वाह्य विश्व के निश्चित दृढ़ सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।[१]

It involves the reconstruction of the movement of life, or part of a life, in the actual circumstances in which it was lived, its centre of interest is the self, not the outside world, though necessarily the outside world must appear so that, in give and take with it, the personality finds its peculiar shape. But "reconstruction of a life" is an impossible task. A single day's experience is limitless in its radition backward and forward so that we have to hurry to qualify the above assertions by adding that autobiography is a shaping of the past. It imposes a pattern on a life, constructs out of it a coherent story. It establishes certain stages in an individual life, makes links between them, and defines implicitly or explicitly a certain consistency of relationship between the self and the outside world.

इससे स्पष्ट है कि गद्य के बहुत से प्रकारों में आत्मकथा ही केवल एक ऐसा ढंग है जिसमें लेखक अपने विषय में एवं अपने व्यक्तिगत अनुभवों के विषय में कहता है।[२]

Autobiography is only one form among many in which a writer speaks of himself and the incidents of his personal experiences.

इस प्रकार आत्मकथा में लेखक अपने ही व्यक्तित्व का निरीक्षण करता है। इसमें लेखक अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाता है। इसमें लेखक का उद्देश्य आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण एवं आत्मकथन ही है। अतः एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का इतिहास है, इतिहास ही नहीं बल्कि इसमें वर्णित घटनाओं की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का भी उल्लेख है। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा अपने ही ढंग का पुनर्कथित इतिहास है और इसके साथ ही व्यक्ति के वाह्य विश्व के साथ सम्बन्धित आत्मनिरीक्षण

---

१. Design and Truth in Autobiography by Roy Pascal, P.6.
२. Design and Truth in Autobiography by Roy Pascal, P. 2.

का प्रतिरूप है।[1]

Autobiography is on the contrary historical in its method and at the same time the representation of the self in and through its relations with the outer world.

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा गद्य का वह रूप है जिसमें लेखक व्यक्तिगत जीवन का विवेचन-विश्लेषण निःसंकोच रूप से प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही वह बाह्य विश्व से सम्बन्धित मानसिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का विवेचन भी कलात्मक रूप से करता है।

आत्मकथा का लेखक सामान्यतः सामान्य व्यक्ति नहीं होता। समाज में प्रतिष्ठा-प्राप्त व्यक्ति ही आत्मकथा लिखने में प्रवृत्त हो सकता है। सामान्यतः मानव अपने से उच्च एवं महान व्यक्ति के प्रति ही कुतूहल अनुभव करता है। जाति में, राष्ट्र में अथवा सम्प्रदाय विशेष में जो व्यक्ति अपने उदात्त चरित्र के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है, पार्श्ववर्ती जनसमुदाय इसके इतिवृत्त को जानने के लिए उत्सुक हो उठता है। ऐसी स्थिति में वह सम्मानित व्यक्ति अपने अनुयायिओं के सतत अनुरोध से प्रेरित होकर अपने जीवन के सम्बन्ध में उत्सुकता को शान्त करने के लिए 'आत्मकथा' लिखता है। जिस व्यक्ति का अपने धर्म में, समाज में, सम्प्रदाय में, जाति में, राष्ट्र में कोई विशेष स्थान नहीं वह व्यक्ति अपने हृदय में आत्मकथा लिखने की प्रेरणा ही नहीं अनुभव करता। इससे स्पष्ट है कि 'आत्मकथा' का लेखक प्रतिष्ठित व्यक्ति ही होता है।[2]

इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा का लेखक सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित होना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों द्वारा लिखा हुआ जीवन ही जनता को प्रेरणादायक एवं उत्साहवर्द्धक हो सकता है।

तत्व

वर्ण्य विषय—आत्मकथा साहित्य का यह महत्वपूर्ण तत्व है। जैसा कि आत्मकथा शब्द से ही स्पष्ट है इसमें लेखक अपने सम्पूर्ण जीवन का वर्णन नहीं करता अपितु विश्लेषण भी करता है। इस प्रकार आत्मकथा का विषय आत्मविवेचन, आत्मविश्लेषण के साथ-साथ विश्व की बाह्य घटनाओं की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का वर्णन है। उसी व्यक्ति द्वारा लिखी हुई आत्मकथा प्रभावित करती है अर्थात् पाठक उससे प्रेरणा ग्रहण कर सकता है जिसका लेखक प्रतिष्ठित व्यक्ति हो। इस प्रकार लेखक का जनता में प्रसिद्ध होना आवश्यक है।

वर्ण्य-विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उसमें कुछ गुणों का होना आवश्यक है। सर्वप्रथम विषय में सत्यता एवं यथार्थता का होना आवश्यक है। सत्यता से

---

१. Design and Truth in Autobiography by Roy Pascal, P. 9.

२. सिद्धान्तालोचन, ले० धर्मचन्द सन्त बलदेव कृष्ण, पृ० २०६

भिप्राय है लेखक अपने जीवन का विवेचन इस ढंग से करे कि उसमें किसी भी प्रकार त्रिमता न आने पाए। वैसे तो आत्मकथा का विषय ही अनुभूत्यात्मक होता है ल्पनिक नहीं, इसलिए इसमें यथार्थता होती है। आत्मकथा में सत्य से अभिप्राय षयगत सत्य से नहीं कुछ सीमित विषय तक का सत्य है जिससे लेखक का जीवन ढ़ता है एवं जिसके विशेष गुण एवं घटनाओं के परिपक्व होने की दृढ़ता एवं व्यावहारिक गुण एवं आकृति स्पष्ट होती हैं।[1]

It will not be an objective truth but the truth in the confines of a limited purpose—a purpose that grows out of the author's life and imposes itself on him as his specific quality and thus determines his choice of events and the manner of his treatment *and expression.*

आत्मकथा लेखक को पूर्ण ईमानदारी और सचाई के साथ अपने जीवन का वर्णन करना चाहिए। उसको यह भी नहीं करना चाहिए कि वह केवल गुणों का ही वर्णन करे। ऐसा करने से विषय दोषपूर्ण हो जाता है। आत्मकथा लेखक की यही विशेषता है कि वह अपने विषय को जितना वास्तविक बना सकता है उतना अन्य लेखक नहीं। आत्मकथा लेखक जितना अपने बारे में जान सकता है उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नहीं जान सकता। इसमें कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शीलसंकोच आत्मप्रकाश में रुकावट डालता है। यद्यपि सत्य के आदेश से दोनों ही प्रवृतियाँ निन्द्य हैं। तथापि अनावश्यक आत्मविस्तार कुछ अधिक अवांछनीय है। शीलसंकोच के कारण पाठक को सत्य और उसके अनुकरण के लाभ से वंचित रखना भी वांछनीय नहीं कहा जा सकता। साधारण जीवनी लेखक की अपेक्षा आत्मकथा लेखक को ऊब से बचाने और अनुपात का अधिक ध्यान रखना पड़ता है। उसे अपने गुणों के उद्घाटन में आत्मश्लाघा या अपने मुह मियाँ मिट्ठू बनने की दूषित प्रवृत्ति से भी बचना चाहिए।[2] इससे स्पष्ट है कि विषय तभी उत्कृष्ट एवं परिपक्व बन सकता है यदि लेखक पूर्ण सचाई एवं ईमानदारी से अपने विषय में वर्णन करता है।

अन्य महत्त्वपूर्ण गुण जोकि विषय वर्णन को रोचक बनाता है वह है संक्षिप्तता। आवश्यकता से अधिक विस्तार विषय को नीरस बना देता है। इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा लेखक को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वह अनावश्यक घटनाओं का विस्तार न करे, केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करे जिनसे उसके व्यक्तित्व के विश्लेषण में सहायता मिले तथा पाठकों के सम्मुख मानव जीवन के यथार्थ सत्य को

---

१. Design and Truth in Autobiography by Roy Pascal, P. 83.

२. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय, पृ० २४६

उद्घाटित करने में उनकी उपयोगिता हो ।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विषय वर्णन में सत्यता, यथार्थता स्पष्टवादिता, रोचकता के साथ-साथ स्वाभाविकता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

चरित्र-चित्रण

आत्मकथा में लेखक का उद्देश्य अपने ही व्यक्तित्व का विश्लेषण करना होता है। आत्मचरित्र आत्मपरिचय का साधन है। लेखक आत्मचरित्र में अपने मस्तिष्क के विकास का क्रम लिखता है। वह स्वयं अपने मस्तिष्क का अध्ययन करता है, आत्म-निरीक्षण और आत्मविवेचन करता ।है[2] इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक अपने ही चरित्र का चित्रण करता है। चरित्र के सभी पक्षों का विवेचन ही नहीं अपितु विश्लेषण भी आत्मकथा में होता है।

प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र में गुण भी होते हैं और दोष भी। इसलिए यदि किसी आत्मकथा के लेखक ने अपनी प्रशंसा करवाने के लिए केवल गुणों का वर्णन अपनी आत्मकथा में किया तो वह दोषपूर्ण माना जाएगा। उसको मानवीय चरित्र न कहकर एक काल्पनिक एवं आदर्श चरित्र कहा जाएगा। यह ठीक है कि आत्मचरित्र में अहं-कार और आत्मश्लाघा के दोष से बच सकना कठिन है लेकिन फिर भी आत्मचरित्र 'स्व' के उद्गारों, अहंकार, छिछोरी प्रवृत्तियों, व्यक्तिगत ख्याति और क्षमायाचना या उसके सम्बन्ध में सफाई देने की भावना का उल्लेख मात्र नहीं है, यह इससे भिन्न ऊँचा साहित्य है।[3]

चरित्र चित्रण में जहाँ लेखक अपने चरित्र की सभी न्यूनताओं का वर्णन करता है वहाँ वह अपनी सद्भावनाओं से पाठक को अच्छी प्रकार से परिचित करवाता है। अपने समस्त जीवन के विकास का वह बड़ी ईमानदारी से वर्णन करता है। ऐसे व्यक्तियों के चरित्र जिनमें उनके जीवन के उत्थान-पतन का वर्णन स्पष्ट रूप से होता है पाठक के लिए अधिक प्रेरणादायक हो सकते हैं।

जहाँ आत्मकथा में हमें लेखक के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है वहाँ उसमें वर्णित कुछ अन्य व्यक्तियों के विषय में भी पाठक को अनुमान हो जाता है। आत्मकथा में लेखक अपने से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का वर्णन करता है। इसके दो लाभ होते हैं— एक तो पाठक को लेखक का व्यक्तित्व और भी स्पष्ट हो जाता है दूसरे उस व्यक्ति के विषय में भी पता चल जाता है। लेकिन यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है कि उन सभी व्यक्तियों का वर्णन लेखक अपने व्यक्तित्व को उभारने के लिए करता है।

---

१. सिद्धांतालोचन, ले० धर्मचन्द संत, पृ०२९९
२. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, पृ० १६, ले० चन्द्रावती सिंह
३. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १६

काल

वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना ता है। देशकाल वातावरण का वाह्य स्वरूप है। वातावरण आन्तरिक भी सकता है। आदमी जिस प्रकार के समाज में रहता है वैसा तो कार्य करता ही है न्तु उसके भाव-भावना और विचार भी उसकी अनुकूलता में सहायक होते हैं।[1]

देश और काल परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है, इसी ार वर्ण्य चरित्र पर भी पड़ना आवश्यक है। जिस भी प्रकार का चरित्र होगा उस र वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि यदि लेखक साहित्यिक है । उस पर तत्कालीन परिस्थितियों का विशेपतया साहित्यिक परिस्थितियों का अवश्य भाव पड़ेगा। तब हमें उसकी आत्मकथा में अवश्य ही तत्कालीन साहित्यिक परि-स्थितियों का परिचय मिलेगा। इन परिस्थितियों के वर्णन के बिना उनका व्यक्तित्व भर नहीं सकता। इस प्रकार गौण रूप से हमें तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान हो ाता है।

यदि किसी राजनैतिक व्यक्ति की आत्मकथा दृष्टिपात करें तो उनमें विशेप-या राजनैतिक तत्कालीन परिस्थितियों का अवश्य वर्णन होगा। सामाजिक व्यक्ति ी आत्मकथा में तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का अवश्यमेव वर्णन ोगा। इसके अतिरिक्त कई ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्होंने अपने जीवन में बहुत यात्रा की ोती है तो उनकी आत्मकथा में हमें किसी विशेप स्थान एवं देश का वर्णन अवश्य ाप्त होगा।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा साहित्य में देशकाल का चित्रण व्यंग्य रूप से होता है। इसमें ता लेखक ही मुख्य होता है। वह अंगी होता है और देशकाल अंगभूत होकर रहता है।

उद्देश्य

प्रत्येक लेखक अपनी कृति की रचना किसी न किसी उद्देश्य से करता है निरु-द्देश्य रचना कोई भी लेखक नहीं करता। यदि वह अपने उद्देश्य को स्पष्ट रूप से पाठक के सम्मुख नहीं रख सकता तो वह परोक्ष रूप से अवश्य ही संकेत कर देता है। आत्मकथा लेखक के उद्देश्य का जहाँ प्रश्न है उसका उद्देश्य अन्य कृतियों से भिन्न होता है। आत्मकथा लेखक का उद्देश्य आत्मविवेचन-आत्मविश्लेपण तो होता ही है परन्तु इसके साथ-साथ वह ख्याति एवं आत्मप्रचार भी चाहता है। इसी उद्देश्य से वह आत्मकथा को लिखता है। इस विषय में चन्द्रावती सिंह ने भी अपने मत का समर्थन किया है। आत्मचरित्र लिखने में अपनी ख्याति, आत्मप्रशंसा और आत्मप्रचार की भावना भी निहित है। यद्यपि अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य ने अपने को व्यक्त

---

१. समीक्षा शास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १६१

करने के अनेक मार्ग अपनाये हैं और इस प्रकार अपने जीवन के विशेष अंगों के विज्ञापन के सर्वदा अनेक प्रयत्न किए हैं किन्तु आधुनिक युग में आत्मचरित्र लिखने की प्रथा सभ्य संसार का आविष्कार है। इसमें सदेह नहीं कि आत्मचरित्र लिखने की इच्छा प्राकृतिक है। अपने को व्यक्त करने और अपने प्रति दूसरों की सहृदय सद्भावना प्राप्त करने का आनन्द अत्यन्त स्वाभाविक है। यही आत्मचरित्र लिखने का प्राकृतिक मूल-कारण है।[1]

इसके अतिरिक्त आत्मकथा साहित्य का उद्देश्य होता है आत्मनिर्माण, आत्म-परीक्षण या आत्मसमर्थन, अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह या जटिल विश्व की उलझनों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्विक प्रयास। इस प्रकार के आत्मकथात्मक साहित्य के पाठकों में सर्वप्रमुख स्वतः लेखक होता है जो आत्मांकन द्वारा आत्मपरिष्कार एवं आत्मोन्नति चाहता है।

आत्म सम्बन्धी साहित्य लिखने का एक दूसरा उद्देश्य यह भी है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सकें। इन दोनों स्वतःसिद्ध उपयोगों के अतिरिक्त आत्मकथा लेखक के मूल में कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी हो सकती है। और अपनी मर्यादा अथवा ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा भी।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा लेखक का उद्देश्य आत्मविश्लेषण एवं आत्मविवेचन के साथ-साथ वाह्य विश्व के साथ अपने सम्बन्ध को वर्णन करना है।

शैली

भावाभिव्यक्ति की कला को शैली कहते हैं। इसमें अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के ढंग होते हैं जिनसे विषयवस्तु की अभिव्यक्ति सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनती है। इसलिए लेखक का शैली पर पूर्ण अधिकार होना आवश्यक है। आत्मकथा लेखक को भी शैली सम्बन्धी सभी विशेषताओं से सतर्क होना पड़ता है। आत्मकथा शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ होती हैं।

सर्वप्रथम इस शैली में प्रभावोत्पादकता का होना आवश्यक है। प्रभावोत्पादकता तभी हो सकती है यदि लेखक अपने जीवन का वर्णन निःसंकोच रूप से करता है। अमानवीय चरित्रों का कभी भी प्रभाव पाठकों पर नहीं पड़ सकता। वे ही चरित्र प्रभावशाली हो सकते है जिनमें मानवीयता है अर्थात् जिनमें जीवन के उत्थान-पतन एवं गुण-दोषों का विवेचन हो। लेखक को यह विवेचन इस ढंग से करना चाहिए कि वह पाठक को रुचिकर प्रतीत हों, तभी वह शैली प्रभावोत्पादक बन सकती है। इस प्रकार निःसंकोच आत्मविश्लेषण शैली को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए आवश्यक है।

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, डे० चन्द्रावती सिंह पृ० १५

२. हिन्दी साहित्य कोष, पृ० ९९

अन्य महत्वपूर्ण विशेपता सुसंगठितता एवं लाघवता है। लेखक को अपने
त जीवन का वर्णन इस ढंग से करना चाहिए जिससे अनावश्यक विस्तार भी न
ौर साथ में गठित भी हो। क्रमानुसार वर्णन अधिक रोचक होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रभावोत्पादकता, लाघवता,
ंकोच आत्मविश्लेपण, सुसंगठितता आदि गुणों से युक्त ही आत्मकथात्मक शैली
: एवं परिपक्व हो सकती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक लेखक कई ढंग से अपनी
मकथा लिख सकता है। अपनी इच्छानुसार वह निबन्धात्मक शैली को भी अपना
ता है और संस्मरणात्मक शैली को भी। जो भी उसे उपयुक्त लगे उसी को वह
ण कर सकता है।

जहाँ प्रश्न भापा का है वह तो है ही भावाभिव्यक्ति का साधन। भापा का
वानुकूल एवं विपयानुकूल होना आवश्यक है। माधुर्य और प्रसाद गुण का भापा
होना आवश्यक है। शुद्ध एवं परिपक्व भापा द्वारा ही लेखक अपने विचारों का
गव पाठकों पर डाल सकता है। भापा को श्रेष्ठ बनाने के लिए शब्दचयन का भी
पय एवं भावानुकूल होना आवश्यक है।

र्गीकरण

आत्मकथा साहित्य का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। सर्व-
थम लेखकों के आधार पर—इसमें कवि, कथालेखकों, आलोचकों एवं राजनैतिक
वं धार्मिक पुरुपों की आत्मकथाएँ आती हैं। द्वितीय शैली के आधार पर—इसमें
नेबन्धात्मक शैली में लिखी हुई आत्मकथा, संस्मरणात्मक शैली में लिखी हुई आत्म-
कथाएँ एवं डायरी शैली में लिखी हुई सभी आत्मकथाएँ आती हैं। इस प्रकार आत्म-
कथा साहित्य के विभाजन के दो ही आधार हो सकते हैं।

रेखाचित्र

हिन्दी साहित्य में गद्य की अनेक नूतन विधाओं का विकास हुआ है जिनमें
रेखाचित्र भी एक नया कला रूप है। रेखाचित्र कहानी से मिलता-जुलता साहित्य रूप
है। यह नाम अंग्रेजी के स्केच शब्द की नाप-तौल पर गढ़ा गया है। स्केच चित्रकला
का अंग है। इसमें चित्रकार कुछ इनी-गिनी रेखाओं द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति या
दृश्य को अंकित कर देता है—स्केच रेखाओं की बहुलता और रंगों की विविधता में
अंकित कोई चित्र नहीं है, न वह एक फोटो ही जिसमें नन्हीं से नन्हीं और साधारण
से साधारण वस्तु भी गिन जाती है। साहित्य में जिसे रेखाचित्र कहते हैं उसमें भी
कम से कम शब्दों में कलात्मक ढंग से किसी वस्तु व्यक्ति या दृश्य का अंकन किया
जाता है। इसमें साधन शब्द हैं रेखाएँ नहीं। इसीलिये इसे शब्द-चित्र भी कहते हैं।
रेखाचित्र किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी,

भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है।[1] इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्र में किसी भी व्यक्ति का, घटना का एवं भाव का चित्रण कम से कम शब्दों में कलात्मक ढंग से किया जाता है जिससे वह सजीव, भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हो। रेखाचित्र के अंकन में संक्षिप्तता एवं लाघवता का होना आवश्यक है।

रेखाचित्र चित्रकला और साहित्य के सुन्दर सुहाग से उद्भूत एक अभिनव कला रूप है। रेखाचित्रकार साहित्यकार के साथ ही साथ चित्रकार भी होता है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलामय स्पर्श से चित्रपटल पर अंकित विशृंखला रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को सँवारकर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार मनःपटल पर विशृंखला रूप में बिखरी हुई शतशत स्मृति रेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग में रंजित कर जीते-जागते शब्द-चित्र में परिणत कर देता है। यही शब्द-चित्र रेखाचित्र कहलाता है।[2] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार चित्रकार की भांति असंख्य घटनाओं में से कुछ प्रभावशाली घटनाओं का वर्णन ही ऐसे ढंग से करता है जिससे वे सजीव एवं प्रभावोत्पादक हों और उनके वर्णन से भावों एवं विचारों का स्पष्ट चित्रण हो।

साहित्य में रेखाचित्रकार को अत्यन्त कठोर साधना का पथ अपनाने की आवश्यकता है। वह ही एक मात्र ऐसा कलाकार है जो अपने चारों ओर फैले हुए विस्तृत समाज के किसी भी अंग तथा पक्ष का चित्रण अपनी लेखनी तूलिका से ऐसा सजीव करता है कि पाठक यह अनुभव करने लगता है कि मैं वर्ण्यवस्तु के अत्यन्त सान्निध्य में हूँ।[3] इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार का विषय कुछ भी हो सकता है। वह किसी भी व्यक्ति, घटना एवं स्थान का चित्रण कर सकता है, पर वह चित्रण ऐसा होता है जिससे पाठक प्रभावित होता है।

वह प्रकृति की जड़ अथवा चेतन किसी भी वस्तु को अपने शब्द शिल्प से सजीव कर देता है। जिस आदमी को जीवन के विविध अनुभव प्राप्त नहीं हुए, जिसने आँखें खोलकर दुनिया को नहीं देखा, जिसे कभी जीवन संग्राम में जूझने का अवसर नहीं मिला, जो संसार के भले बुरे आदमियों के संसर्ग में नहीं आया और जिसने एकांत में बैठकर जिन्दगी के भिन्न-भिन्न प्रश्नों पर विचार नहीं किया, भला वह क्या सजीव चित्रण कर सकता है।[4] बनारसीदास चतुर्वेदी के अनुसार रेखाचित्रकार वही हो सकता है जिसे जीवन का अधिक से अधिक अनुभव हो, इसके साथ ही जिस व्यक्ति ने जीवन के अनेक उतराव-चढ़ाव देखे हों, विद्वान एवं अनुभवी व्यक्ति ही

---

१. हिन्दी साहित्य कोष, पृ० ७३१

२. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, ले० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ४६०

३. साहित्य विवेचन, ले० क्षेमेन्द्र सुमन

४. रेखाचित्र, ले० बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ० ७

ाचित्रकार बन सकता है क्योंकि ऐसा योग्य व्यक्ति ही विचारों एवं भावों का स्पष्ट
त्रण कर सकता है।

जिस प्रकार रेखाचित्र की दृष्टि जितनी पैनी होगी तथा उसकी अनुभूति
तनी चित्रित सत्य के निकट होगी उतना ही उसके द्वारा अंकित किया गया रेखा-
त्र सजीव और प्रभावोत्पादक होगा।[1]

अत: उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्र न कहानी है और न गद्यगीत,
निबन्ध है और न संस्मरण; रेखाओं में जीवन के विविध रूपों का आकार देने की
गाली की विशेषता को अपनाकर ही शब्द द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार
रने वाले शब्द चित्रों को रेखाचित्र की संज्ञा प्रदान की गई है। इस प्रकार 'रेखाचित्र
ाहित्य का वह गद्यात्मक रूप है जिसमें एकात्मक विषय विशेष का शब्द-रेखाओं से
वेदनशील चित्र प्रस्तुत किया जाता है।'

त्व

वर्ण्य विषय—यह रेखाचित्र साहित्य का प्रमुख तत्व है। रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति
थवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप-विधान है
जसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अपना
नजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।[2] इससे स्पष्ट होता है कि रेखाचित्र-
ार का विषय कोई भी व्यक्ति घटना अथवा वस्तु जिसका कि उससे जीवनभर
धिक प्रभाव हो जाता है। जहाँ तक व्यक्ति का प्रश्न है इसमें यह कोई आवश्यक
हीं कि वह किसी महान् पुरुष की रेखा ही चित्रित करता है वह तो साधारण से
ाधारण व्यक्ति के विषय में भी लिख सकता है। यह तभी हो सकता है यदि उस
यक्ति में कुछ ऐसे गुण हों जिनसे लेखक विशेष रूप से प्रभावित हुआ हो। ऐसे ही
टना के विषय में है। वह किसी भी ऐसी घटना का चित्रण करता है जिससे कि वह
अधिक प्रभावित हो। वह किसी विशेष स्थल का चित्रण भी कर सकता है। इस
प्रकार रेखाचित्रकार का विषय जड़ भी हो सकता है और चेतन भी।

विषय चुनाव के पश्चात् वर्ण्य विषय में कुछ ऐसे गुणों का होना आवश्यक है
जो कि रेखाचित्र को सफल बनाते हैं। वर्ण्य विषय में सर्वप्रथम सत्यता एवं यथार्थता
का होना आवश्यक है। प्रत्येक रेखाचित्र का विषय अनुभूत्यात्मक होता है काल्पनिक
नहीं। इसलिए इसमें वास्तविकता होती है। रेखाचित्र में जितनी वास्तविकता होगी
उतना ही वह सफल माना जायेगा। पाठकगण पर जितना प्रभाव वास्तविक घटनाओं
का पड़ता है उतना काल्पनिक घटनाओं का नहीं। रेखाचित्र जितना सत्य के निकट
हो उतना अच्छा है। इसमें थोड़ी अतिरंजना विनोद की सामग्री अवश्य उपस्थित कर

---

१. सिद्धान्तालोचन, ले० धर्मचन्द्र सन्त पृ० १७६
२. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, ले० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ४८०

देती है किन्तु विनोद चुटीला न होना चाहिए। रेखाचित्र में भी 'सत्यं शिवं सुन्दरम' का आदर्श पालन करना पड़ता है।[1]

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका विषय में होना आवश्यक है वह है रोचकता। लेखक को अपने जीवन की अनुभूतियों का इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे वह पाठक को रुचिकर प्रतीत हों। न तो स्केच इतना काल्पनिक ही होना चाहिए कि हमारी कल्पना तक ही सीमित रहे, और न इतना वास्तविक ही कि केवल हमारी दृष्टि तक ही सीमित रहे। 'स्कैच' का साहित्यिक मूल्य और सुन्दरता केवल सामयिक अथवा स्थानीय ही न हो वरन् प्रत्येक युग में और प्रत्येक जगह उसकी रोचकता वनी रहे और वह नीरस न हो जाए।[2] इस प्रकार वर्ण्य विषय में रेखाचित्रकार को रोचकता लाने के लिए उचित कल्पना का भी प्रयोग करना पड़ता है।

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका विषय वर्णन में होना आवश्यक है वह है संक्षिप्तता। रेखाचित्रकार की सीमाएँ निश्चित हैं। उसे कम से कम शब्दों में सजीव से सजीव रूप विधान और छोटे से छोटे वाक्य से अधिक तीव्र और मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना करनी पड़ती है।[3] रेखाचित्र की विशेपता विस्तार में नहीं तीव्रता में होती है।[4] इससे स्पष्ट है कि वर्ण्य विषय में संक्षिप्तता का होना आवश्यक है। आवश्यक विस्तार विषय को नीरस वना देता है।

इस प्रकार वही विषय उत्कृष्ट कोटि का माना जाएगा जिसमें वास्तविकता, स्पष्टता, रोचकता एवं संक्षिप्तता आदि गुणों का समावेश हो।

चरित्रोद्घाटन

रेखाचित्र साहित्य का यह अन्य महत्वपूर्ण तत्व है। रेखाचित्रकार का उद्देश्य किसी भी व्यक्ति के चरित्र का विश्लेषण करना नहीं है वरन् चरित्रोद्घाटन करना है। रेखाचित्रकार का कार्य तो प्रभावित व्यक्ति के जीवन से सम्वन्धित प्रमुख घटनाओं का वर्णन करना ही है उसी से पाठक को उसके व्यक्तित्व का अनुमान हो जाता है। पाठक को प्रभावित करने के लिए वह नायक के व्यक्तित्व से सम्वन्धित घटनाओं का ऐसा चित्रण करता है कि वह उसके चरित्र को स्वयं स्पष्ट कर देती हैं। उसका कारण यह है कि रेखाचित्र में प्रधानता संकेतों की होती है इसमें खुलकर बात वहुत कम की जाती है। इस प्रकार थोड़ी सी रेखाओं द्वारा एक सजीव चित्र बना देना किसी कुशल कलाकार का ही काम हो सकता है...थोड़े से शव्दों में किसी घटनाओं को चित्रित कर देना अथवा किसी व्यक्ति का सजीव चित्र उपस्थित कर देना अत्यन्त

---

१. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय पृ० २४८
२. स्केच 'एक अध्ययन', घनश्यामदास सेठी, अजन्ता, जनवरी, १९५२
३. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, ले० गोविन्द त्रिगुणायत
४. हिन्दी साहित्य कोष

कठिन कार्य है। इसके लिए लेखक को कठोर साधनों की जरूरत है। जहाँ रंग के थोड़े गहरे या किंचित हलके होने से ही तस्वीर बिगड़ सकती है, वहाँ तूलिका को कितनी सफाई कितने चातुर्य के साथ चलाना चाहिए, इसका अन्दाज किसी विशेषज्ञ चित्रकार को ही हो सकता है। इसके लिए सरस्वती मंदिर की आराधना तो अनिवार्य है ही पर साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व को सजीव तथा उन्मुक्त बनाये रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।[1] इस प्रकार उत्कृष्ट चरित्रोद्घाटन के लिए लेखक के व्यक्तित्व का भी उत्कृष्ट होना आवश्यक है। अनुभवी लेखक ही चरित्र सम्बन्धी उत्कृष्ट रेखाएँ प्रस्तुत कर सकता है।

इसके अतिरिक्त स्केचों में साहित्यकार व्यक्ति विशेष के आचरण एवं आकृति मात्र की ही अभिव्यक्ति नहीं करता वरन् उसके व्यक्तित्व के कुछ विशेष तत्वों को उभारता भी है। साधारण शब्दों में चरित्र-चित्रण एवं चरित्र विश्लेषण का अधिक दखल नहीं है। उच्च स्तर का स्केच वही होता है जिसमें व्यक्ति विशेष की रचना होती है। चरित्र-चित्रण से दूर हटकर केवल व्यक्तित्व का विश्लेपण करना निश्चय ही बड़ा कठिन कार्य है।···वहाँ कलाकार छोटी-छोटी घटनाओं से सहायता लेता है।··· Anecdots से शब्द चित्र लेखक व्यक्ति विशेष का व्यक्तित्व खड़ा करता है इनसे कभी वह उसके व्यक्तित्व की नोक पलक सँवारता है और कभी तेवर की झलक दिखलाता है और कभी कुछ भावनाओं के खेल का उल्लेख करके बाद के चेष्टित व्यवहार का विश्लेपण कर देता है। माडल की सूरत, उसके चेहरे का उतार चढ़ाव, तेवरों का अन्दाज, स्वभाव की मृदुता कोमलता कठोरता अथवा कटुता आदि और फिर इन Anecdots में सम्बन्ध क्रम का पूरा-पूरा ध्यान रखना पड़ता है। इनके परस्पर गठन सम्बन्ध और अनुरूपता से कुल की रचना होती है।[2]

इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार किसी भी व्यक्ति के चरित्र का चित्रण नहीं अपितु उद्घाटन करता है। चरित्रोद्घाटन के लिए उसका अपना व्यक्तित्व भी प्रभावशाली होना आवश्यक है।

देश-काल वातावरण

रेखाचित्र का सम्बन्ध अधिकतर देश से होता है काल से नहीं। क्योंकि वर्ण्य विषय किसी स्थान विशेष में विद्यमान रहता है उसके आस-पास की कुछ परिस्थितियाँ होती हैं। ये पार्श्ववर्ती भाग गतिशील नहीं होते हैं और वर्ण्य विषय के साथ नित्य संपृक्त रहते हैं। उनके बिना पात्र या वस्तु का अस्तित्व गोचर नहीं हो सकता। रेखाचित्रकार उन स्थायी सम्बन्ध रखने वाले अंगों का वर्णन करता है।[3] इस प्रकार

---

१. रेखाचित्र, ले० बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ० १
२. रेखाचित्र एक अध्ययन, ले० घनश्यामदास सेठी, अजन्ता, १९५५
३. सिद्धांतालोचन, ले० धर्मचन्द्र संत, पृ० १७१

देश व किसी विशेष स्थल का चित्रण करना रेखाचित्रकार के लिए आवश्यक है।

प्रत्येक घटना के घटित होने का कोई न कोई विशेष स्थल होता है। जब लेखक उस घटना का वर्णन करता है तो उसके लिए उस स्थान विशेष का वर्णन करना भी आवश्यक हो जाता है जहाँ वह घटित हुई हो। इसलिए देश का चित्रण रेखाचित्र में होता है। कई यात्रा सम्बन्धी रेखाचित्रों में इसका प्रमुख रूप से वर्णन होता है।

जहाँ तक वातावरण का प्रश्न है लेखक सांकेतिक रूप से पाठक को तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान करवा देता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्र साहित्य में प्रमुखता देश-चित्रण की ही होती है वातावरण का वर्णन तो गौण रूप से होता है।

उद्देश्य

यह रेखाचित्र साहित्य का प्रमुख तत्व है। इसमें लेखक का जीवन दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि, जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना होती है। कोई भी लेखक निरुद्देश्य रचना नहीं करता बिना उद्देश्य के साहित्यिक कृति प्रयोजनहीन एवं व्यर्थ होती है। रेखाचित्रकार का प्रमुख उद्देश्य होता है चरित्र विशेष के बाह्य और आभ्यान्तर दोनों ही के मार्मिक एवं संवेदनशील तत्वों को उभारकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देना।[1] इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के बाह्य और आन्तरिक दोनों स्वरूपों का चित्रण करना है। बाह्यरूप का चित्रण तो किसी भी साहित्यकार को करना कठिन है परन्तु आन्तरिक मस्तिष्क का विश्लेषण रेखाचित्रकार स्पष्ट रूप से न करके अपनी रेखाओं से सांकेतिक रूप से करता है। यहाँ लेखक काउद्देश्य नायक के चरित्र का उद्घाटन करना है विश्लेषण नहीं, विश्लेषण तो स्वयं हो जाता है। यहाँ पर लेखक उस व्यक्ति के चित्रण में ही अपनी मानसिक प्रतिक्रियायों, मान्यताओं एवं आदर्शों को पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है इस प्रकार वह व्यक्ति के माध्यम से ही अपने आदर्शों की अभिव्यक्ति करता है। मानवेतर रेखा-चित्र भी किसी न किसी सत्प्रेरणा को लेकर लिखे जाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि रेखाचित्रों में लेखक का दृष्टिकोण, उसका जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाविष्ट,हो जाता है।

भाषा शैली

शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषय वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। रेखाचित्र शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जिनका होना इसमें आवश्यक है।

सर्वप्रथम रेखाचित्र शैली में चित्रात्मकता का होना आवश्यक है। स्केच

---

१. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, ले० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ४९२

चित्रकला का अंग है। जिस प्रकार चित्रकार कुछ इनी-गिनी रेखाओं द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति के दृश्य को अंकित कर देता है इसी प्रकार रेखाचित्रकार भी शब्दों से चित्र को बनाता है। इस तरह चित्रात्मकता का इस शैली में होना आवश्यक है। चित्रात्मकता का गुण तो इस शैली में ऐसा है कि वह अर्थात् लेखक नायक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण शब्दों द्वारा ऐसे ढंग से करता है कि उसका स्पष्ट अनुमान पाठक को हो जाता है।

शैली वही उत्कृष्ट मानी जाती है जिसका प्रभाव पाठकों पर स्थायी रूप से रहे। इसलिए शैली में प्रभावोत्पादकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रभावपूर्ण शैली तभी हो सकती है यदि लेखक नायक का वर्णन रोचकपूर्ण ढंग से करे। इस प्रकार शैली में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए रोचकता का होना भी आवश्यक है।

संक्षिप्तता का गुण भी इस शैली में आवश्यक है। लेखक को सीमित परिधि में शब्दों से रेखाओं का काम लेकर कोण को सम्पूर्ण बनाना होता है जो विशेपलाधव संक्षिप्तता स्फूर्ति का काम है। इस प्रकार लाघवता का होना इस शैली में अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही शैली में आत्मीयता का होना भी आवश्यक है। इससे वर्ण्य विपय पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप पड़ती है। इस विशेपता से शैली अधिक प्रभावपूर्ण बन जाती है और इसे गद्य की अन्य विधाओं से पृथक् करती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पप्ट है कि रेखाचित्र शैली में चित्रात्मकता, प्रभावोत्पादकता, रोचकता, लाघवता, एवं आत्मीयता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इन्हीं से युक्त शैली परिपक्व शैली बनती है।

भापा का जहाँ तक प्रश्न है, भापा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। भावानुकूल एवं विपयानुकूल भापा का प्रयोग कृति को अधिक प्रभावपूर्ण बना देता है। रेखाचित्र में शब्द-विन्यास तथा वाक्य-विन्यास की विशिष्टता होती है। एक शब्द का एक वाक्य तथा अपने में चित्र हो सकता है। रेखाचित्र में यथार्थ के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों से ध्वनि चित्र रंगों का उल्लेख कर वर्ण चित्र अंकित किए जाते हैं। मिलते-जुलते शब्दों में से प्रभाववर्द्धन किया जाता है। चुभते चित्रोपम विशेपण, साम्यमूलक अलंकार, लक्षणाव्यंजना आदि कवित्वपूर्ण प्रसाधनों से चित्र को सजीव किया जाता है। इस प्रकार भावानुकूल एवं विपयानुकूल भापा का प्रयोग ही इस शैली में अत्यन्त आवश्यक है।

वर्गीकरण

वर्ण्य विपय के अनुसार रेखाचित्र चार प्रकार के होते हैं—

१. साहित्यिक लेखकों के रेखाचित्र।
२. मानवीय गुणों से सम्पन्न साधारण पुरुपों के रेखाचित्र।
३. राजनैतिक पुरुपों के रेखाचित्र।
४. मानवेतर जड़ या चेतन सम्बन्धी।

इसमें पशु-पक्षी एवं खण्डहरों-इमारतों के रेखाचित्र आते हैं। शैली के अनुसार रेखाचित्र तीन प्रकार से लिखे जा सकते हैं—कथात्मक शैली, संस्मरणात्मक शैली एवं प्रतीकात्मक शैली। इस प्रकार शैली की दृष्टि से रेखाचित्र तीन प्रकार के हो सकते हैं।

संस्मरण

हिन्दी साहित्य में गद्य की अन्य नवीनतम विधाओं में संस्मरण साहित्य का भी विशेष स्थान है। संस्मरण कुछ असम्वद्ध घटनाओं का नोट हो सकता है जो लेखक के जीवन से सम्बन्ध रखता है और जिसे या तो चरित्रनायक स्वयं लिखे अथवा उसे अन्य व्यक्ति लिखे। जीवन की बहुत-सी बातों में संसार की हलचलों में दफ्तर की किसी कार्यवाही में या किसी सभा में जो समय-समय पर बातें घटी हैं उनका अलग-अलग वर्णन संस्मरण कहा जा सकता है। इसमें आत्मचरित्र की एकता नहीं हो सकती है और न व्यक्तित्व का कोई चित्र उपस्थित हो सकता है। उसमें मनुष्य की कुछ मुख्य-मुख्य प्रसिद्ध बातें जानी जा सकती हैं। लेकिन मनुष्य की आत्मा, उसका मस्तिष्क नहीं पहचाना जा सकता है। किसी का संस्मरण उसका जीवन-चरित्र लिखने वाले लेखक के लिए सामग्री का काम दे सकता है, और निस्सन्देह जीवनी लेखक को इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। संस्मरण जीवन सम्बन्धी घटनाओं का केवल ऐतिहासिक उल्लेख कहा जा सकता है।[1] इससे स्पष्ट है कि संस्मरण साहित्य जीवनी साहित्य का एक अंग है इसमें मनुष्य की कुछ प्रमुख घटनाओं का जिनसे लेखक प्रभावित होता है उल्लेख होता है, व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का वर्णन नहीं होता।

स्मरण और 'संस्मरण' शब्द विषय और प्रकृति की अव्यवस्थता को सूचित करते हैं, लेखक लिखते समय जो भी याद कर सकता है, उन्हीं का इनमें वर्णन होता है।[2]

The very words reminiscence and memoirs, imply a certain informality of nature and purpose, they are what the writer can remember at the time of writing.

इस परिभाषा में संस्मरण की अव्यवस्थता पर अधिक लिखा है। इसमें संस्मरण का अर्थ लेखक की स्मरण शक्ति को लक्षित करता है। याद की हुई घटनाओं का जिसमें वर्णन हो उन्हीं को संस्मरण साहित्य में लिया है।

संस्मरण में सम्पूर्ण जीवन के कुछ विशिष्ट अंगों का प्रकाशन किया जाता है। संस्मरण में केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख रहता है जिनसे लेखक के जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों का संकेत मिलता है और जो अन्य जनों के कौतूहल को

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १९-२०

२. One Mighty Torrent by Edgar Johnson, P. 125.

शान्त करने में सहायक हो सकती हैं।—संस्मरण सामान्यतः प्रसिद्ध व्यक्ति ही लिख सकता है। अपने कार्य क्षेत्र में सामान्य प्रसिद्धि प्राप्त करके लेखक अपने जीवन के कुछ खंड जिनमें अन्य जनों की सहज रुचि हो सकती है संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करता है। इस स्थिति में वह लेखक आकर्षण का कारण नहीं होता अपितु उसके संस्मरण में वर्णित वृत्त में आकर्षण रहता है।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरण प्रसिद्ध व्यक्ति ही लिख सकता है। इसके साथ ही वह अपने जीवन से सम्बन्धित संस्मरण भी लिख सकता है और अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी। कुछ भी हो चाहे वह अपने जीवन के विषय में लिखे चाहे अन्य व्यक्ति के विषय में ये सभी संस्मरण उसके व्यक्तित्व से अवश्य प्रभावित होंगे वर्णन शैली में लेखक अपनी कोमल कल्पना की सहायता ले सकता है तभी वह अपने संस्मरणों को प्रभावशाली बना सकता है इन सभी विशेषताओं को एकत्रित रूप से यदि वर्णित किया जाय तो संस्मरण की परिभाषा यह हो सकती है—जब लेखक अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन करता है तब उसे संस्मरण कहते हैं।

तत्व

वर्ण्य विषय—संस्मरण साहित्य का यह प्रमुख तत्व है। इसमें लेखक अपने या अन्य व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विशिष्ट या रमणीय घटनाओं का वर्णन करता है। घटनाओं में उन्हीं का वर्णन होता है जिनसे लेखक स्वयं प्रभावित होता है और यह अनुभव करता है कि अन्य व्यक्ति भी प्रभावित होंगे। संस्मरण किसी विशेष व्यक्ति के ही लिखे जाते हैं। जिस भी व्यक्ति के संस्मरण लेखक लिखे उसे जनता में अवश्य प्रतिष्ठित होना चाहिए। ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के संस्मरण ही जनता के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रतिष्ठित व्यक्ति राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक कोई भी हो सकता है।

वर्ण्य विषय की कुछ विशेषताएँ होती हैं जोकि उसे उत्कृष्ट बनाती हैं। इनमें सर्वप्रथम रोचकता है। लेखक को अपने विषय का वर्णन इस ढंग से करना चाहिए जिससे कि वह पाठक को सरस प्रतीत हो। नीरस विषय को पढ़ने के लिए कोई भी व्यक्ति तैयार नहीं होता। इस प्रकार रोचकता का विषयवर्णन में होना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका वर्ण्य विषय में होना आवश्यक है वह है स्पष्टता। यदि लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन

1. सिद्धान्तालोचन, ले० धर्मानन्द शर्मा, पृ० २१२

पूर्ण ईमानदारी से करता है तभी वह सफल संस्मरण लेखक हो सकता है। किसी भी व्यक्ति का संस्मरण तभी सच्चा उतर सकता है जबकि लेखक का संस्मरण-नायक से निकट सम्पर्क रहा हो और उसको उसने हर पहलुओं से देखा और समझा हो। ऐसा न होने से परिणाम यह होता है कि मनुष्य कुछ है और उसका चित्रण उसके बिल्कुल विपरीत होता है।[1]

इसके पश्चात् वर्ण्य विषय में सुसंगठितता का होना भी आवश्यक है। लेखक जिस भी घटना का वर्णन करना चाहे उसमें भावों और विचारों का तारतम्य होना आवश्यक है। जीवन की समस्त अनुभूतियों का वर्णन क्रमबद्ध रूप से करना आवश्यक है। ये सभी विशेषताएँ वर्ण्य विषय को रोचक एवं प्रभावशाली बनाती हैं। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्ण्य विषय को दो प्रकार से वर्णन किया जा सकता है यदि संस्मरण लेखक अपने सम्बन्ध में लिखे तो उसकी रचना आत्मकथा के निकट होगी यदि अन्य व्यक्ति के विषय में लिखे तो जीवनी के निकट।[2]

चरित्र-चित्रण

यदि लेखक अपने जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन संस्मरणात्मक शैली में करता है तो वह उसकी संस्मरणों में लिखी आत्मकथा बन जाती है। यदि वह अन्य व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करता है तो वह जीवनी संस्मरणों में लिखी हुई मानी जाती है इन दोनों में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करता है जिनका प्रभाव जनता पर स्पष्ट रूप से पड़ सकता है। वे सभी घटनाएँ केवल उसके चरित्र के गुणों को ही स्पष्ट करने के लिए नहीं लिखी जातीं उनमें कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन भी होता है जोकि उसकी चारित्रिक दुर्बलताओं की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार संस्मरणों में चरित्र सम्बन्धी गुण-दोषों का वर्णन स्पष्ट रूप से किया जाता है।

लेखक द्वारा लिखा हुआ प्रत्येक पृष्ठ उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी प्रत्येक कृति में स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। यदि लेखक मनोविज्ञानकार है तो वह अपने नायक का चरित्र मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखेगा उसके चरित्र का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करेगा। ऐसे लेखक अपने नायक के चरित्र का चित्रण तो करते ही हैं इसके साथ उसके मस्तिष्क में छिपी हुई उनकी भावनाओं एवं उलझनों का भी स्पष्ट रूप से विश्लेषण करते हैं। कुछ ऐसे संस्मरण भी लिखे जा सकते हैं जोकि नायक के जीवन की कुछ घटनाओं को ही व्यक्त करते हैं। ऐसे संस्मरण यद्यपि नायक के सम्पूर्ण जीवन को नहीं स्पष्ट करते

---

१. बालकृष्ण भट्ट (संस्मरणों में जीवन), ले० ब्रजमोहन व्यास, पृ० १० आमुख
२. हिन्दी साहित्य कोष, पृ० ८७०

प्रत्युत फिर भी उन कुछ वर्णित पृष्ठों का वर्णन ही ऐसे ढंग से लेखक करता है कि नायक के सम्पूर्ण चरित्र का अनायास ज्ञान हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि संस्मरण साहित्य में भी लेखक नायक के चारित्रिक गुण-दोषों का वर्णन स्पष्ट रूप से करता है जिससे कि उसका चरित्र स्पष्ट हो जाता है।

देशकाल वातावरण

वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है। संस्मरण साहित्य को वास्तविकता का भान देने की कसौटियों में वातावरण मुख्य उपकरण है। संस्मरण लेखक भी देश और काल की जंजीर में जकड़े हुए होते हैं। नायक के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए देशकाल का चित्रण आवश्यक है। नायक के व्यक्तित्व के अनुसार ही वातावरण एवं परिस्थितियों का चित्रण लेखक करता है। यदि लेखक का नायक साहित्यिक है तो उसके संस्मरणों में लेखक जहाँ उसके साहित्यिक व्यक्तित्व को स्पष्ट करेगा वहाँ उसका स्थान निर्धारित करने के लिए उसे तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का अवश्य वर्णन करना पड़ेगा।

यदि नायक राजनैतिक व्यक्ति है तो उसमें पाठक को तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का ज्ञान होगा। क्योंकि उनके नायक का व्यक्तित्व इन्हीं परिस्थितियों में निखरता है इसलिए ये सभी वर्णन उसके लिए आवश्यक हो जाते हैं। यही नहीं कुछ राजनैतिक व्यक्ति अच्छे लेखक भी होते हैं। इसलिए उनके जीवन में दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों का वर्णन होता है। धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान हमें ऐसे पुरुषों के जीवन से मिलता है जिनका सम्पूर्ण जीवन इन्हीं में व्यतीत हुआ हो। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि परिस्थितियों का वर्णन केवल नायक के व्यक्तित्व को उभारने के लिए ही किया जाता है प्रमुख रूप से नहीं।

देश और काल में वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान आवश्यक है। इसलिए चरित्र को और उज्ज्वल एवं प्रभावशाली बनाने के लिए जहाँ लेखक तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करते हैं वहाँ विशेष स्थान का वर्णन भी करते हैं जहाँ ये सभी घटनाएँ घटित होती हैं। कई संस्मरण तो लिखे ही इसी दृष्टिकोण से जाते हैं। यात्रा सम्बन्धी संस्मरणों में नगरों एवं विशेष स्थलों का चित्रण होता है। इस प्रकार संस्मरणों में वास्तविकता एवं प्रभावोत्पादकता लाने के लिए देशकाल वातावरण का चित्रण आवश्यक है।

उद्देश्य

यह संस्मरण साहित्य का प्रमुख तत्व है। इसमें लेखक की जीवन दृष्टि का विवेचन होता है। इसे लेखक का जीवन-दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि या जीवन की व्याख्या कह सकते हैं। निरुद्देश्य रचना प्रयोजनहीन एवं व्यर्थ होती है। संस्मरण साहित्य का उद्देश्य अन्य विधाओं से पृथक् है। इसमें लेखक अपने समय के इतिहास को लिखना चाहता है परन्तु इतिहासकार के अनुरूप रूप में वह विस्तृत रूप

है। संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है जिसका वह स्वयं अनुभव करता है उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती हैं। इस दृष्टि से शैली में वह निबन्धकार के समीप है। वह वास्तव में अपने चतुर्दिक के जीवन का सर्जन करता है, सम्पूर्ण भावना और जीवन के साथ, इतिहासकार के समान वह विवरण प्रस्तुत करने वाला नहीं।[1] इससे स्पष्ट है कि संस्मरणों में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का चित्रण करता है जिनसे वह प्रभावित होता है और उसके सम्मुख घटित हुई होती हैं। लेखक केवल उन घटनाओं का वर्णन ही नहीं करता अपितु उनके विषय में अपनी विचारधाराओं का भी वर्णन करता है जिससे हमे लेखक के विचारों का भी आभास हो जाता है।

संस्मरणों में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का चित्रण करता है जिनसे वह स्वयं प्रभावित होता है। अपने अतीत की स्मृतियों को साकार रूप देने का उसका अवश्य कोई न कोई उद्देश्य होता है। एक तो लेखक इस उद्देश्य से इनका वर्णन करता है कि ये वर्णित घटनाएँ समय-समय पर उसे प्रेरणा देती रहें। जब भी जीवन में प्रेरणा की आवश्यकता पड़े पाठक इनको पढ़ सके। अन्य बात यह है कि कुछ संस्मरण इस उद्देश्य से लिखे जाते हैं कि उनको लिखकर लेखक को मानसिक संतोष प्राप्त होता है।

लेखक अपने जीवन के अनुभवों का वर्णन इसी दृष्टिकोण से करता है कि शायद इनके पढ़ने से कुछ लोग प्रेरणा ग्रहण कर सकें क्योंकि संस्मरण में तो लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करता है जिनसे लेखक के जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों का संकेत मिलता है और जो अन्य जनों के कौतूहल को शान्त करने में सहायक हो सकते हैं।[2] इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरण लेखक का उद्देश्य जहाँ स्वान्तः सुखाय रचना करना है वहाँ प्रभावशाली अतीत की स्मृतियों का चित्रण करना भी है जिससे उसे एवं पाठकगण को प्रेरणा मिलती रहे।

भाषा शैली

शैली अनुभूत विपयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। संस्मरण शैली की कुछ अपनी ही विशेपताएँ हैं जो इसको सम्पन्न एवं प्रभावोत्पादक बनाती है। सर्वप्रथम इस शैली में प्रभावोत्पादकता का होना आवश्यक है। संस्मरण इस ढंग से लिखने चाहिए जिससे वे पाठक पर अपना प्रभाव स्थायी रूप से डाल सकें। यह प्रभाव तभी डाल सकते हैं जबकि इनका रोचकता से वर्णन हो। उत्तम ढंग से कही हुई बात ही अधिक प्रभाव डाल सकती है इस प्रकार रोचक शैली का होना भी आवश्यक है।

---

१. हिन्दी साहित्य कोप, पृ० ८७०

२. सिद्धांतालोचन, ले० धर्मचन्द सन्त

जब तक प्रत्येक भाव एवं विचार का वर्णन सुसंगठित रूप से न किया गया हो तब वह पाठक को रुचिकर न प्रतीत होगी और प्रभावित करने के लिए असमर्थ प्रतीत होगी। इसलिए शैली में रोचकता, सुसंगठितता एवं प्रभावोत्पादकता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

संस्मरण लिखने के कई ढंग हो सकते हैं। ये निबन्धात्मक शैली में लिखे जा सकते हैं। जब लेखक अपने जीवन से सम्बन्धित संस्मरणों का वर्णन करता है तब वे आत्मकथा शैली में लिखे जाते हैं। कई बार लेखक अपने संस्मरणों का विवेचन पत्रात्मक एवं डायरी शैली में भी करता है। इस प्रकार संस्मरण लिखने की कई शैलियाँ हैं।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। यदि भाषा शुद्ध परिमार्जित एवं भावानुकूल होगी तभी वह पाठक को प्रभावित कर सकती है। स्वाभाविक एवं प्रसाद गुण का भाषा में होना अत्यन्त आवश्यक है। शब्दचयन भी विषयानुकूल होना चाहिए।

वर्गीकरण

संस्मरण लेखकों के आधार पर संस्मरण साहित्य का विभाजन यदि किया जाय तो संस्मरण साहित्यिक व्यक्ति एवं राजनैतिक व्यक्ति भी लिख सकते हैं। साहित्यिक व्यक्ति से अभिप्राय है जिस व्यक्ति ने अपनी रचना द्वारा हिन्दी साहित्य की प्रगति में सहयोग दिया हो। इसमें कवि, कथा-लेखक, आलोचक आते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्मरण केवल साहित्यिक व्यक्ति ही नहीं लिख सकते राजनैतिक व्यक्ति भी लिख सकते हैं।

यदि विषयवस्तु के आधार पर संस्मरण साहित्य का विभाजन किया जाय तो हमें ज्ञात होता है कि संस्मरण केवल साहित्यिक व्यक्तियों पर ही नहीं लिखे जा सकते अपितु राजनैतिक व्यक्तियों पर भी लिखे जा सकते हैं। कई संस्मरण लेखक जिनको यात्रा का शौक होता है यात्रा सम्बन्धी संस्मरण भी लिख सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्तियों पर भी संस्मरण लिखे जा सकते हैं जो होते तो साधारण हैं परन्तु अपने मानवीय गुणों के कारण वे असाधारण होते हैं।

शैली के आधार पर भी संस्मरण कई प्रकार के होते हैं। संस्मरण आत्मकथात्मक शैली, निबन्धात्मक शैली, पत्रात्मक एवं डायरी शैली में भी लिखे जा सकते हैं।

पत्र

आधुनिक काल में गद्य की अन्य विधाओं के साथ पत्र साहित्य की भी प्रगति हुई है। गद्य की यह विधा गोपनीय आत्मकथा का रूप है। आत्मकथा में व्यक्ति का उद्घाटन सम्भव होता है। पत्रों में कुछ स्वच्छन्द-सा रहता है। पत्रों से हमें लेखक के सहज व्यक्तित्व का पता चलता है। इनमें हमको [illegible] मनुष्य का निज

नहीं, वरन् एक चलते-फिरते मनुष्य का 'स्नेप शॉट' मिल जाता है। लेखक के वैयक्तिक सम्बन्ध उसके मानसिक और वाह्य संघर्ष तथा उसकी रुचि तथा उस पर पड़ने वाले प्रभावों का हमको पता चल जाता है। पत्रों में कभी-कभी तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक व साहित्यिक इतिहास की झलक भी मिल जाती है।[1] इसके अनुसार पत्र साहित्य में लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। जहाँ हमें लेखक के व्यक्तित्व का अनुमान होता है वहाँ उस पर पड़ने वाले सभी प्रभावों का एवं तत्कालीन परिस्थितियों का भी ज्ञान होता है। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उसके लिखे पत्रों का पढ़ना आवश्यक है।

वास्तव में पत्र जीवन का दर्पण है जिसमें उसका निखरा हुआ चित्र स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। दर्पण में से लेखक की मनोवृत्तियाँ, उसकी आकांक्षाएँ उसके जीवन की कठिनाइयाँ, उसकी विचारधाराएँ उसकी प्रगतियाँ उसके जीवन का मानसिक विकास तथा कार्यक्रम चित्रित हो उठते हैं। किसी भी व्यक्ति का यह निखरा हुआ चित्र उसके पत्रों के अतिरिक्त उसकी अन्य किसी रचना अथवा मौखिक वार्तालाप से प्राप्त नहीं होता।[2] इससे स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति के वास्तविक व्यक्तित्व से परिचित होने के लिए उसके पत्रों को पढ़ना आवश्यक है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का जो स्पष्ट चित्रण हम पत्रों में पाते हैं वह अन्यत्र नहीं।

पत्र वह लेख है जो किसी दूर रहने वाले व्यक्ति विशेप को प्रेपित किया जाता है और जिसमें उस दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावनाओं का प्रकाशन रहता है। अंग्रेजी में इस रूप को Letter कहते हैं। अंग्रेजी कोष में भी इसकी यही परिभाषा अंकित है—

A writing directed or sent communicating intelligence to a distant person.

अर्थात् एक दूरस्थ व्यक्ति को निजी वृत्तान्त जब लिखकर प्रेषित किया जाता है तब वह पत्र कहलाता है।

आत्मकथा की भाँति कुछ पत्रों का महत्व उनके विषय पर निर्भर रहता है, कुछ का शैली पर। जिन पत्रों के विपय और शैली दोनों ही महत्वपूर्ण हों वे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाते हैं।[3] इस प्रकार पत्र का विषय और शैली दोनों दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण होना आवश्यक है।

पत्र लेखक अपने विचारों और भावों को पत्र में भावग्राहक के अनुकूल ही लिखता है। पत्र जनता के प्रयोग के लिए नहीं होते। यह एक ही व्यक्ति को लिखे जाते हैं पर लिखे छोटे-छोटे समूहों म जाते हैं। यह भाव ग्राहक अर्थात् पाने वाले

१. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय
२. आदर्श पत्रलेखन, ले० यज्ञदत शर्मा
३. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय

व्यक्ति के स्वाद, समझ और सहानुभूति के अनुसार ही लिखे जाने चाहिएँ।[1]

A letter is not a public performance. Letters are written to single persons, or, at most, to small groups, they should be fitted to the tastes, understandings and sympathies of their recipients.

इस प्रकार पत्र पाने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व अनुसार ही होने चाहिए। इसके अतिरिक्त पत्र लेखक जिस व्यक्ति के लिए पत्र लिखता है उस व्यक्ति का ध्यान रखता है। सामान्यत: साहित्यकार अपने भावों के प्रकाशन के लिए प्रवृत्त होता है। उस समय उसके सम्मुख भावग्राहक उपस्थित नहीं रहता है। पत्र लेखक की स्थिति इससे कुछ भिन्न होती है। लेखन काल में भावग्राहक उसकी आँखों से ओझल नहीं होता है, वह लिखता ही उसके लिए है। साहित्य के अन्य रूपों में लेखक अपने भावों के प्रकाशन के उद्देश्य से प्रवृत्त होता है परन्तु वह लेख जनसाधारण की रुचि का विषय बन जाता है। पत्र लेखक अपने भावों को एक व्यक्ति विशेष के उद्देश्य से लिपिबद्ध करता है परंतु जनसाधारण भी उसे आत्म-संतुष्टि का साधन बना सकता है। इस प्रकार पत्र साहित्य द्विमुखी होता है, उसमें भावों और भावग्राहक दोनों की ओर दृष्टि रहती है।[2]

अत: उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पत्र वह लेख है जो किसी दूर रहने वाले व्यक्ति विशेष को प्रेषित किया जाता है और जिसमें उस दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावनाओं का उसकी रुचि, समझ एवं योग्यता के अनुसार, कलात्मक ढंग से प्रकाशन किया जाता है।

तत्त्व

वर्ण्य विषय—किसी भी साहित्यिक व्यक्ति के व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उसके वैयक्तिक पत्रों का अध्ययन करना आवश्यक है। इनके अध्ययन से ही पाठक लेखक के व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से समझ जाता है। इसलिए पत्रों का प्रमुख विषय लेखक स्वयं है। यह ठीक है कि कुछ पत्र ऐसे भी लिखे जाते हैं जिनमें रोजमर्रा के काम-काज का, जीवन की जटिल समस्याओं का, व्यावसायिक संघों का एवं साहित्यिक राजनैतिक पहलुओं का वर्णन होता है परन्तु इन सभी में उसका व्यक्तित्व झलका करता है। पत्रों का प्रमुख-विषय लेखक के व्यक्तित्व का दिग्दर्शन ही होता है।

वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट बनाने के लिए उनमें स्वाभाविकता, रोचकता, स्पष्टता एवं संक्षिप्तता आदि गुणों का होना आवश्यक है। पत्र में लेखक को अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण रोचकपूर्ण ढंग से करना चाहिए। पाठक को किसी भी प्रकार की कृत्रिमता का आभास नहीं होना चाहिए। लेखक को चाहिए कि वह अपने विषय को

१. One Mighty Torrent by Edgar Johnson, P. 159.

२. [illegible]

परिपक्व करने के लिए इन विशेषताओं का ध्यान रक्खे। अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए उसे चारों ओर के वातावरण से परिचित होना आवश्यक है। उन सभी परिस्थितियों का वर्णन आवश्यक है जिनमें उसका व्यक्तित्व उभरा हो।[1] पत्र लेखक को कुछ निश्चित सुविधाओं की आवश्यकता है, शिष्टाचार में हल्कापन भी हो सकता है। कुछ अपने को एवं अपने चारों ओर से घिरे हुए वातावरण को वास्तविकता से देखने की योग्यता होनी आवश्यक है परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि वह संस्कृति की गहराई में या पूर्ण प्रभावित शक्तियों से परिचित हो परन्तु उसमें इतनी सामर्थ्य का होना आवश्यक है जो उसे दुनिया की हलचल से परे ले जाए और वह अपने बीते हुए अनुभवों को सोच सके।[1]

Letter writing requires a certain ease a tinge of urbanity, some ability really to see yourself and things around you not necessarily great depths of culture or profound reflective powers but a little of the capacity to stand aside for a while from the heat and rush of activity and realise imaginatively what your experiences has been.

इन सुविधाओं के होने से ही उसके पत्र में स्वाभाविकता का समावेश हो सकता है। शान्त वातावरण में ही वह अपने जीवन के अनुभवों को लिख सकता है। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि पत्रों का प्रमुख विषय व्यक्तित्व को स्पष्ट करना है। यदि वह किसी अन्य विषय के सम्बन्ध में पत्र लिखता है तो उससे भी परोक्ष रूप से उसका व्यक्तित्व ही झलकता है।

पात्रों और घटनाओं से सम्बन्ध और उनके प्रति प्रतिक्रिया—प्रत्येक पत्र लेखक जिन घटनाओं का वर्णन अपने पत्रों में करता है उनका उससे विशेष सम्बन्ध होता है। यदि वह किसी व्यक्ति का वर्णन अपने पत्र में करता है तो अवश्य रूप से उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का उससे सम्बन्ध होगा। या तो उसका व्यक्तित्व लेखक को प्रभावित करता होगा या उससे उसको कष्ट होगा। लेखक उसके व्यक्तित्व का वर्णन ही नहीं करता अपितु उस पर टीका-टिप्पणी भी करता है। उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण-दोषों का विवेचन वह स्पष्ट रूप से करता है। यही बात घटनाओं के विषय में कही जा सकती है जहाँ लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करता है वहाँ पर उन घटनाओं का प्रभाव भी दिखलाता है। उसके जीवन में जो भी घटना घटती है उसका उससे सीधा सम्बन्ध होता है। यही नहीं कई बार किसी अन्य व्यक्ति जिससे कि उसका सम्बन्ध होता है उसके जीवन में घटित घटना का प्रभाव भी लेखक पर पड़ जाता है तो उसका विवेचन भी लेखक अपने पत्रों में करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्र लेखक अपने पत्रों में घटनाओं एवं पात्रों का वर्णन ही नहीं करता अपितु उनके प्रति मन में उठी हुई प्रतिक्रियाओं का उल्लेख भी करता है।

---

१. One Mighty Torrent by Edgar Johnson, P.156

उद्देश्य

पत्र लेखक का उद्देश्य आत्मजीवन की व्याख्या होती है। पत्र व्यक्तिगत व्यवहार होता है। इसलिए इसमें व्यक्तित्व की सुगन्धि का होना आवश्यक है। पत्र का विषय लेखक एवं उसका व्यक्तित्व होता है जिसे सर्वत्र ऐसा वर्णन करने का अधिकार होता है। उसके पृष्ठों में यह प्रधान रूप से होता है कि वह क्या करता है और क्या अनुभव करता है। यहाँ तक कि उसके फैले हुए व्यक्तित्व का जो कि प्रत्येक मुहावरे और विशेषण से युक्त होता है उसका भी हम आनन्द लेते हैं। लेखक अपने व्यक्तित्व का सीधा सम्बन्ध हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए जो भी जादूभरे आकर्षण का प्रयोग कर सकता है अपनी भावनाओं को उस जादूभरे आकर्षण से रंग कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। यही उसका मानसिक साहस होता है। अस्पष्ट विचारों की श्रेणी के स्वभाव में, सहानुभूति के शब्दों में, व्यक्तिगत व्यक्तित्व कथन में या अनर्थ वार्तालाप में, प्रभावित विष्कम्भक के रूप में एक चरित्र का निर्माण हमारे सम्मुख होता है उस व्यक्ति का चरित्र जोकि लेखक होता है।[1]

Letters are personal communications. Therefore they should have the flavor of personality......The subject of the letter is the writer, and his personality has every where the right to appear. In his pages who speaks and what he feels about things is central; part of our pleasure is tasting and suffusion of personality even in every phrase and turn of epithet. The direct presence of the writer's personality, by whatever magical touches he can use to conjure his breathing self up before us the very aim and heart of the enterprise. In glimining sequence of moods, in gossip or abmonition or nonsense, in news or words of sympathy, in personal narration or reflective interludes, a character should take place before us the character of the man who wrote there.

इससे स्पष्ट है कि पत्र लेखक का उद्देश्य आत्मीय जीवन की व्याख्या ही होती है। प्रसंगानुसार वह अन्य विषयों का ज्ञान पाठक को करवा सकता है। उद्देश्य की दृष्टि से पत्र साहित्य गद्य के अन्य रूपों से भिन्न होता है। जहाँ यह निर्दिष्ट व्यक्ति को किसी विशिष्ट विषय का ज्ञान मात्र देना चाहता है तब उसका उद्देश्य अन्य साहित्यिकों के सदृश होता है। उसमें आत्मीयता की मात्रा कम रहने से निबन्ध रूप के समीप हो जाता है। जब वह अपना वृत्तान्त ही प्रेषित करना चाहता है तब उसमें मानसिक प्रतिक्रियाओं की कल्पना से आत्मीयता बढ़ जाती है। इस स्थिति में लेखक का उद्देश्य सामान्य मानव जीवन की व्याख्या न होकर आत्मजीवन की

---

1. One Mighty Torrent by Edgar Johnson, P. 160-161.

व्याख्या होती है।[1]

इससे पूर्णतया स्पष्ट है कि पत्र लेखक का प्रमुख उद्देश्य आत्मजीवन की व्याख्या होता है। प्रसंगानुसार वह अन्य विषयों के सम्बन्ध में लिख सकता है पर प्रमुख रूप से व्याख्या वह अपने जीवन की ही करता है।

देशकाल वातावरण

प्रत्येक लेखक व कलाकार अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। वह प्रसंगानुसार अवश्य ही उन परिस्थितियों का उल्लेख करता है। यही बात पत्र लेखक में भी पाई जाती है। यह ठीक है कि उसका उद्देश्य आत्मजीवन की व्याख्या है पर अपने व्यक्तित्व को निखारने के लिए वह उन परिस्थितियों का उल्लेख भी करता है जिनमें उसका सहयोग होता है। राजनैतिक व्यक्ति का सम्बन्ध अपने समय की राजनैतिक परिस्थितियों से प्रमुख रूप से होगा। तो उसके द्वारा लिखे हुए पत्रों में हमें प्रमुख रूप से तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन मिल जाएगा। साहित्यिक व्यक्ति के पत्रों में भी तत्कालीन साहित्यिक राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन परोक्ष रूप से अवश्य मिलेगा। प्रत्येक लेखक अपने समय से अवश्य प्रभावित होता है वह कहीं न कहीं अवश्य ही इन परिस्थितियों का वर्णन कर देता है।

कई पत्र लेखक ऐसे होते हैं जिनको घूमने-फिरने का अधिक शौक होता है। वह अपने मित्रों को सम्बन्धियों को उन स्थानों का वर्णन भी लिख देते हैं तो ऐसे पत्रों में प्रधानता विषय की होती है। इनमें विषय-वर्णन के साथ-साथ लेखक के व्यक्तिगत विचार भी होते हैं तो इस प्रकार वे पत्र भी उनके व्यक्तित्व का दिग्दर्शन करवाते है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पत्र लेखक अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होकर उनका स्वाभाविक रूप से वर्णन अपने पत्रों में करता है।

शैली

पत्र लेखक की शैली गद्य की अन्य विधाओं से पृथक् होती है। इसमें लेखक का मुख्य उद्देश्य आत्माख्यान ही होता है। इसलिए इस शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जिनका इसमें होना अत्यन्त आवश्यक है।

सर्वप्रथम इस शैली में आत्मीयता का होना आवश्यक है। पत्र में लेखक की आत्मीयता प्रकट होनी चाहिए। वर्ण्य विषय की दृष्टि से जब लेखक लिखता है तब उसका अपनापन दबा रहता है वह सीधे रूप में सम्मुख नहीं आता। पत्र साहित्य में आत्मीयता अर्थात् सापेक्ष दृष्टि की अत्यन्त आवश्यकता होती है। आत्मीयता का

---

१. सिद्धांतालोचन, ले० धर्मचन्द

ध लेखक के अपने व्यक्तित्व के साथ भी है और दूरस्थ व्यक्ति के साथ भी।[1] ाकार शैली में आत्मीयता का होना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण विशेषता जिसका पत्र शैली में होना आवश्यक है वह है प्तता। मुक्तक काव्य की तरह पत्र का आकार छोटा होता है इसलिए लेखक ापनी विचारधारा संक्षिप्त रूप से प्रकट करनी चाहिए। अधिक लम्बे आकार का पत्र नहीं बल्कि निबन्ध कहलाता है। अपने विषय एवं शैली को रोचक एवं प्रभाव- ो बनाने के लिए लेखक को पत्र संक्षिप्त लिखना चाहिए।

बात को थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक स्पष्टता देना पत्र की सबसे बड़ी है। पत्रों में कुछ लोग तो अपना सारा व्यक्तित्व उँडेल देना चाहते हैं और उनको निर्वैयक्तिक तथा रंगीनी से खाली रखना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में ाम मार्ग का अनुसरण करना श्रेयस्कर है।[2]

पत्र शैली में स्वाभाविकता का होना आवश्यक है। लेखक को व्यक्तिगत ाचन इस ढंग से करना चाहिए जिससे पाठक को यह न प्रतीत हो कि इसमें कृत्रिमता या बनावटीपन है। स्वाभाविक रूप से किया गया वर्णन अधिक प्रभाव- ली होता है।

इसकी शैली भावग्राहक के अनुकूल होनी चाहिए। भावग्राहक की योग्यता ुसार लिखा हुआ पत्र ही सार्थक होता है। भावग्राहक की योग्यता से अधिक खा हुआ पत्र प्रभावहीन हो जाता है।

इन सब विशेषताओं से युक्त पत्र शैली ही पाठक को प्रभावित कर सकती। भाषा का भी भावानुकूल एवं विषयानुकूल होना आवश्यक है। भाषा में माधुर्य वं प्रसाद गुण का होना आवश्यक है। भाषा को उत्कृष्ट बनाने के लिए शब्दचयन जीव एवं सशक्त होना चाहिए।

र्गीकरण

पत्र कई प्रकार के होते हैं—

१. साहित्यिक पत्र—ऐसे पत्रों का विषय साहित्य से सम्बन्धित होता है। कसी भी साहित्यिक कृति के विषय में, भाषा, व्याकरण एवं शैली के विषय में लेखक जन पत्रों में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं उनको साहित्यिक पत्र कहा जाता है। ऐसे ात्रों में प्रधानता विषय की होती है परन्तु उनमें लेखक के व्यक्तिगत विचारों का व्यौरा ाधिक होता है। ऐसे पत्रों में लेखक किसी भी कृति एवं साहित्यिक योजना के विषय का वर्णन तो करता ही है परन्तु निःसंकोच रूप से अपने सुझाव भी प्रस्तुत करता है।

२. आत्मकथात्मक-पत्र—जिन पत्रों में लेखक अपने जीवन की व्याख्या प्रमुख

---

१. सिद्धांतालोचन, ले० धर्मचन्द संत

२. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय

रूप से करता है उनको आत्मकथात्मक पत्र कहा जाता है। स्वाभाविकता, स्पष्टता एवं आत्मीयता आदि विशेषताएँ इन पत्रों में विशेष रूप से पाई जाती हैं। ऐसे पत्र आत्म-कथा एवं जीवनी के लिए सहायक होते हैं। गोपनीय घटनाओं का वर्णन होने से ये हृदय का दर्पण होते हैं।

३. अन्य चरित्रमूलक पत्र—जिन पत्रों में लेखक किसी व्यक्ति के चरित्र पर प्रकाश डालता है उनको अन्य चरित्रमूलक पत्र कहा जाता है। प्रायः ऐसे पत्र भी लिखे जाते हैं। इन पत्रों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि हमें लेखक से सम्बन्धित कुछ व्यक्तियों के जीवन के विषय में पता चल जाता है। इनके वर्णन से हम लेखक का व्यक्तित्व और स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

४. वर्णनात्मक पत्र—जिन पत्रों में लेखक किसी भवन, स्थान या नगर विशेष का वर्णन करता है उनको वर्णनात्मक पत्र कहा जाता है। ऐसे पत्रों की शैली सजीव एवं प्रभावोत्पादक होती है।

५. विचार-प्रधान पत्र—जिन पत्रों में किसी विशेष समस्या एवं उलझन पर प्रकाश डाला जाता है वे विचारप्रधान पत्र कहलाते हैं। यह समस्या राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक कुछ भी हो सकती है। इन पत्रों में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति अधिक होती है।

डायरी

आधुनिक काल में जहाँ गद्य की नाटक, उपन्यास एवं कहानी विधाओं का पूर्ण रूप से विकास हुआ है वहाँ डायरी साहित्य भी कम नहीं रहा। योरोपीय साहित्य के प्रभाव से ही हिन्दी में इसका आविर्भाव हुआ। हिन्दी साहित्य में अभी हमें उतनी पूर्ण और विकसित डायरियाँ नहीं देखने में आतीं जितनी कि आंग्ल भाषा के साहित्य में हैं डायरी जीवनी साहित्य का एक रूप है। यह आत्मकथा का आरम्भिक रूप कहा जा सकता है।

डायरी के माध्यम से लेखक के सद्यःस्फुरित भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है। डायरी के रोजनामचा, दैनिकी, दैनन्दिनी पर्याय हैं और ये पयार्य इस दृष्टि से सार्थक भी हैं कि वे डायरी के इस प्रमुख ध्येय की ओर संकेत करते हैं कि डायरी में लेखक का अनुभव उसके सबसे अधिक निकट रहकर अंकित होता है। डायरी में लेखक के मन पर पड़े प्रभाव उसी दिन लिखित रूप पाते हैं। इस प्रकार लेखक के व्यक्तित्व प्रकाशन का सर्वाधिक प्रामाणिक माध्यम डायरी है। प्रामाणिक इस अर्थ में कि प्रायः डायरियाँ अपने निजी भावों-विचारों को नोट कर लेने के उद्देश्य से लिखी गई हैं, पुस्तक प्रकाशन के उद्‌देश्य से नहीं। विशुद्ध डायरी सम्भवतः इस दृष्टि से कभी नहीं लिखी जाती कि कालान्तर में वह पुस्तक रूप में प्रकाशित होगी।

डायरी लेखक के अत्यधिक निकट होती है। इसलिये ऐसा भी सम्भव है कि उसमें कलात्मक तटस्थता का अभाव रह जाय। अतः यह कहा जा सकता है कि डायरी

ोई विशेष कलापूर्ण साहित्य रूप नहीं है पर डायरी अपने मूल अभिप्राय में कदाचित ाहित्य रूप है ही नहीं। साहित्यिक दृष्टि से डायरी में सम्बद्धता या संगति और शिल्प-त कलात्मकता की कमी हो सकती है पर स्पष्ट कथन, आत्मीयता और निकटता ादि विशेषताएँ डायरी की उक्त कमी को पूरा कर देती हैं।[1]

इससे स्पष्ट है कि डायरी में लेखक अपनी नित्यप्रति घटित घटनाओं का, ावों और विचारों का वर्णन निःसंकोच रूप से करता है।

जीवनी साहित्य में डायरी का भी एक विशेष स्थान है। डायरी में मनुष्य अपना कच्चा चिट्ठा लिखता है। अपने को खोलकर व्यक्त करता है। प्रतिदिन छोटी-बड़ी गुप्त और प्रकट सभी बातें डायरी में लिखी जाती हैं। निर्भीकता से व्यक्ति डायरी में उन घटनाओं का उल्लेख करता है जिसे वह और कहीं लिखने में संकोच करेगा। इस प्रकार डायरी व्यक्ति का वास्तविक रूप प्रकट करने का श्रेष्ठ साधन कही जा सकती है। लेकिन यदि डायरी में लेखक इस विचार से प्रभावित है कि उसका प्रकाशन होगा तो उसमें भी वास्तविकता के छिपाने और बातें घटा-बढ़ा कर कहने का भय है।

एक बात विशेष रूप से डायरी के सम्बन्ध में खटकने योग्य है—यदि एक व्यक्ति ८० वर्ष तक जीवित रहता है तो एक लम्बे समय की दैनिक चर्चा में लेखक का इतना विशाल समूह होगा कि उस व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व को समझने के लिए और उसका चित्र उपस्थित करने के लिए एक दूसरी पुस्तक तैयार करनी पड़ेगी जो उस व्यक्ति का जीवन चरित्र बन जायेगी ······ डायरी के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है—यदि पूरे जीवन काल की डायरी मिली तब तो व्यक्ति का पूरा जीवन चरित्र मिल सकता है अन्यथा जिस काल की डायरी मिली उसी समय का रूप जाना जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति के पूरे चित्र को समझने में कोई सहायता नहीं मिल सकती है·········इसलिए पूरे काल की डायरी न होने से न केवल जीवन के एक भाग का चित्र उपस्थित होगा वरन् भ्रमपूर्ण जीवन उपस्थित करने की भी अधिक सम्भावना है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन चरित्र लिखने में डायरी से सर्वाधिक सहायता मिली है। डायरी भी जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।[2] इस प्रकार डायरी व्यक्तित्व प्रकाशन का एक साधन है। इससे मनुष्य के वास्तविक रूप का ज्ञान होता है।

इंसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका में डायरी की परिभाषा इस प्रकार दी है—

The book in which are preserved the daily memoranda regarding events and actions which come under the writer's personal observation or are related to him by others.

---

१. हिन्दी साहित्य कोष, पृ० ३४६

२. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० २०-२१

अर्थात् डायरी वह पुस्तक है जिसमें लेखक के प्रतिदिन स्मरण लेख, घटनाएँ, एवं साहसिक क्रियाएँ जिसमें उसका व्यक्तिगत निरीक्षण होता है या अन्य व्यक्तियों द्वारा वर्णित घटनाएँ होती हैं।

आत्मकथाकार की भांति डायरी लेखक भी सर्वविदित, सर्वप्रिय एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति होना चाहिए[1] क्योंकि इस दिनचर्या में केवल सोने, उठने, भोजन आदि का विवरण न देकर अपने जीवन में अनुभव की हुई कोई ऐसी घटना, नई अनुभूति, विचित्र वस्तु, आदि का विवरण हो जो सामान्यतः मानव समाज के लिए भी शिक्षाप्रद नवीन अद्भुत रुचिकर तथा लाभकर हो।[2] इस प्रकार वही डायरी साहित्य में अपना स्थान निर्धारित कर सकती है जिसका लेखक प्रतिष्ठित एवं सर्वप्रिय व्यक्ति होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डायरी वह आत्मीय पुस्तक है जिसमें लेखक प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता अपितु इसके साथ ही साथ मानसिक प्रतिक्रियाओं का वर्णन भी संक्षिप्त, रोचक एवं सुसंगठित रूप से करता है।

तत्व

विषयवस्तु का विस्तार—डायरी में विषयवस्तु से अभिप्राय लेखक के केवल खाने, पीने, सोने एवं उठने से नहीं है प्रत्युत जीवन में अनुभव की हुई कोई ऐसी घटना, नई अनुभूति विचित्र वस्तु आदि का विवरण हो जो सामान्यतः मानव समाज के लिए भी शिक्षाप्रद, नवीन, अद्भुत, रुचिकर तथा लाभकर हो।[3] इससे स्पष्ट है डायरी में लेखक को केवल उन घटनाओं का वर्णन नहीं करना चाहिए जिनके पढ़ने से पाठक को कोई लाभ न हो। छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन डायरी को नीरस बना देता है। इसलिए लेखक को अपने जीवन के प्रमुख अंगों का वर्णन विशेष रूप से करना चाहिए।

विषय को उत्कृष्ट बनाने के लिए लेखक को अपने जीवन का वृत्तान्त इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे वह सरस एवं रोचक प्रतीत हो। एक घटना पढ़ने के पश्चात् पाठक के मन में यह कौतूहल उत्पन्न हो कि आगे क्या होगा ? इस प्रकार रोचकता का डायरी में होना नितान्त आवश्यक है।

अनावश्यक विस्तार विषय को नीरस बना देता है। इसलिए लेखक को अपने जीवन की प्रत्येक घटना का वर्णन इस ढंग से करना चाहिए कि बात भी स्पष्ट हो जाए और अधिक विस्तार भी न हो। संक्षिप्तता का विषय में होना अत्यन्त आवश्यक है।

---

१. सिद्धांतालोचन, ले० धर्मचन्द बलदेव कृष्ण

२. शैली और कौशल, ले० सीताराम चतुर्वेदी

३. वही

डायरी में लेखक को अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन स्पष्ट रूप से करना चाहिए। डायरी लेखक अपने जीवन या जीवन के किसी महत्वपूर्ण प्रसंग को लेकर डायरी लिखता है। डायरी लेखन में वह यथार्थ घटनाओं को इस प्रकार संक्षेप में व्यक्त करता है कि सारी बात भी स्पष्ट हो जाये और विस्तार भी न हो।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वही डायरी उत्कृष्ट मानी जा सकती है जिसके विषय में रोचकता, स्पष्टता, संक्षिप्तता एवं सुसंगठितता आदि गुण हों। डायरी लेखक विषयवस्तु को दो प्रकार से लिख सकता है। जब व्यक्ति स्वयं अपनी डायरी लिखता है तो वह आत्मचरित्र का रूप हो जाता है। जब कोई अन्य व्यक्ति डायरी अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखता है तो वह जीवन चरित्र की श्रेणी में आ जाता है।[2] इस प्रकार विषयवस्तु को लिखने के दो ढंग हो सकते हैं।

सम्पर्क में आए हुए व्यक्तियों एवं घटनाओं से लेखक का सम्बन्ध और उनके प्रति प्रतिक्रियाएँ

डायरी में लेखक केवल अपने जीवन का ही विश्लेषण नहीं करता अपितु अपने से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों एवं घटनाओं का विवेचन भी करता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे व्यक्ति आते हैं जिनका उन पर पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ता है तब वे व्यक्ति अवश्य ही उनका वर्णन अपनी डायरी में करते हैं। डायरी लेखक उन व्यक्तियों का वर्णन ही नहीं अपितु आवश्यकतानुसार टीका-टिप्पणी भी करते हैं।

जहाँ तक घटनाओं का प्रश्न है लेखक जिस भी वातावरण में रहता है उसका वर्णन वह आवश्यकतानुसार अपनी कृति में करता है। इसी प्रकार डायरी लेखक भी अपनी डायरी में तत्कालीन परिस्थितियों का अवश्य ही वर्णन करता है। यदि लेखक राजनैतिक व्यक्ति है तो वह अपनी डायरी में प्रमुख रूप से उन परिस्थितियों का अवश्य वर्णन करेगा जिनसे उसका व्यक्तित्व उभरता है। यही बात साहित्यिक एवं सामाजिक व्यक्ति के विषय में भी कही जा सकती है। राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन डायरी लेखक के व्यक्तित्व के अनुसार ही होता है। इन सभी के वर्णन के साथ-साथ उनका प्रभाव भी वर्णित होता है।

इस प्रकार डायरी में लेखक अपने से सम्बन्धित व्यक्ति एवं घटनाओं का वर्णन ही नहीं करते बल्कि आवश्यकतानुसार उन पर टीका-टिप्पणी भी करते हैं।

देशकाल वातावरण

अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए लेखक को तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करना आवश्यक है। इसलिए

---

१. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, ले० गोविन्द त्रिगुणायत
२. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित्र का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ०२१

वातावरण का वर्णन करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि लेखक साहित्यिक है तो वह अवश्य ही उन साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन करेगा जिनका प्रभाव उस पर पड़ा होगा। इसके साथ ही उन परिस्थितियों के वर्णन में वह अपना स्थान भी निर्धारित करेगा। परोक्ष रूप से वह देश की राजनैतिक परिस्थितियों का तत्कालीन साहित्य पर भी प्रभाव बताएगा। इसलिए वातावरण का किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण में प्रमुख हाथ है। यह तो हुई देश की एवं साहित्यिक परिस्थितियों की बात जहां तक पारिवारिक परिस्थितियों का प्रश्न है लेखक उन सभी परिवार की घटनाओं का वर्णन भी करता है जिनका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है। ये सभी वर्णन लेखक व्यक्तित्व प्रकाशन के उद्देश्य से ही करता है।

कई लेखक ऐसे होते हैं जिनको घूमने-फिरने का विशेष शौक होता है तो उनकी कृति में विशेष रूप से देश का चित्रण होता है। किसी विशेष स्थान नगर एवं भवन का वर्णन उनकी डायरी में अवश्य रूप से पाया जाएगा। इस प्रकार देश-काल एवं वातावरण का चित्रण डायरी में लेखक अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए करता है।

उद्देश्य

डायरी लेखक का प्रमुख उद्देश्य आत्मविश्लेषण है। डायरी में लेखक अपने जीवन की विवेचना ही करता है। जीवन के सभी उतराव-चढ़ावों का वर्णन डायरी में ही होता है। इसलिए डायरी आत्मविवेचन के उद्देश्य से ही लिखी जाती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के जीवन से कुछ न कुछ अवश्य प्रेरणा ग्रहण करता है जिससे उसकी आत्मा व मन को शान्ति प्राप्त होती है। इसी भावना से प्रेरित होकर लेखक अपनी डायरी लिखते हैं। किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की डायरी से ही लेखक प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। डायरियाँ स्वान्तः सुखाय के उद्देश्य से भी लिखी जाती हैं। इस प्रकार डायरी लेखक का उद्देश्य आत्मविश्लेषण आत्मविवेचन तो है ही लेखक डायरी इस उद्देश्य से भी लिखता है कि लोग इससे कुछ लाभ व प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

भाषा शैली

डायरी में लेखक दिनचर्या के रूप में ही जीवन की घटनाओं और मानसिक विचारों का लेखा-जोखा करता है। इसकी शैली गद्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा पृथक होती है। इस शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जिनका इसमें होना अत्यन्त आवश्यक है—सर्वप्रथम विशेषता निःसंकोच आत्मविश्लेषण है। दिनचर्या के रूप में लेखक अपने जीवन की घटनाओं और मानसिक विचारों का लेखा रखता जाता है यद्यपि इन सबका विवरण भी वह बिलकुल तटस्थ होकर नहीं कर सकता परन्तु आत्मचरित्र की अपेक्षा उसका संकोच इस शैली की व्याख्या में कम रहता है। लेखक

जानता है कि उसके विवरण दूसरों के काम आएँगे अतएव वहाँ अपने मर्म को विशेष कर अवाँछित प्रसंग को ज्यादा ढकता नहीं। उसका आवरणहीन वर्णन सत्यवर्णन की तरह अंकित होता रहता है। घटनाओं एवं विचारों में असम्बद्धता भी उसे अपने चेतन को काम में लाने से रोक लेती है। प्रायः देखा जाता है कि संकोच का उद्‌भव तभी होता है जब घटनाओं का सामूहिक प्रभाव दिखाया जाय। डायरी शैली में यह स्थिति होने नहीं पाती परिणामतः तटस्थ रूप से लेखक अपेक्षाकृत अधिक आत्मविश्लेषण करता है।[1] डायरी शैली में निःसंकोच आत्मविश्लेषण के साथ-साथ घटनाओं की सम्बद्धता, स्पष्टता, सजीवता, मानसिक प्रतिक्रियाओं का संक्षिप्त विवरण पर्याप्त सत्यता एवं स्वाभाविकता आदि गुणों का होना आवश्यक है। माधुर्य और प्रसाद गुण का भाषा में होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त शब्दचयन भी विषयानुकूल होना चाहिए।

वर्गीकरण

यदि डायरी साहित्य का विभाजन लेखक अनुसार किया जाये तो डायरियाँ कवि, कथालेखक, आलोचक, राजनैतिक एवं सामाजिक व्यक्ति भी लिख सकते हैं। विषय अनुसार भी डायरी साहित्य का विभाजन हो सकता है। कई डायरियों में प्रकृति चित्रण प्रधान रूप से होता है ऐसे विषय को कवि ही लिख सकते हैं। कई लेखकों की डायरियों में किसी भी साहित्यिक विषय का वर्णन होता है। कई ऐसी भी डायरियाँ होती हैं जिनमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषय को लिया जाता है। इसी प्रकार कई डायरियों में किसी विशेष स्थल व नगर का वर्णन होता है।

जीवनीपरक साहित्यरूपों के अंतर्बन्ध

आत्मकथा और जीवनी—जब कोई लेखक कुछ वास्तविक घटनाओं के आधार पर श्रद्धेय व्यक्ति की जीवनी कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है तो साहिय का वह रूप जीवनी कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि जीवनी कोई दूसरा व्यक्ति लिखता है। आत्मकथा गद्य का वह रूप है जिसमें लेखक व्यक्तिगत जीवन का विवेचन निःसंकोच रूप से करता है और इसके साथ ही वह वाह्य विश्व से सम्बन्धित मानसिक क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का विवेचन भी करता है। आत्मकथा लेखक स्वयं लिखता है। जीवनी और आत्मकथा दोनों ही ऐसे व्यक्तियों की लिखी जाती हैं जिनका जनता में सम्मान होता है। वही व्यक्ति आत्मकथा लिखता है जिसका जीवन साधारण पुरुषों के जीवन से ऊँचा होता है। यही वात जीवनी के विषय में कही जाती है। आत्मकथा का लेखक स्वयं होता है इसलिए यह अधिक प्रामाणिक कही जा सकती है। इसमें लेखक अपने ही जीवन का विश्लेषण निःसंकोच रूप से करता है। इसलिए इसमें किसी भी प्रकार का संदेह उत्पन्न नहीं हो सकता। लेखक पूर्ण ईमानदारी से अपने जीवन एवं मस्तिष्क का विकास पाठक के सम्मुख रखता है। इस प्रकार सत्यवादिता एवं स्पष्टता का

१. आलोचना : उसके सिद्धान्त, ले० डा० सोमनाथ गुप्त

लेखक में होना अत्यन्त आवश्यक है। आत्मकथा में सत्य से अभिप्राय विषयगत सत्य से नहीं कुछ सीमित विषय तक का सत्य है जिससे लेखक का जीवन बढ़ता है एवं जिससे उसके विशेष गुण एवं घटनाओं के परिपक्व होने की दृढ़ता एवं व्यावहारिक गुण एवं आकृति स्पष्ट होती है। [1]

It will not be an objective truth but the truth in the confines of a limited purpose, a purpose that brows out of the author's life and imposes itself on him as his specific quality and thus determines his choice of events and the manners of his treatment and expression.

जीवनीकार भी अपने नायक के जीवन की प्रत्येक घटना का वर्णन तभी करता है जबकि उसके पास उसके विषय में कोई प्रमाण हो। वह भी अपने नायक के समस्त जीवन का निःसंकोच रूप से वर्णन करता है। जीवनीकार भी सत्यपथ से कभी विचलित नहीं होता। यह हो सकता है,कि दोष दर्शन में उसके हृदय में सहृदयता की भावना ऐसी हो कि वह यथार्थता की रक्षा करता हुआ चरित्र नायक की दुर्बलताओं का परिहास न करे। जीवनीकार सत्य का पल्ला कभी नहीं छोड़ता। वह इसमें मर्यादा की रक्षा के लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार रहता है।[2] इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा एवं जीवनी में जो कुछ भी वर्णित होता है वह सत्य होता है परन्तु जीवनी में कई बार ऐसा देखा जाता है कि लेखक कभी-कभी श्रद्धा और प्रेम के अतिरेक में आकर नायक के गुणों का आवश्यकता से अधिक वर्णन कर जाता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसके दोषों का वर्णन नहीं करता वह भी करता है लेकिन अन्तर केवल यही है कि उन दोषों का वर्णन वह ऐसे ढंग से करता है जिनका प्रभाव पाठक पर बुरा न पड़े। इस प्रकार जीवनीकार अपने नायक के गुण-दोषों का वर्णन सहृदयतापूर्वक करता है।

आत्मकथा लेखक का उद्देश्य आत्मनिर्माण आत्मपरीक्षण के साथ-साथ अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह होता है। आत्मकथा लेखक आत्मांकन द्वारा आत्मपरिष्कार एवं आत्मोन्नति करना चाहता है इसके अतिरिक्त अन्य उद्देश्य यह भी हो सकता है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग भी उठा सकें। यही बात जीवनीकार के उद्देश्य के विषय में भी कही जा सकती है। वही जीवनी उत्कृष्ट कही जा सकती है जिसको पढ़कर पाठक कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकें इस प्रकार आत्मकथा एवं जीवनी लेखक का उतरदायित्व बड़ा गहन है। उन्हें यह देखना पड़ता है कि जो कुछ वे कह रहे हैं, वास्तव में वह कथनीय है और उसमें कुछ भी अनर्गल नहीं है। उन्हें यह भी देखना पड़ता है कि जो कुछ वह दे रहे हैं वह सामान्य से ऊँचा है कि

---

1. Design And Truth in Autobiography by Prof. Roy Pascal, P. 83
२. समीक्षा शास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १६६

नहीं और वह प्रेरणात्मक एवं उत्साहवर्धक हैं इसके अतिरिक्त उन्हें अपनी वर्णन शैली में संक्षिप्तता एवं सत्यता का ध्यान रखना पड़ता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवनी और आत्मकथा दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आत्मकथा सम्बन्धी प्रमाणों के बिना कोई भी जीवनी पूर्ण नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति के विषय में लेखक लिखता है, उसके जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन वह तभी करता है जब उसके पास नायक द्वारा कथित प्रमाण होते हैं। इस प्रकार दोनों विधाओं का परस्पर सम्बन्ध है। जहाँ जीवनी लेखक अपने नायक के समस्त जीवन का विश्लेषण करता है वह उन सभी प्रमाणों का सहारा लेता है परन्तु आत्मकथा में लेखक स्वयं होता है और उसे किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती है।

आत्मकथा लेखक एवं जीवनीकार में जहाँ कुछ समानताएँ हैं वहाँ अन्तर भी है। आत्मकथा लेखक के लिए भी उतनी ही समस्याएँ हैं जितनी जीवनी लेखक के लिए। दोनों विधाओं में विषय और बनावट दोनों दृष्टिकोणों से अन्तर है। यह स्पष्ट है कि आत्मकथा आन्तरिक दृश्य उपस्थित करती है जिसे रुसो ने मस्तिष्क का विकास कहा है एवं जिस पर केवल आत्मकथा लेखक का ही अधिकार होता है। दूसरी ओर जीवनीकार कथित व्यक्तित्व में से जैसा कि उसका नक्शा होता होगा बड़ी गहराई और पीछे की ओर देखता है एवं उसके साथ किए हुए व्यवहार का पूरी तरह से अनुभव करता है परन्तु सम्भाव्य चेतना का नहीं। व्यक्तित्व जोकि वाह्य विश्व को लक्षित होता है एवं जैसीकि इसकी परिभाषा की जाती है अवश्य ही सम्भाव्य अपवर्त्य अनिश्चित एवं अनुभवहीन सम्भावनाओं से युक्त होता है।

This is a problem for the biographer as much as for the autobiographer, but the two forms are distinct in purpose as well as in form. Obviously, the autobiographer gives us the 'inside view' what Rousseau calls the 'chain of feelings' for which the autobiographer is often the only authority. The biographer on the other hand works back, inwards from the defined personality, the portrait as it were, realised behaviour is for him decisive, not the conciousness of potentiality. The personality that strikes the outer world as most defined must in self be conscious of multiple uncertainties and unrealised possibilities.

इससे आगे आत्मकथा और जीवनी में और भी अन्तर है। हमें ही अपने मस्तिष्क के विकास को प्रकट करने का अधिकार है जिसे कि केवल हम स्मृति द्वारा ही व्यक्त कर सकते हैं लेकिन जीवनीकार केवल नोट किए हुए खाके पर ही निर्भर होता है एवं जहाँ तक सम्भव हो सकता है उन नोट किए गए विषय सम्बन्धी संस्मरणों का ही विश्लेषण करता है—स्मृति पर विश्वास किया जा सकता है क्योंकि आत्मकथा में केवल भूतकाल की घटनाओं को एकत्रित ही नहीं किया जाता अपितु उसका विश्लेषण भी होता है। वास्तविक बात तो यह है कि मनुष्य अपने भूतकाल के

विषय में क्या याद कर सकता है। यह वर्तमान काल में भूत का निर्णय है जिसे एक बहुमूल्य पत्र या वाक्य कहा जा सकता है।

There is further essential difference between autobiography and biography. We are the only authority for the 'chain of feeling' in our lives, and we establish this chain mainly through memory. The biographer depends on recorded data and as far as possible checks all subjective memories against records often in fact rectifying faulty recollections.—Memory can be trusted because autobigraphy is not just reconstruction of the past, but interpretations, the significant thing is what the man can remember of his past. It is a judgment on the past within the framework of the present, a document in the case as well as a sentence. [1]

इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा और जीवनी में सम्बन्ध भी है और अन्तर भी है। गद्य की दोनों ही विधाएँ साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं।

आत्मकथा और डायरी

डायरी वह आत्मीय पुस्तक है जिसमें लेखक अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं का वर्णन तो करता ही है परन्तु इसके साथ मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी संक्षिप्त एवं रोचक ढंग से वर्णन करता है। यह आत्मकथा की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती है। इसमें जिस समय घटना घटित हो रही होती है उस समय जो मन की स्थिति होती है उसका भी विवेचन होता है इसलिए इसमें किसी भी प्रकार का बनावटीपन नहीं होता। आत्मकथा में भी लेखक जहाँ अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन करता है वहाँ उनके प्रति मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी विश्लेषण करता है। इसकी दोनों ही विधाओं में लेखक आत्म-विश्लेषण एवं आत्मविवेचन करता है।

गद्य की इन दोनों ही विधाओं में लेखक अपने व्यक्तित्व के गुण दोषों का विवेचन करता है अन्तर केवल इतना है कि आत्मकथा में इन घटनाओं का वर्णन संक्षिप्त होता है। डायरी में थोड़ा विस्तारपूर्वक होता है क्योंकि उसमें दिन प्रतिदिन का ब्यौरा होता है। इसके अतिरिक्त आत्मनिरीक्षण तो इनमें होता है, कुछ अन्य व्यक्तियों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला हुआ होता है जिनका प्रभाव लेखक के व्यक्तित्व पर पड़ा हुआ होता है। दोनों ही विधाओं में तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्तियों के विषय में लेखक के व्यक्तित्व के साथ-साथ पाठक को पता चल जाता है।

आत्मकथा एवं डायरी लेखक का सर्वप्रिय एवं सर्वप्रतिष्ठित होना आवश्यक है। प्रसिद्ध व्यक्ति ही अपनी डायरी एवं आत्मकथा लिखते हैं। साधारण व्यक्ति के जीवन चरित्र का प्रभाव पाठकों पर नहीं पड़ सकता। इन लोगों के डायरी एवं

---

1. Design And Truth in Autobiography by Roy Pascal, P. 18-19

आत्मकथा लिखने का उद्देश्य यह होता है कि उनके जीवन से लोग कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकें। इसके साथ ही यह आवश्यक बात है कि कुछ ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं जिनके विपय में अनेक भ्रांतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उनके दुराव के लिए इनको प्राय: लिखा जाता है जिसमें उनके वास्तविक व्यक्तित्व की जानकारी लोगों को हो जाय।

इन समानताओं के होते हुए भी इन दोनों में कुछ भेद भी हैं जिनसे इनको पृथक्-पृथक् रक्खा गया है। डायरी में प्रत्येक घटना का जब वर्णन किया जाता है तब उसमें लेखक उसके घटित होने का स्थान, विशेप समय और सन् का विशेप रूप से ध्यान रखता है और उनका उल्लेख करता है। इसके साथ ही जिस दिन वह घटना घटती है उस विशेष दिन का भी नाम लिखा हुआ होता है। आत्मकथा में ऐसा नहीं होता। इसमें किसी विशेप घटना का जिसका प्रभाव लेखक के जीवन पर आवश्यकता से अधिक पड़ता हो उसका ही विस्तारपूर्वक उल्लेख होता है वरन् तो उल्लेख मात्र ही होता है।

इसके अतिरिक्त आत्मकथा में जो सुसंगठितता एवं सुसम्वद्धता पाई जाती है वह डायरी में प्राय: नहीं होती। आत्मकथा में तो लेखक अपने जीवन का क्रमवद्ध इतिहास लिखता है। यदि उसमें कुछ टेढ़ापन आ जाये तो उसे तो समझना ही कठिन हो जाये। इसलिए जितनी सुसम्वद्धता का ध्यान आत्मकथा लेखक रखता है उतना डायरी लेखक नहीं। इसमें प्राय: असम्वद्धता पाई ही जाती है।

आत्मकथा और डायरी दोनों का अन्तर प्राय: स्पप्ट ही है। आत्मकथा तो किसी विशेप समय और क्षण के जीवन की झाँकी होती है जबकि डायरी चाहे वह कितना ही प्रभावदायक क्यों न हो उसमें एक समय के क्षण में घटित अनेक घटनाओं का वर्णन क्रमानुसार होता है। डायरी लेखक उस समय में धटित घटनाओं में से महत्वपूर्ण घटनाओं को नोट कर लेता है जबकि उसके अन्त को और विस्तृत अर्थ को वह नहीं उसमें संकलित कर सकता।[1]

The formal difference between diary and autobiography is obvious. The letter is a review of a life from a particular moment in time, while the diary, however reflective it may be, moves through a series of moments in time. The diarist notes down what at that moment, seems of importance to him, its ultimate long range significance cannot be assessed.

कुछ भी हो डायरी और आत्मकथा का सम्बन्ध भी है। आत्मकथा लेखक अपने विचारों और व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए डायरी की पंक्तियों को अवश्य लिखता है जिससे उसकी रचना अधिक प्रामाणिक बन जाये। डायरी और आत्मकथा में अन्तर केवल इतना ही है कि डायरी में घटनाओं का वर्णन होता है और उस समय की

---

१. Design And Autobiography by Roy Pascal, P. 3.

मानसिक एवं अन्य परिस्थितियों का वर्णन होता है परन्तु आत्मकथा में लेखक उन घटनाओं का वर्णन कर उनके अन्तिम परिणाम का एवं उनके प्रभाव का वर्णन कर आवश्यकतानुसार टीका-टिप्पणी करता है। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि डायरी और आत्मकथा में जहाँ परस्पर समानताएँ हैं वहाँ कुछ अन्तर भी है, दोनों का परस्पर सम्वन्ध भी है।

आत्मकथा और संस्मरण

जव लेखक अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन करता है तो उसे 'संस्मरण' कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्मरण में लेखक केवल अपने जीवन के उल्लेखनीय क्षणों का उल्लेख करता है। इसके साथ ही केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख होता है जिनसे लेखक के जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों का संकेत मिलता है और जो अन्य लोगों के कौतूहल को शान्त करने में सहायक होती है इसके अतिरिक्त आत्मकथा में जीवन का आद्योपान्त सुसम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किया जाता है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की प्राय: आद्योपान्त कहानी लिखता है किन्तु आत्मसंस्मरण में जीवन के एक खंड के संस्मरण लिखता है। आत्मसंस्मरण में जीवन को नई दिशा में मोड़ने वाली या औरों को सुनने वाली घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। इस प्रकार का कार्य आत्मकथा से सरल है। आत्मकथा में अपने जीवन से सम्वन्ध रखने वाले अनेक व्यक्ति जीवित रहते हैं। उनके साथ सभी प्रकार का प्रिय-अप्रिय व्यवहार समयानुकूल करना पड़ता है। अत: उन सवको वचाते हुए राग-द्वेष से पृथक् होकर अपनी जीवनी लिखना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है किन्तु आत्मसंस्मरण में उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करना होता है जिनको आसानी के साथ सवके सामने रखा जा सकता है।[1]

आत्मकथा लेखक का सम्वन्ध अन्तर्जगत् से अधिक रहता है जवकि संस्मरण लेखक का वाह्य जगत् से। आत्मकथा में लेखक प्राय: उन्हीं स्थलों का वर्णन अधिक मात्रा में करता है जिनसे उसका आन्तरिक विश्लेपण होता है। इसीलिए आत्मकथा में देशकाल कुछ गौण रहता है। संस्मरणों में भी कुछ स्थल ऐसे आते हैं जिनमें लेखक आत्मविश्लेपण करता है परन्तु इसमें कई स्थल ऐसे आते हैं जिनमें लेखक को वाह्य जगत का विश्लेपण करना अनिवार्य हो जाता है। यात्रा सम्वन्धी संस्मरणों में वाह्य जगत् का विश्लेषण प्रमुख रूप से होता है।

शैली की दृष्टि से आत्मकथा एवं संस्मरण में समानता है। आत्मीयता, स्पष्टवादिता, सुसंगठितता एवं स्वाभाविकता आदि गुण दोनों की ही शैली में होते हैं जो कि कृति को प्रभावोत्पादक वनाते है।

---

१. समीक्षा शास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० २०२-२०३

संस्मरण और आत्मकथा दोनों ही प्रसिद्ध व्यक्ति लिख सकते हैं। दोनों लेखकों का उद्देश्य समान होता है। इस प्रकार कोई भी आत्मकथा ऐसी नहीं जिसे किसी-न-किसी रूप से संस्मरण न कहा जा सकता हो और कोई भी संस्मरण ऐसा नहीं है जिसमें आत्मकथात्मक सूचनाएँ न हों। दोनों ही काल क्रमानुसार, प्रभावदायक, व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं। परन्तु लेखक के ध्यान में एक साधारण अन्तर होता है। आत्मकथा में लेखक का ध्यान उसके अपने तक सीमित होता है परन्तु संस्मरण में दूसरों की ओर होता है।[1]

There is no autobiography that is not in some respect a memoir and no memoir that is without autobiographical information, *both are based on personal experience, chronological and* reflectivo. But there is a general difference in the direction of the author's attention. In the autobiography proper attention is focused on the self in the memoir on others.

रेखाचित्र और संस्मरण

रेखाचित्र साहित्य का वह गद्यात्मक रूप है जिसमें एकात्मक विषय विशेष का शब्द रेखाओं से संवेदनशील चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्र व्यक्ति के सम्पूर्ण चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। यह संस्मरणों की भांति जीवन के किसी एक पक्ष का विवरण न देकर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दृश्य-सा उपस्थित कर देते हैं। यह दृश्य इस ढंग का होता है कि उससे व्यक्ति के बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व की झाँकी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। संस्मरण लेखक तो अपने नायक का विश्लेषण स्वयं करता है परन्तु रेखाचित्र लेखक तो पाठक के सम्मुख शब्द रेखाओं द्वारा एक चित्र-सा रख देता है जिससे पाठक को उस चित्रित व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वयं अनुभव हो जाता है। इस प्रकार रेखाचित्रकार चित्रकार की भाँति होता है। वह तो चित्रकार की तरह चित्र खींच कर पाठकों के सम्मुख रख देता है। अब यह पाठकों का कर्तव्य हो जाता है कि वे उसके व्यक्तित्व का विश्लेपण करें। संस्मरण लेखक की भाँति वह स्वयं नायक के चरित्र का विश्लेपण नहीं करता। संस्मरण चरित्र के किसी एक पहलू की झाँकी देते हैं किन्तु रेखाचित्र व्यक्ति के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं। उनमें व्यक्ति का भीतरी और बाहरी आपा या स्वल्पता कुछ स्पष्ट रेखाओं में व्यक्त हो जाती है। उसमें कुछ-कुछ व्यंग्य चित्रकार की सी प्रवृत्ति रहती है। उसमें व्यक्ति की प्रवृत्तिगत विशेपताएँ कुछ बढ़ा-चढ़ाकर दिखाई जाती हैं जिससे वह सहज में आकर्पण का विपय बन सकें।[2]

संस्मरण और रेखाचित्र में एक प्रमुख भेद यह है कि संस्मरण में लेखक पर

---

1. Design and Truth in Autobiography by Roy pascal, P. 5.
२. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय, पृ० २५०

शब्द-योजना और वाक्य-विन्यास सम्बन्धी कोई नियन्त्रण नहीं होता किन्तु रेखाचित्र के विषय में ऐसा नहीं है। रेखाचित्रकार की सीमाएं निश्चित हैं उसे तो कम-से-कम शब्दों में सजीव रूप-विधान और छोटे-से-छोटे वाक्य से अधिक-से-अधिक तीव्र और मर्म-स्पर्शी भाव व्यंजना करनी पड़ती है। अपने इस कार्य में वही कलाकार सफल हो सकता है जिसका हृदय अधिक संवेदनशील और जिसकी दृष्टि सूक्ष्मपर्यवेक्षण, निपुण एवं मर्म-भेदी होती है।[1] रेखाचित्र वर्णनात्मक अधिक होते हैं और संस्मरण विवरणात्मक अधिक होते हैं। संस्मरण जीवनी साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। ये प्रायः घटनात्मक होते हैं किन्तु वे घटनाएँ सत्य होती हैं और चरित्र की परिचायक भी। रेखाचित्र में वर्णन का प्राधान्य होता है किन्तु इनके विषय काल्पनिक नहीं होते हैं। ये सजीव और निर्जीव दोनों ही व्यक्तियों के होते हैं।[2]

इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्र और संस्मरण में यद्यपि विषय और शैली की दृष्टि से भेद है फिर भी इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। रेखाचित्र में जिन घटनाओं का वर्णन किया जाता है वे संस्मरण पर आधरित होती हैं और संस्मरण में जिस घटना व व्यक्ति के जीवन के जिस भी भाग का चित्रण किया जाता है उस चित्रण में अवश्य ही रेखाचित्र की शैली का प्रयोग किया हुआ होता है। यद्यपि वह चित्रण उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झलक नहीं देता पर जितना भी वह होता है उतना ही बहुत तीव्र एवं स्पर्शदायक होता है।

इन विधाओं द्वारा विशिष्ट शैलियों का अवधारण

गद्य की इन विधाओं द्वारा कुछ विशिष्ट शैलियों का हिन्दी साहित्य में अव-धारण हुआ है जो इस प्रकार है—

जीवन चरित शैली

शैली अनुभूत विषय-वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।

जीवन चरित्र लेखक को अपने नायक के काल्पनिक रूप की सृष्टि नहीं करती पड़ती उसे तो केवल सांचा तैयार करना पड़ता है। यह सांचा शैली के नाम से पुकारा जा सकता है।[3] चरित्र नायक के व्यक्तित्व को लेखक इस ढंग से वर्णन करता है जिससे वह पाठकों को प्रभावोत्पादक प्रतीत हो। उसके व्यक्तित्व को ही प्रेरणादायक एवं आकर्षक बनाने के लिए लेखक को अपनी शैली का बहुत ध्यान रखना पड़ता है।

नायक के समस्त जीवन को क्रमानुसार वर्णन करना पड़ता है जिससे वह असम्बद्ध प्रतीत न हो। इसके लिए उसे अनावश्यक घटनाओं का निवारण करना पड़ता है। अन्य प्रमुख बात यह है कि उसे तटस्थ होकर नायक के व्यक्तित्व के गुण-दोषों

१. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, ले० त्रिगुणायत पृ० ४६०
२. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय, पृ० २५२
३. समीक्षा शास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १६६

ब्यौरा करना पड़ता है। आवश्यकता से अधिक गुणों का वर्णन हानिकारक होता। इसी प्रकार दोषों के वर्णन में कहा जा सकता है। इस कार्य में लेखक का सहृदय ना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार जीवन चरित शैली में सुसंगठितता, सम्बद्धता रपेक्षता, तटस्थता एवं स्वाभाविकता आदि गुणों का समावेश होता है।

जीवन चरित लिखने में लेखक कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग करता है नके सम्मिश्रण से वह अपने भावों को व्यक्त करता है। जब लेखक नायक के नख- ख एवं वेशभूषा का वर्णन करता है तब वहाँ हमें वर्णनात्मक शैली दृष्टिगोचर होती। जहाँ वह उसके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करता है वहाँ वरणात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त जीवनियों में कहीं- हीं औपन्यासिक शैली का भी आभास होता है। लेखक नायक के जीवन को और भी पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं उसके वार्तालाप को ज्यों का त्यों स्पष्ट रूप से रख ता है जो कि इस शैली का एक विशिष्ट गुण है। इस कथात्मक शैली का प्रयोग ायक के जीवन सम्बन्धी घटनाओं, यात्राओं और तथ्यों आदि के वर्णन में करता है। जीवनी लिखने में लेखक संस्मरणों का प्रयोग भी करता है इसलिए जिन भी संस्मरणों का समावेश जीवनी में होता है वे प्रभावोत्पादक होने के साथ-साथ नायक की प्रामा- णिकता की ओर संकेत करते हैं। इन सभी के सम्मिश्रण को ही 'जीवन चरित शैली' कहा जा सकता है। आवश्यकतानुसार इन सभी शैलियों का प्रयोग 'जीवन चरित शैली' में किया जाता है।

आत्म-चरित शैली

इस शैली की जीवनियों का लेखक स्वयं चरितनायक होता है। लेखक के लिए, अपने चरित्र का विश्लेषण सुगम काम नहीं है, सब ओर से साहस बटोरकर लेखक आत्मविश्लेषण करने बैठता है। ऐसा करने से पहले उसे अपनी आत्मा को उज्ज्वल और गर्वहीन बनाने की आवश्यकता होती है। अपनी कमजोरियों को पहचा- नना और सब के सामने उन्हें स्वीकार करना साधारण आत्मा का कार्य नहीं है।[1] इसलिए लेखक को आत्म-चरित लिखने में निःसंकोच आत्मविश्लेपण करना पड़ता है। आत्मकथा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए लेखक को अपनी शैली सुदृढ़ बनानी पड़ती है। शैली को सुदृढ़ बनाने के लिए उसमें वह सुसम्बद्धता, स्पष्टता, संक्षिप्तता एवं स्वाभाविकता, आदि गुणों का समावेश करता है। इन गुणों से युक्त होने पर ही आत्मकथा शैली को उत्कृष्ट एवं परिपक्व कहा जा सकता है।

आत्मचरित शैली में भी हमें अनेक शैलियों का प्रयोग लक्षित होता है जिनके सम्मिश्रण से यह शैली परिपक्व बनती है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के विभिन्न पहलूओं को स्पष्ट करने के लिए डायरी के कुछ अंशों का समावेश अवश्य करता है।

---

१. आलोचना के सिद्धांत, ले० डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० २२६

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं वह अन्य व्यक्ति से सम्बन्ध दिखाने के लिए या अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में कुछ कहने के लिए पत्रों का भी समावेश करता है। कहीं-कहीं संस्मरणों के रूप में भी आत्म-विवेचन होता है। जब लेखक सम्पर्क में आए अन्य व्यक्ति की वेशभूषा व नख-शिख का वर्णन करता है तब वर्णनात्मक शैली का भी दिग्दर्शन होता है। जब वह अपना सम्बन्ध किसी अन्य पुरुष से या किसी विषय सम्बन्धी विवाद को ज्यों का त्यों अपनी आत्मकथा में रखता है वहाँ कथात्मक शैला की झलक दिखाई पड़ती है। मेरा यहाँ यह कहने का अभिप्राय नहीं कि इन सभी शैलियों का प्रयोग करना उसका उद्देश्य है बल्कि अपनी कृति को अधिक स्पष्ट एवं प्रामाणिक बनाने के लिए उसे ऐसा करना पड़ता है। इस प्रकार आत्मचरित शैली में आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग लेखक कर सकता है। इन सभी का प्रयोग तो वह गौण रूप से करता है, प्रधानता तो आत्मकथात्मक जीवन चरित शैली की ही होती है।

रेखाचित्र शैली

रेखाचित्र की कला बहुत कुछ फोटोग्राफी की कला की तरह है। रेखाचित्रकार विश्व की किसी भी चेतन अथवा अचेतन वस्तु का चित्र अपने शब्दों द्वारा बना लेता है। वह जैसा चित्र होता है वैसा ही अंकित करता है इसलिए रेखाचित्र शैली में चित्रात्मकता की प्रधानता होती है।

रेखाचित्रकार सीमित क्षेत्र में ही भावाभिव्यक्ति कर सकता है। इसलिए इस शैली में संक्षिप्तता होती है। प्रत्येक चित्र जो भी लेखक खींचता है उस पर उसके व्यक्तित्व का अवश्य ही प्रभाव पड़ा हुआ होता है। प्रत्येक व्यक्तित्व का चित्रण इस ढंग से होता है जो कि प्रत्येक पाठक को आकर्षक, प्रेरणादायक एवं प्रभावोत्पादक प्रतीत होता है। इस प्रकार रेखाचित्र शैली में चित्रात्मकता, संक्षिप्तता, स्वाभाविकता एवं प्रभावोत्पादकता आदि विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

कहीं-कहीं लेखक अपने विभिन्न विचारों और भावों को स्पष्ट रूप से वर्णन करने के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग अपनी इस शैली के भीतर करता है। जब लेखक ऐतिहासिक, पौराणिक वस्तुओं और घटनाओं के रेखाचित्र प्रस्तुत करता है वहाँ कथात्मक शैली का प्रयोग करता है क्योंकि ऐसे रेखाचित्रों में उसकी चित्रण शैली वस्तुपरक अधिक होती है। इस शैली में लेखक अपने विषय एवं वर्णन को स्पष्ट करने के लिए कथोपकथन का भी प्रयोग कर लेता है। कई रेखाचित्रों में लेखक संस्मरण शैली का प्रयोग करता है। जब लेखक किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति का स्मृतिमूलक अंकन करता है तब वह इस शैली का प्रयोग करता है। कहीं-कहीं लेखक किसी वस्तु एवं घटनाओं के चित्रण से कोई लाक्षणिक अर्थ या संदेश व्यंजित करता है तो वहाँ वह प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग करता है। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार अपनी शैली में इन विभिन्न शैलियों का प्रयोग कर सकता है। इन

ैलियों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करके वह अपनी रेखाचित्र शैली को परिपक्व नाता है।

संस्मरण शैली

'संस्मरण' लेखक अपने जीवन से सम्बन्धित भी लिख सकता है और अन्य व्यक्ति के जीवन के विषय में भी, पर दोनों में उसके व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव पड़ा हुआ होता है। इस शैली में प्रभावोत्पादकता, रोचकता, स्पष्टता, आत्मीयता आदि विशेपताएँ होती हैं।

जब लेखक व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित संस्मरण लिखता है तो उसमें आत्मकथात्मक शैली की विशेपताएँ पायी जाती हैं। जब लेखक कुछ घटनाओं एवं यात्राओं का वर्णन संस्मरणों में प्रकट करता है तो इसमें वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। कुछ लेखक निवन्धात्मक शैली में संस्मरण लिखते हैं उनके जीवन का प्रत्येक संस्मरण निवन्धों की भाँति स्वतंत्र होता है। परन्तु इन सभी शैलियों के वर्णन में वह 'संस्मरण शैली' की विशेषताओं को नहीं भूलता जो कि उसे परिपक्व बनाती हैं। विषय की आवश्यकतानुसार इन सभी शैलियों का प्रयोग वह कर सकता है। इस शैली की विशेषता यह है कि इसमें लेखक चरित्र के चित्रण के साथ-साथ उसका विश्लेषण भी करता है। संस्मरण शैली में चरित्र नायक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण नहीं होता यह तो जीवन की किसी एक झांकी का वर्णन विश्लेषणात्मक ढंग से करता है। प्रत्येक वर्णित विषय अपने में स्वतंत्र होता है।

पत्र एवं डायरी शैली

पत्र शैली—पत्रात्मक शैली गद्य की अन्य विधाओं की शैलियों से पृथक होती है। इस शैली में सर्वप्रमुख विशेपता आत्मीयता है। पत्र साहित्य में लेखक का अपनापन स्वतंत्र रूप से प्रकट होता है। इस आत्मीयता का सम्बन्ध लेखक के अपने व्यक्तित्व के साथ तो होता ही है दूरस्थ व्यक्ति से भी होता है। अन्य महत्वपूर्ण विशेपता यह होती है कि पत्र लेखक पत्र भाव ग्राहक के अनुकूल लिखता है। इन दोनों विशेपताओं से सम्बद्ध होने पर ही यह पत्र शैली प्रभावोत्पादक हो सकती है।

कुछ पत्र ऐसे होते हैं जिनमें लेखक किसी विपय का वर्णन करता है। यह विपय साहित्यिक राजनैतिक कोई भी हो सकता है। ऐसे पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व गौण होता है और विपय प्रधान होता है। ऐसे पत्रों में व्यास शैली और समास शैली दोनों का ही प्रयोग होता है। जो आत्मकथात्मक पत्र होते हैं उनमें आत्मकथा शैली की विशेपताएँ पाई जाती हैं। जो पत्र किसी अन्य व्यक्ति के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए लिखे जाते हैं उनमें जीवन चरित्त शैली का दिग्दर्शन होता है। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग पत्रों में वहाँ पाया जाता है जहाँ किसी विशेप स्थान नगर का वर्णन होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पत्र शैली में भी अन्य शैलियों का प्रयोग आवश्यकता-

नुसार होता है, परन्तु इनके मूल में पत्र शैली की प्रमुख विशेषताएँ सुदृढ़ता से रहती हैं इसलिए यह परिपक्व शैली वन जाती है।

डायरी शैली—डायरी शैली भी गद्य की अन्य शैलियों से पृथक है। इस शैली की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें लेखक अपने प्रतिदिन का वर्णन समय, तिथि एवं स्थान के आधार पर करता है। निःसंकोच आत्मविश्लेषण, घटनाओं में सम्वद्धता, सजीवता, पर्याप्त सत्यता, स्वाभाविकता आदि विशेषताएँ इस शैली में होती हैं। इस शैली में कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन करता है जो संस्मरण-प्रधान होती हैं इसलिए उनमें संस्मरण शैली की विशेपताएँ प्राप्त होती हैं। जिन डायरियों का विषय सामाजिक एवं सांस्कृतिक होता है उनकी शैली चिन्तनात्मक होती है। कई स्थानों पर लेखक किसी विशेष नगर व स्थान का वर्णन करता है वहाँ वर्णनात्मक शैली का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। कवि लोगों द्वारा लिखी हुई डायरियों में भावात्मक शैली का पुट होता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि डायरी शैली में आवश्यकतानुसार विभिन्न शैलियों का प्रयोग हो सकता है परन्तु इसके मूल में वे सभी गुण विद्यमान होते हैं जो कि डायरी शैली में बताए गये हैं।

इन विधाओं में अन्य विधाओं का पारस्परिक संयोग तथा इनके अंतर्बन्ध

नाटक, उपन्यास और जीवनी—उपन्यास गद्य की वह विधा है जिसमें लेखक नायक के समस्त जीवन का चित्रण, आद्योपान्त करता है परन्तु नाटक की स्थिति इससे कुछ भिन्न है। इसमें नाटककार नायक के जीवन के कुछ विशेष स्थल एवं समय का चित्रण करता है।

नाटक यद्यपि दृश्यकाव्य के भीतर आता है पर उपन्यास में भी कुछ विशेष स्थल ऐसे होते हैं जिनमें नाटकीय शैली का प्रयोग होता है। इससे प्रतीत होता है कि नाटक उपन्यास में से ही निकला हुआ एक टुकड़ा है जो कि जीवन के किसी विशेष भाग का चित्रण नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता है।

नाटककार अपने पात्रों का एवं नायक का व्यक्तित्व अन्य पात्रों के वार्तालाप एवं हावभाव क्रियाओं से ही व्यक्त कर सकता है। वह पाठकों के सम्मुख नहीं आ सकता परन्तु उपन्यास में ऐसा नहीं होता। उपन्यासकार के लिए इस प्रकार की कोई पाबन्दी नहीं है। उसे इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह पाठकों तक अपने पात्रों के माध्यम से पहुँचे या सीधा ही उनके सामने आ जाए। वह उपन्यास में प्रत्यक्ष (Direct) या नाटकीय (Indirect) दोनों प्रणालियों में से जब जिसकी आवश्यकता हो उसका प्रयोग कर सकता है। जब वह देखता है कि नाटकीय प्रणाली द्वारा उसके पात्र पाठकों पर पूरी तरह नहीं खुल पाए तो वह उपन्यास में प्रकट होकर उनके क्रियाकलापों के पीछे काम करने वाले आन्तरिक प्रेरकों पर प्रकाश डालता हुआ उनमें सामंजस्य ला देता है। नाटककार को यह स्वतन्त्रता उपलब्ध नहीं है। उसके पात्र नाटकीय प्रणाली से जितना खुल पाएँ दर्शकों को उतने में ही सन्तोष करना पड़ता

है। यह नाटककार की लाचारी है। इसलिए नाटककार के पात्रों का चारित्र वहुधा स्पष्ट नहीं हो पाता।[1] उपन्यास में कल्पना का पूरा संयम और व्यायाम रहता है। उपन्यासकार विश्वामित्र की सी सृष्टि वनाता है किन्तु ब्रह्मा की सृष्टि के नियमों से भी वँधा रहता है। उपन्यास में सुख, दु:ख, प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, आशा, अभिलाषा, महत्वा-कांक्षाओं, चरित्र के उत्थान-पतन आदि जीवन के सभी दृश्यों का समावेश रहता है। उपन्यास में नाटक की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता है किन्तु नाटक के मूर्त साधनों के अभाव में उपन्यासकार उस सभी को शब्द चित्रों द्वारा करता है। नाटक में पात्र कुछ शब्दों द्वारा व्यंजित करते हैं कुछ भाव-भंगी द्वारा। दर्शक को कल्पना पर अधिक जोर नहीं देना पड़ता।......उपन्यासकार को नाटककार की भाँति समय और आकार का भी प्रतिवन्ध नहीं है......नाटककार ईश्वर की भाँति अपनी सृष्टि में अवव्यक्त ही रहता है, वह प्रत्यक्षरूप से स्वयं कुछ नहीं कहता जो कुछ कहना होता है पात्रों द्वारा ही कहलाता है।[2] इससे स्पष्ट है कि नाटक और उपन्यास में अन्तर होते हुए भी सम्वन्ध है। उपन्यास में से ही निकला हुआ एक टुकड़ा है। इस नाट-कीय शैली का प्रयोग उपन्यासकार आवश्यकतानुसार अपनी कृति में करता है। अगर उसको अथवा उस विशेप स्थल को जिसमें इस शैली का प्रयोग हो, निकाल कर रख दिया जाए तो कुछ आवश्यक परिवर्तनों के पश्चात् उसे नाटकीय शैली से सम्वद्ध जीवन का वर्णन कहा जा सकता है।

उपन्यास और जीवन चरित्र में भी जहाँ कुछ समानताएँ हैं वहाँ अन्तर भी हैं। यद्यपि इन दोनों विधाओं में किसी व्यक्ति के जीवन का चित्रण होता है परन्तु अन्तर इतना है कि उपन्यास का नायक कल्पित होते हुए भी समाज में दृष्टिगोचर होते हुए व्यक्तियों में से एक होता है और जीवनी लेखक का नायक कोई विशिष्ट एवं श्रद्धेय व्यक्ति होता है।

नायक के जीवन चरित्र को स्पष्ट करने के लिए दोनों ही लेखक कल्पना का प्रयोग करते हैं। उपन्यास में रचनात्मक कल्पना का कुछ अधिक पुट रहता है। जीवनीकार भी कल्पना का प्रयोग करता है किन्तु वह सामग्री के संयोजन और प्रका-शन की विधि में उससे काम लेता है। फिर भी उसकी कल्पना वास्तविकता से सीमित रहती है वह कल्पना के अलंकारों से अपने चरित्र नायक की इतनी ही साज-सम्भाल कर सकता है जितनी में कि उसका आकार-प्रकार न वदलने पाए। वह उस माँ की भाँति है जो अपने वालक को नहला-धुलाकर, वाल सम्हालकर तथा धुले कपड़े पहना कर समाज में भेजती है। कपड़ों के चुनाव में वह अपनी रुचि और कल्पना से काम लेती है किन्तु वह आकृति की असलियत को वदलने वाले पाउडर पेंट का काम प्रयोग

१. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, ले० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ४१५
२. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय पृ० १५८

करती है।[1] इससे यह प्रतीत होता है कि दोनों ही विधाओं में कल्पना का प्रयोग होता है परन्तु जीवनी में लेखक वास्तविकता का अधिक सहारा लेता है। जीवनी में कल्पना और अत्युक्ति की इतनी कम व अल्पमात्रा मिलती है जितनी आटे में नमक की होती है। उपन्यासकार अपनी कला के बल से ऐसी रचना करता है जिसे पढ़कर सोचना पड़ता है कि यह चरित नायक कौन हो सकता है। उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य नायक के चरित को कल्पना से अलंकृत कर आकर्षक रूप में पाठकों के सामने रखने का होता है और इसके लिए वह जीवन की घटनाओं पर कई ऐसे झीने आवरण चढ़ाता है जिनसे नायक का रूप सुन्दरतर होकर झाँकता रहता है किन्तु जीवनी लेखक इस मोह में अधिक नहीं फँसता; वह आकृति को सुन्दरतर करने के लिए मस्तक को बिन्दी से, नक्षस्थल को चंदन से, केशों को पुष्प से भले ही सजा दे किन्तु वास्तविक रूप को आवरण से ढकता नहीं।[2]

उपन्यासकार अपने पात्रों की नस-नस से परिचित होता है, उनके बाह्यान्तर को भली प्रकार जानता होता है इसलिए उपन्यास में उन पात्रों के व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही रूपों का चित्रण मिल जाता है। उनके बारे में कुछ अज्ञात नहीं रहता। जीवनीकार अपने पात्रों को उतना ही जान पाता है जितना उसके सामने वे खुले हुए होते हैं। शेष उसके लिए रहस्य रहता है। इसलिए जीवनी में पात्रों का व्यक्त रूप ही चित्रित हो पाता है और पाठकों की उनका अधूरा परिचय ही मिल पाता है। उपन्यास के पात्रों की तरह वे जीवनी के पात्रों के मन की अतल गहराइयों में गोता नहीं लगा पाते और उनका वह रूप पाठकों के लिए अज्ञेय ही रह जाता है।[3] इस प्रकार उपन्यासकार अपने चरित नायक के व्यक्तित्व को जीवनीकार की अपेक्षा अधिक जानता है। जीवनीकार तो उपन्यासकार की भाँति सर्वज्ञता का भी दावा नहीं कर सकता है। वह द्रष्टा के रूप में रहता है। वह अपने चरित्र नायक के बहुत से रहस्यों को जानता है किन्तु फिर भी वह उसके मन की सब बातों को पूरी दृढ़ता के साथ नहीं कह सकता है। अज्ञात विषयों के सम्बन्ध में वह अनुभव ही से काम लेता है।[4] इसी बात को डा० दशरथ ओझा ने भी पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। वह लिखते हैं कि उपन्यासकार को अपरिचित होते हुए भी यह गर्व है कि वह चरित्र नायक की नस-नस को पहचानता है किन्तु जीवनी लेखक सब भेदों और रहस्यों को जानते हुए भी सर्वज्ञता का दावा नहीं करता। जीवनीकार चरित्र नायक की बाह्य और आभ्यान्तर स्थितियों का सामंजस्य करता हुआ कहता चलता है क्योंकि उपन्यासकार

---

१. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय पृ० २३७
२. समीक्षा शास्त्र, ले० दशरथ ओझा, पृ० १९८
३. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, ले० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ४१६
४. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय, पृ० २३७

की तरह वाह्य स्थितियों को परिवर्तित करने का अधिकार उसे नहीं प्राप्त है।[1]

गद्य की इन दोनों ही विधाओं में लेखक नायक के व्यक्तित्व को उभारने के लिए उसके जीवन सम्वन्धी छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन भी करते हैं। उपन्यास में जिस प्रकार लेखक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष शैली का प्रयोग आवश्यकतानुसार कर सकता है उसी प्रकार जीवनी लेखक भी नायक के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से सम्वन्धित वार्तालाप को ज्यों का त्यों अपनी कृति में रख सकता है। इस विपय में वह आवश्यकतानुसार अपने विचारों को भी प्रकट कर सकता है। नायक के गुण-दोषों के विवेचन में दोनों ही लेखक सहृदयता से काम करते हैं। अन्तर केवल यही है कि उपन्यासकार अपने नायक के गुण एव दोपों को खूब अच्छी तरह से जानता होता है इसलिए वह जरा स्पष्ट रूप से इनका वर्णन कर देता है परन्तु जीवनी लेखक केवल उन्हीं का वर्णन कर सकता है जिनको वह स्वयं जानता है या उनके विपय में उसके पास कुछ प्रमाण हों।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गद्य की इन तीन विधाओं का पारस्परिक सम्वन्ध है। इनमें से उपन्यास इनके वीच की कड़ी है। इन दोनों की जहाँ विशेपताएँ प्राप्त होती हैं वहाँ इनमें भेद भी है। नाटक उपन्यास से निकला हुआ एक टुकड़ा है जोकि व्यक्ति के किसी विशेप स्थल एवं समय का चित्रण है और जीवनी उपन्यास के सदृश किसी विशेप व्यक्ति के जीवन का चित्रण है। अन्तर इतना ही है कि जीवनीकार का नायक सर्वप्रतिष्ठित होता है और उपन्यासकार समाज में से किसी भी व्यक्ति का चित्रण कर सकता है। इस प्रकार नाटक उपन्यास और जीवनी तीनों ही एक दूसरे पर आश्रित हैं।

जीवनी, संस्मरण और आत्मकथा

जीवनी, संस्मरण एवं आत्मकथा तीनों ही आत्म-अभिव्यक्ति से सम्वन्धित हैं। जीवनी और संस्मरण दोनों ही गद्य की स्वतंत्र विधाएँ हैं दोनों के ही तत्व एक-दूसरे से मिले हुए होने पर भी कुछ मौलिक अन्तर है। पहली वात तो यह है कि जीवनी-कार का लक्ष्य व्यक्ति विशेप के जीवन की प्रमुख घटनाओं और परिस्थितियों आदि का सही और व्यवस्थित चित्र प्रस्तुत करना होता है किन्तु संस्मरण लेखक केवल उन वातों का ही चित्रण करता है जिनसे वह स्वयं प्रभावित होता है। जीवनी लेखक के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह जिस व्यक्ति की जीवनी लिख रहा है उससे व्यक्तिगत रूप से वहुत अधिक परिचित ही हो। कभी-कभी महापुरुपों की जीवनियाँ श्रद्धाभाव से प्रेरित होकर प्राचीन उपलब्ध विवरणों के आधार पर भी लिख डालता है किन्तु संस्मरण के लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि लेखक ने उस व्यक्ति

---

१. समीक्षा शास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १९८

या वस्तु का साक्षात्कार प्राप्त किया हो जिसका संस्मरण वह लिख रहा है।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवनी में तो नायक के समस्त जीवन का वर्णन होता है और संस्मरण लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन करता है जोकि उसे विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। संस्मरण जिस भी व्यक्ति के विषय में लिखे जाते हैं लेखक को उसका जानना अत्यन्त आवश्यक है जबकि जीवनी में यह बात नहीं।

संस्मरणों में लेखक विषय वर्णन के साथ अपने मानसिक विचारों की क्रिया का व्यौरा भी दे सकता है। इसके साथ ही अन्य प्रभावित व्यक्ति के व्यक्तित्व की भी छान-बीनकर सकता है। जबकि जीवनीकार केवल उन्हीं घटनाओं का यथातथ्य वर्णन करता है जिनके विषय में उसके पास प्रमाण हैं या उसके अपने जीवन में घटी हों। वह किसी अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण नहीं कर सकता। यह बात केवल आत्मसंस्मरणों में ही पाई जाती है। संस्मरण किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के ही लिखे जा सकते हैं और जीवनी भी किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की ही लिखी जाती है। इस प्रकार जीवनी और संस्मरण का पारस्परिक सम्बन्ध है। कोई भी जीवनी ऐसी नहीं होती जिसमें लेखक व्यक्तिगत संस्मरणों का प्रयोग न करता हो और कोई भी ऐसा संस्मरण नहीं होता जिसका सम्बन्ध किसी अन्य व्यक्ति के जीवन से न रहता हो।

जहाँ तक आत्मकथा और संस्मरण का प्रश्न है इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि कोई भी आत्मकथा ऐसी नहीं जिसमें किसी न किसी रूप में संस्मरण का प्रयोग न हो और कोई भी संस्मरण ऐसा नहीं जिससे आत्मकथात्मक तत्वों का ज्ञान न हो। इस प्रकार इन दोनों विधाओं का आपस में सम्बन्ध है। इन विशेष-ताओं के होते हुए भी इन दोनों में कुछ भेद है जिससे इन्हें गद्य की स्वतंत्र विधा माना जाता है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन का आद्योपान्त विवेचन करता है और संस्मरण में तो केवल प्रभावित घटनाओं का ही उल्लेख होता है। प्रत्येक संस्मरण अपने में स्वतंत्र होता है जबकि आत्मकथा में से किसी भी अंश को स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। इसकी प्रत्येक घटना का एक-दूसरे से सम्बन्ध होता है। जबकि संस्मरण ऐसे भी होते हैं जिनमें लेखक को बाह्य जगत् का विश्लेषण करना अनिवार्य हो जाता है।

इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरणों का प्रयोग जीवनी और आत्म-कथा दोनों में किया जाता है अतः इन गद्य की विधाओं का पारस्परिक सम्बन्ध है। संस्मरण को जीवनी और आत्मकथा के बीच की कड़ी माना जा सकता है।

पत्र, रेखाचित्र तथा डायरी

प्रत्येक पत्र का विषय स्वतंत्र होता है और वह जिस भी विषय से सम्बन्ध

---

१. समीक्षा शास्त्र, ले० दशरथ ओझा

ञता है उसमें उसका पूर्णतया वर्णन होने पर भी आकार सीमित होता है। इसी क़ार रेखाचित्र का भी सीमित ही आकार होता है।

रेखाचित्र में जीवन के किसी एक भाग का वर्णन नहीं होता, वह तो समस्त ोवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। इनमें सबसे मुख्य बात यह देखी जाती है कि इनमें र्णन के अतिरिक्त विश्लेषण नहीं होता, ऐसे रेखाचित्रों की झाँकी अन्य चरित्रमूलक त्रों में पाई जाती है। जिन पत्रों का उद्देश्य किसी अन्य व्यक्ति के चरित्र का वर्णन ोता है उनमें पत्र लेखक रेखाचित्रकार की भांति नायक के चरित्र का वर्णन करता ै। आकार सीमित होने के कारण रेखाचित्र की झलक दिखाई देने लगती है।

जिस प्रकार रेखाचित्रों का विषय चेतन और अचेतन दोनों में होता है उसी ाकार पत्र भी दोनों विषयों से सम्बन्धित होते हैं। जिन पत्रों में किसी स्थान एवं नगर का वर्णन होता है वे उन रेखाचित्रों जैसे होते हैं जिनमें निर्जीव पदार्थों का चित्रण होता है। विषय एक होते हुए भी पत्र और रेखाचित्र में अन्तर यह है कि पत्र लेखक अपने व्यक्तित्व की विद्वत्ता के अनुसार साथ-साथ कहीं टीका-टिप्पणी भी संक्षिप्त रूप से कर सकता है परन्तु रेखाचित्र तो चित्रकार की तरह चित्र ही खींच देता है।

जिस प्रकार आत्मकथात्मक पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व झलकता दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार संस्मरणात्मक शैली में लिखे हुए रेखाचित्रों में जिनमें किसी वस्तु घटना या व्यक्ति का वर्णन होता है लेखक का व्यक्तित्व उभरता है ये समस्त रेखा-चित्र वर्णनात्मक होते हैं। इन सबका चित्रण लेखक तटस्थ भाव से नहीं कर पाता वे उसकी अनुभूति और आस्थाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। इन सबका सम्बन्ध लेखक के साथ होता है इसलिए आत्मानुभूति का स्वर साथ-साथ मुखरित हो जाता है।

डायरी किसी व्यक्ति के समस्त जीवन का प्रतिबिम्ब होती है। इसमें लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन समय व स्थान के अनुसार करता है। रेखा-चित्रकार भी जिस भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण करता है वह उसके समस्त व्यक्तित्व की झाँकी होती है वह अपनी शब्द रेखाओं से ऐसा चित्रण करता है कि स्वयं ही उसका बाह्य और आन्तरिक रूप स्पष्ट हो जाता है। इसका उद्देश्य तो चित्रण करना ही होता है। इसी प्रकार डायरी लेखक भी अपनी घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करता है कि उसके व्यक्तित्व का विश्लेपण स्वयं ही हो जाता है।

डायरी में जब लेखक किसी विशेष स्थान या नगर का चित्रण करता है तब उसकी शैली रेखाचित्रकार की सी हो जाती है जिस प्रकार रेखाचित्रकार शब्द रेखाओं से ऐसा चित्र खींचता है जोकि आकार में सीमित होते हुए भी आकर्षक प्रतीत होता है। ठीक इसी प्रकार डायरी लेखक भी किसी स्थान या नगर के चित्रण में करते हैं। अतः स्पष्ट है जब डायरी लेखक किसी वस्तु, स्थान या घटना का वर्णन करते हैं वहाँ रेखाचित्रकार की शैली को अपनाते हैं अन्तर केवल इतना है कि डायरी में सभी घट-नाओं का वर्णन समय एवं स्थान के अनुसार होता है परन्तु रेखाचित्र में इस ओर कोई

विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्र का सम्बन्ध डायरी और पत्र दोनों से ही है।

नाटक, काव्य तथा गद्यगीत

'काव्य' एक व्यापक शब्द है इसमें गद्य और पद्य दोनों का ही विस्तृत समावेश हो जाता है। इसलिए नाटक का समावेश काव्य के भीतर ही हो जाता है। नाटक की उत्पत्ति ही नृत्य, संगीत और काव्य से हुई है। इसलिए काव्य और नाटक का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

नाटक समय और स्थान की सीमाओं से बँधा हुआ होता है और यह दृश्य काव्य के भीतर आया है। नाटक में जीवन के किसी भी भाग का सीमित चित्रण होता है। काव्य में लेखक सम्पूर्ण जीवन का चित्रण भी कर सकता है और एकांगी जीवन का भी अन्तर केवल इतना है कि नाटक गद्यमयी रचना है और काव्य गद्य-पद्यमयी।

काव्य में लेखक अपने नायक एवं पात्रों की भावनाओं और अनुभूतियों का अलंकृत शैली में वर्णन करता है परन्तु नाटकों में यह बात केवल काव्य नाटकों में ही पायी जाती है। काव्य नाटक काव्यत्व और रूपकत्व का संगम स्थल है। काव्यत्व और नाटक तत्व आकर इसमें ऐसे स्वरूप विधान की सृष्टि कर देते हैं जिसमें काव्यत्व के कारण मानव जीवन के रागतत्व बड़ी स्पष्टता से उभर कर आते हैं व भावनाएँ और अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ वहा ले जाते हैं। आवेगों की···तीव्रता के कारण काव्य नाटक में छन्दोबद्ध लयपूर्ण और अलंकृत भाषा का व्यवहार किया जाता है।[1]

काव्य में लेखक अपने व्यक्तित्व को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही प्रकार से व्यक्त कर सकता है। कवि की कृति में उसका व्यक्तित्व नायक नायिका के रूप में अभिव्यक्त होता है। कवि का उद्देश्य है अपने कवि जीवन के अनुभव को अभिव्यक्त करना। कवि की कल्पना एवं उसके अनुभव में जीवन की जो मूर्ति झलकती है उसी की प्रतिमूर्ति उसके नायक नायिका में प्रस्फुटित होती है—कवि का व्यक्तित्व उसकी कृतियों में नायक नायिका की प्रतिमूर्ति बनकर पाठक के सामने उपस्थित होता है। कवि के व्यक्तित्व और उसके काव्य का यही अविच्छिन्न सम्बन्ध है।[2] गीतिकाव्य में तो कवि का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष रूप से ही देखने में आता है। नाटक में लेखक अपने व्यक्तित्व एवं विचारों को परोक्ष रूप से उसमें वर्णित पात्रों के संवाद द्वारा व्यक्त करता है।

दोनों ही विधाओं का उद्देश्य रस की उत्पत्ति करना है। प्रसादात्मकता और मनोरंजन के उद्देश्य से ही इनकी रचना की जाती है। अतः स्पष्ट है कि काव्य और नाटक का घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी दोनों में अन्तर है।

---

१. हिन्दी साहित्य कोष, पृ० २५५

२. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह,

गद्यकाव्य एवं काव्य का भी पारस्परिक सम्बन्ध है। गद्यकाव्य गद्य और पद्य के मध्य की वस्तु है। इसमें पद्य के अनुरूप भावना और अनुभूति की प्रधानता रहती है साथ ही गद्य की स्वच्छन्दता भी रहती है। उसमें छन्द के बन्धन नहीं होते पर उनकी-सी लय अवश्य रहती है। दूसरे शब्दों में छन्द का आनन्द इसमें विद्यमान रहता है।[1] गद्यकाव्य जिसे दूसरे शब्दों में गद्यगीत कहा जा सकता है इसका सम्बन्ध गीतिकाव्य से है। दोनों में अन्तर इतना है कि गीतिकाव्य में छन्द का बन्धन होता है परन्तु गद्यगीतों में नहीं।

गद्यकाव्य की भाषा गद्य की होती है किन्तु भाव प्रगीत काव्यों में से। गद्य के शरीर में से पद्य की सी आत्मा बोलती हुई दिखाई देती है। भाषा का प्रवाह भी साधारण गद्य की अपेक्षा कुछ अधिक सरस और संगीतमय होता है। गद्यकाव्य में रूपकों और अन्योक्तियों का प्राधान्य रहता है। इसमें कहानी की भाँति एक ही संवेदना रहती है किन्तु जहाँ वह प्रलाप शैली का अनुकरण करता है वहां अन्विति का अभाव भी भावातिरेक का द्योतक होता है—गद्यकाव्य की अपेक्षा कुछ गद्यगीत भी लिखे गए हैं। उनमें साधारण गद्यकाव्य की अपेक्षा गति और लय कुछ अधिक होती है और पंक्तियों का विन्यास भी कुछ-कुछ गीतों का सा होता है। अपेक्षाकृत आकार भी छोटा होता है।

इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि गद्यगीत गीतिकाव्य से समता रखते हैं। इस प्रकार काव्य और गद्यगीत का पारस्परिक सम्बन्ध है। काव्य की एक विशिष्ट धारा गीतिकाव्य में जो विशेषताएँ पाई जाती हैं वे सभी गद्यगीतों में हैं अन्तर केवल छन्दोबद्ध होने का है। फिर भी इस प्रकार के गद्य में भावावेश के कारण एक प्रकार की लययुक्त झंकार होती है जो सहृदय पाठक के चित को भावग्रहण के अनुकूल बनाती है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि काव्य का सम्बन्ध नाटक और गद्य दोनों से ही है।

रिपोर्ताज़ और पत्रकारिता

जब किसी घटना या वृत्त का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि उस वृत्त का संक्षिप्त रूप पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाता है, साथ ही उससे वह प्रभावित हो जाता है तब वह रूप 'रिपोर्ताज' कहलाता है। किसी घटना का ऐसा वर्णन करना कि वस्तुगत सत्य पाठक के हृदय को प्रभावित कर सके रिपोर्ताज कह-लायेगा। कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता। इससे स्पष्ट है कि रिपोर्ताज लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन करता है जोकि उसने आंखों देखी और कानों सुनी हुई होती हैं। रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही

१. हमारा हिन्दी साहित्य, ले० भवानी शंकर त्रिवेदी, पृ० ४२२

रिपोर्ताज़ कहते हैं वस्तुगत तथ्य को रेखाचित्र की शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से अंकित करने में ही रिपोर्ताज़ की सफलता है। आँखों देखी और कानों सुनी हुई घटनाओं पर रिपोर्ताज़ लिखा जा सकता है, कल्पना के आधार पर नहीं।[1] पत्रकार भी उन्हीं घटनाओं का वर्णन करता है जोकि सत्य पर आधारित होती हैं। पत्रकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उन्हीं घटनाओं का वर्णन करे जोकि आँखों देखी हुई हों, वह भी सुनी हुई घटनाओं का वर्णन कर सकता है।

रिपोर्ताज़ लेखक छोटी से छोटी घटना का वर्णन इस प्रकार से करता है कि वह पाठक के व्यक्तित्व पर सामूहिक प्रभाव डालती है। रिपोर्ट की भाँति वह घटना या घटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है किन्तु इसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह रहता है जो वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार का आवरण डाले उसको प्रभावमय बना देता है। इसमें लेखक छोटी-छोटी घटनाओं को देकर पाठक के मन पर एक सामूहिक प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है। इनका सम्बन्ध वर्तमान से होता है। ये घटनाएँ कल्पनाप्रसूत नहीं होती हैं इन घटनाओं के वर्णन द्वारा वह चरित्र को भी प्रकाश में लाता है। इसका लेखक घटनास्थल पर उपस्थित होता है और वह प्रायः आँखों देखी बातें ही लिखता है। वह कलम का शूर तो होता ही है साथ ही चन्दवरदाई की भाँति साहसी तथा वीर भी होता है।[2] इधर पत्रकारिता में लेखक जैसी घटनाएँ देखता या सुनता है उनका वैसा ही विवरण प्रस्तुत कर देता है। उसके वर्णन में किसी भी प्रकार की साहित्यिकता नहीं होती।

रिपोर्ताज़ की गणना स्थायी साहित्य में की जाती है और पत्रकारिता की अस्थायी साहित्य में। पत्रकारिता साहित्य का बड़ा ही प्रतिष्ठित और दायित्वपूर्ण अंग है यद्यपि पत्र-पत्रिकाओं का अधिकांश साहित्य स्थायी नहीं समझा जाता है, किन्तु बहुत सी दृष्टियों से वह स्थायी साहित्य से भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। हमारे नित्यप्रति के जीवन की जो झाँकी इस साहित्य में दृष्टिगोचर होती है वह स्थायी साहित्य में इस रूप में नहीं मिलती। हमारे दिन प्रतिदिन के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण इस साहित्य का महत्व भी स्थायी साहित्य से अधिक है। साथ ही साथ इस प्रकार के साहित्य सृष्टाओं का दायित्व भी स्थायी साहित्य सृष्टाओं की अपेक्षा अधिक है।[3]

स्थायी एवं अस्थायी साहित्य में वर्णित घटनाओं के सत्य में अन्तर होता है। यही कारण है कि रिपोर्ताज़ और पत्रकारिता में वर्णित सत्य में अन्तर है। स्थायी साहित्य में सत्य के जिस स्वरूप पर बल दिया जाता है वह इस साहित्य के स्वरूप से थोड़ा भिन्न होता है—कहने का अभिप्राय यह है कि पत्र-पत्रिकाओं के साहित्य का सत्य

१. हिन्दी साहित्य कोष, पृ० ७१७
२. काव्य के रूप, ले० गुलाबराय, पृ० २५०
३. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, ले० गोविन्द त्रिगुणायत

शुद्ध स्थायी साहित्य के सत्य के बिल्कुल अनुरूप नहीं हो सकता। उसे लौकिक सत्य की रक्षा के साथ-साथ ही काव्य सत्य की सीमा का स्पर्श भी करना पड़ेगा। पत्रकार को केवल सत्य के स्वरूप की सुरक्षा का ही ध्यान नहीं रखना पड़ता वरन् उसे साहित्य के शिव और सौंदर्य तत्वों को भी कुछ अधिक वास्तविक रूप में जनता के सामने लाना पड़ेगा इसके लिए उसे जनरुचि और जनकल्याण भावनाओं के मनोविज्ञान से पूर्ण परिचित होना पड़ेगा। जो पत्रकार इन भावनाओं के मनोविज्ञान से परिचित नहीं होते वे इस साहित्य की रचना में कदापि सफल नहीं होते। वास्तव में पत्र-पत्रिकाओं का साहित्य हमारे प्रत्यक्ष जीवन को बल प्रदान करने वाला वह अव्यर्थ शस्त्र है जिसके समुचित प्रयोग से हम जनजीवन की चेतना की गतिविधि तक बदलने में समर्थ होते हैं।[1]

रिपोर्ताज़ और पत्रकारिता दोनों की सीमा सीमित होती है। साहित्य का यह सबसे लचीला रूप है जिसकी सीमा एक पृष्ठ से लेकर कई पृष्ठों तक हो सकती है। वर्तमान पत्रकार-कला से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पत्रों में जैसे लम्बे उपन्यास एक साथ नहीं छप सकते, वैसे ही उनमें बहुत लम्बी रिपोर्ताज़ भी नहीं छप सकती।[2] इससे स्पष्ट है कि इन दोनों विधाओं का पारस्परिक सम्बन्ध है।

रिपोर्ताज़ लेखक को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है कि वह अपने लेख को घटना-प्रधान बनाए अथवा चरित्र-प्रधान, वह उसमें नाटकीयता का पुट दे या गीतात्मकता का; परन्तु पत्रकारिता के लेखक को इतनी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त होती।

रिपोर्ताज़ में लेखक घटना का विवरण तो प्रस्तुत करता ही है उसके साथ उसके व्यक्तिगत विचार भी प्रस्तुत होते हैं। इसलिए पत्रकारिता के लेखक की अपेक्षा रिपोर्ताज लेखक अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण स्वयं करता है। उसके वर्णन में उसका व्यक्तित्व मुखरित हो उठता है। लेख में घटना का विवरण होता है, स्केच में रेखा-चित्र और संस्मरण में जीवन का स्पन्दन, पर विवरण, चित्र और स्पन्दन का समन्वय ही रिपोर्ताज़ है। दूसरे शब्दों में रिपोर्टिंग में समाचार होता है, सम्पादकीय में विचार, पर रिपोर्ताज़ में समाचार और विचार का संगम है। शायद यों कहकर मैं और समीप हो जाऊँ कि इसमें दृश्य और चिन्तन का संगम है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि रिपोर्ताज़ में लेखक घटनाओं के विवरण के साथ-साथ विचारों का भी वर्णन करता है जिससे शैली में आत्मीयता के साथ-साथ प्रभावोत्पादकता आ जाती है। यही कारण है कि रिपोर्ताज लेखक को पत्रकार तथा कलाकार की दोहरी जिम्मेवारी निभानी पड़ती है।

---

१. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, ले० गोविन्द त्रिगुणायत

२. हमारा हिन्दी साहित्य, ले० भवानीशंकर, पृ० ४२३

3 जीवनी

जब कोई लेखक कुछ वास्तविक घटनाओं के आधार पर श्रद्धेय व्यक्ति की जीवनी कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है तो साहित्य का वह रूप जीवनी कहलाता है। साहित्य की इस विधा का विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है।

तत्व

प्रकाशित जीवनी साहित्य के आधार पर 'जीवनी' के तत्व निम्नलिखित हैं—

वर्ण्य विषय—जीवनी साहित्य का यह महत्वपूर्ण तत्व है। इसमें लेखक के नायक का विश्लेषण होता है। नायक के चरित्र का वास्तविक घटनाओं के आधार पर संश्लेषण, विवेचन एवं विश्लेषण ही वर्ण्य विषय में कलात्मक रूप से किया जाता है। लेखक अपनी रुचि अनुसार किसी भी व्यक्ति का जीवन चरित्र लिख सकता है। यह आवश्यक नहीं कि वह साहित्यिक व्यक्ति ही हो, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक कोई भी व्यक्ति हो सकता है पर इतना आवश्यक है कि ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसका जीवन चरित्र पढ़ने से पाठक कुछ प्रेरणा अथवा विशिष्ट ज्ञान ग्रहण कर सके।

वर्ण्य विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उसमें कुछ गुणों का होना आवश्यक है। सर्वप्रथम विषय में वास्तविकता एवं सत्यता का होना है। यही एक ऐसा तत्व है जिस पर जीवनीकार की कला कुशलता एवं सफलता निर्भर है। चरित्र नायक के गुण दोषों का स्पष्ट विश्लेषण करने से ही जीवनी सफल कही जा सकती है। जीवनीकार सत्य पथ से कभी विचलित नहीं होता। यह हो सकता है कि दोष दर्शन में उसके हृदय में सहृदयता की भावना ऐसी हो कि वह यथार्थता की रक्षा करता हुआ चरित्र नायक की दुर्बलताओं का परिहास न करे। जीवनीकार सत्य का पल्ला कभी नहीं छोड़ता। वह इस मर्यादा की रक्षा के लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार रहता है।[1] वर्ण्य विषय में जीवनीकार किसी भी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं करता जो काल्पनिक हो प्रत्येक घटना सत्य पर आधारित होती है। जीवन चरित्र के निर्माण में गुण और दोष, जीवन के काले और उज्ज्वल धब्बे सत्य रूप में अंकित होने चाहिए।[2] यही एक ऐसा गुण है जो कि जीवनी साहित्य को गद्य की अन्य विधाओं से पृथक् करता है। लेखक की प्रत्येक घटना सत्य एवं वास्तविकता पर आधारित

---

१. समीक्षा शास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १६६, द्वितीय संस्करण जुलाई, १९५७

२. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १३

होती है। शिवनन्दन सहाय ने भारतेन्दु के जीवन की प्रत्येक घटना का वर्णन इस ढंग से किया है कि उसकी प्रामाणिकता का आधार वह साथ-ही-साथ देते गए हैं। भारतेन्दु के पूर्वजों के निवास स्थान का जहाँ इन्होंने वर्णन किया है वहाँ उसकी वास्तविकता का आधार भी पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया है—

"बाबू हरिश्चन्द्र के पूर्वज मुर्शिदाबाद में रहते थे यह बात तो निर्विवाद है क्योंकि बाबू साहब के स्वर्गवास के थोड़े ही काल के अनन्तर "इण्डियन क्रोनिकल" नामक अंग्रेजी समाचार पत्र में लिखा था कि बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म एक धनाढ्य वैश्य कुल में हुआ था जिसके पूर्वज बंगाल की प्राचीन राजधानी गौड़नगर की बढ़ती के समय वहाँ वास करते थे फिर राजमरल आए और जब बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद हुई तो लोग वहाँ आए।"[1]

यही नहीं भारतेन्दु के चरित्र का विश्लेषण इन्होंने स्पष्ट रूप से किया है। जहाँ इन्होंने इनके गुणों का विश्लेषण किया है वहाँ दोषों का वर्णन करने में यह पीछे नहीं रहे। चतुर्विंश परिच्छेद में माधवी और मल्लिका के साथ इनके अनुराग का वर्णन इसी बात का द्योतक है। लेखक ने इस परिच्छेद का शीर्षक "गुलाब में काँटे" इसीलिए रखा है।

विषय के स्पष्ट एवं सत्य वर्णन से ही रोचकता एवं प्रसादात्मकता का समावेश होता है। पाठक तभी पढ़ने में रुचि लेगा यदि जीवन का स्पष्ट चित्रण हो। केवल गुण ही किसी व्यक्ति में नहीं होते दोष भी होते हैं। इन सभी के वर्णन से ही विषय में रोचकता आ सकती है।

तीसरा महत्वपूर्ण गुण जो कि विषय को उत्कृष्ट बना सकता है वह वैज्ञानिकता का होना है। विज्ञान और विवेक की शत प्रतिशत आवश्यकता जीवन चरित्र में अनिवार्य है। यदि लेखक की वैज्ञानिकता में लेशमात्र भी अन्तर आया तो जीवनचरित्र उसी अंश तक दूषित हो जाएगा। जीवन की घटनाओं की वैज्ञानिक छान-बीन और उन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखना और उपस्थित करना आवश्यक है। यदि वैज्ञानिक विवेचना में कमी आई तो जीवन चरित्र कल्पना की कहानी हो जाएगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन साहित्य को एक ऊँची मर्यादा प्रदान करता है।[2]

वर्ण्य विषय में संक्षिप्तता एवं सुसंगठितता का होना अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि जीवनीकार मूर्ति रक्षक की भाँति अनुपातपूर्ण सुगठित और चमत्कार जीवनी नहीं दे सकता है क्योंकि उसे सत्य का आग्रह रहता है और एक सजीव और संकुल चरित्र के उद्घाटन में अन्विति के साथ विरोध और व्याघात भी रहते हैं जिनके बिना जीवनी शायद निर्जीव हो जाय तथापि उसे अपनी कृति को ब्यौरे के वैचित्र्य को गँवाए बिना ऐसा सुसंगठित रूप देना चाहिए कि उसमें थोड़े में बहुत प्रसादात्मकता आ

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२. हिन्दी में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० ११

जाए ।[1] इससे स्पष्ट है कि जीवनीकार विषय को संक्षिप्त एवं सुसंगठित रूप से वर्णन करे ।

अतः विवेचन से स्पष्ट है कि उपरिलिखित गुणों से युक्त विषय ही आकर्षक एवं स्फूर्तिदायक हो सकता है । इन्ही को दृष्टि में रखते हुए तो लिओन ईडेल (Leon Edel) ने जीवनीकार के लिए कुछ सीमाएं निश्चित की हैं । जीवनीकार जितना चाहे उतना कल्पनाशील वन सकता है, जितना वह कल्पनाशील होगा उतना ही सामग्री को अच्छे ढंग से एकत्रित कर सकता है, पर उसकी सामग्री कल्पित नहीं होनी चाहिए । उसको भूतकाल का अवश्य अध्ययन करना चाहिए, पर उस भूतकाल को वर्तमान की दृष्टि में रखते हुए अध्ययन आवश्यक है । उसको तत्वों का अनुमान करना चाहिए पर उसे निर्णय में नहीं बैठना चाहिए । उसे वीती हुई घटनाओं का सम्मान करना चाहिए पर सत्य अवश्य कहना चाहिए ।[2]

The Biographer may be as imaginative as he pleases—the more imaginative the better—in the way in which he brings together his materials, but he must not imagine the materials. He must read himself into the past; but he must also read that past into the present. He must judge the facts, but he must not sit in judgment. He must respect the dead—but he must tell the truth.

चरित्र चित्रण

जीवनी साहित्य का यह अन्य महत्वपूर्ण तत्त्व है । जीवनीकार इतिहास में तथा सामयिक समाज में प्रसिद्ध व्यक्ति को ही अपनी रचना का विषय बनाता है । वही उसका प्रधान पात्र होता है । इसी मुख्य पात्र का चरित्र चित्रण करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य होता है । इसीलिए चरित्र चित्रण जीवनी का विधायक तत्त्व माना जा सकता है ।

जीवनी में घटनाओं का अंकन नहीं होता वरन् चित्रण होता है । किसी भी मनुष्य के अन्तर और वाह्य स्वरूप का कलात्मक रूप से इसमें विवेचन होता है । इसमें जीवनीकार अपने श्रद्धेय पात्र के जीवन का अध्ययन, संश्लेषण एवं विश्लेपण करता है । उसकी चारित्रिक विशेषताओं का अनुशीलन करता है । जीवनीकार का विशेष ध्यान वर्ण्य चरित्र की सत्प्रवृत्तियों, उदात्त भावनाओं एवं सराहनीय कार्यों पर ही रहता है । फिर भी जब वह अपने चरित्र नायक की गम्भीरता, समीपता से चित्रण करने का उपक्रम करता है तब उसे उसकी दुर्वलताएँ भी दृष्टिगोचर होने लगती हैं । जीवनीकार इन दुर्वलताओं से मुँह नहीं मोड़ता । उसमें अपने वर्ण्य चरित्र के प्रति श्रद्धा होती है, सहानुभूति होती है पर अनन्य भक्ति नहीं । वह उन दोषों को दोष रूप में ही

१. काव्य के रूप, ले० गुलावराय, पृ० २३९

२. 'Literary Biography' by Leon Edel, Page 1, 1957.

ग्रहण करता है। वह उनका अपने वर्ण्य चरित्र के व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण में उपयोग करता है। दोष तो उसके व्यक्तित्व की बाह्य रेखाओं को उभार में ला देते हैं।[1] इस प्रकार चरित्र चित्रण में लेखक चरित्र के सभी गुण दोषों का वर्णन करता है।

जहाँ तक बाह्य व्यक्तित्व का प्रश्न है लेखक चरित्र नायक के अवयवों का एवं शारीरिक सौंदर्य का भी पाठक को अवश्य ज्ञान करवाता है। ब्रजरत्नदास ने भारतेन्दु की आकृति का वर्णन इसीलिए किया है—

"भारतेन्दुजी कद के लम्बे थे और शरीर से एकहरे थे, न अत्यंत कृश और न मोटे ही। आँखें कुछ छोटी और धंसी हुई-सी थीं तथा नाक बहुत सुडौल थी। कान कुछ बड़े थे जिन पर घुँघराले बालों की लटें लटकती रहती थीं। ऊँचा ललाट इनके भाग्य का द्योतक था। इनका रंग सांवलापन लिए हुए था। शरीर की कुल बनावट सुडौल थी।"[2]

इस बाह्य वेशभूषा के वर्णन का प्रभाव आरम्भ में ही पाठक पर पड़ जाता है। यदि सीधी-सादी वेशभूषा होगी तो व्यक्तित्व एवं स्वभाव भी वैसा ही होगा, यदि चटकीली होगी तो वैसा ही चरित्र नायक का व्यक्तित्व होगा।

अब बाह्य व्यक्तित्व के पश्चात् चरित्र नायक का आन्तरिक विश्लेषण है। इसमें दो बातें होती हैं—नायक के गुण एवं दोष। जिस व्यक्ति में गुण अधिक होते हैं उसके प्रति लोग अधिक आकृष्ट हो जाते हैं पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उनमें दोष नहीं होते, होते हैं पर गुणों की संख्या अधिक होती है। आज से साठ वर्ष पूर्व शिवनन्दन सहाय ने जो भारतेन्दु की जीवनी लिखी है उसमें जहाँ भारतेन्दु के साहित्यिक गुणों का विस्तार रूप से वर्णन किया है वहाँ उन्होंने उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं का परिचय 'गुलाब में काँटा' शीर्षक में दिया है। भारतेन्दु के चरित्र सम्बन्धी गुण-दोषों के वर्णन में इन्होंने 'सप्तविंश परिच्छेद' में लिखा है —

"हम भी इनके गुण-अवगुण को पूर्व परिच्छेदों में स्पष्ट वर्णन करते आए हैं जिसको देखकर बहुत से लोग आक्षेप करेंगे और कहेंगे कि केवल इनकी सुख्याति के ध्यान से अनेक बातों को प्रकाशित करने के बदले हमको उन पर परदा ही देना चाहिए था पर हमारी क्षुद्र बुद्धि में यह बात नहीं जँचती। ऐसा करने से इनके यथार्थ सद्गुणों की कथाएँ भी अविश्वसनीय हो जातीं क्योंकि कोई व्यक्ति सर्वगुण आगर ही हो, कहीं किसी दोष का लेश भी उसमें न हो, सर्वदा जेठ बिसाख के सूर्य की चमक ही हो, सर्वत्र उज्ज्वल धूप ही हो, कहीं श्यामल छाया का नाम तक न हो, यह बात प्रकृति के विरुद्ध है। किसी प्राणी के विषय में ऐसा कहना कब सच माना जा सकता है। और कोई अर्थ-लोलुप कवि ऐसा करे तो करे, परन्तु सत्यकवि या चरित्र-लेखक को ऐसा करना कब उचित

1. 'सिद्धान्तालोचन,' ले० धर्मचन्द्र बलदेवकृष्ण, पृ० २०५
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० ब्रजरत्नदास, पृ० १५

है। उसको जो कुछ घटना हो सब ही वर्णन कर देनी चाहिए चाहे वह गुण हों वा दोष।[१]

ब्रजरत्नदास ने भी भारतेन्दु पर लिखी जीवनी में अपने इस मत का समर्थन 'चन्द्र में कलंक' शीर्षक में दिया है—

"मनुष्य तभी मनुष्य रहेगा जब उसके दोष आदि भी प्रकट कर दिए जायेंगे मनुष्य देवता नहीं है, उसमें दोष रहेंगे, किसी में एक है तो किसी में कुछ और है। यदि एक महात्मा की जीवनी से हम दोनों को निकाल देते हैं तो हम ऐसा निर्दोष आदर्श उपस्थित कर देते हैं जिसको अनुगमन करने का लोग साहस छोड़ बैठेंगे—तात्पर्य यह है कि जीवन चरित्र में गुणों का विवेचन करते हुए दोषों का भी, यदि हों, तो विश्लेषण अवश्य कर देना चाहिए।"[२]

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि चरित्र नायक के व्यक्तित्व के गुणों के वर्णन के साथ-साथ उसकी दुर्बलताओं एवं त्रुटियों का विवेचन भी जीवनी-कार को अवश्य करना चाहिए।

देशकाल

देशकाल भी जीवनी साहित्य का एक महत्वपूर्ण तत्व है। वर्ण्य चरित्र किसी देश या काल में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। इसीलिए उसके समस्त जीवन की घटनाएँ देश एवं काल से सम्बन्ध रखती हैं। अन्य प्रकथनात्मक साहित्य की भाँति जीवनी साहित्य में देशकाल का चित्रण मुख्य रूप से नहीं किया जाता। यह तो गौण रहता है। अन्य साहित्य में देशकाल का चित्रण स्वतन्त्र रूप से किया जाता है। जीवनी में व्यक्ति ही मुख्य होता है वही अंगी होता है।

हिन्दी जीवनी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि चरित्र नायक के जीवन को उभारने के लिए तो लेखक ने देशकाल का वर्णन किया है अन्य किसी उद्देश्य से नहीं। साहित्यिक जीवनी में अधिकतर तत्कालीन साहित्यिक दशा का तो वर्णन मिल जाएगा परन्तु जहाँ तक राजनैतिक परिस्थितियों का प्रश्न है वह तो न के बराबर ही है। साहित्यिक जीवनी में तो अधिकतर लेखक तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन कर चरित्र नायक का उसमें स्थान निर्धारित करता है। शिव-नन्दन सहाय ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्थान पंचम परिच्छेद में "हिन्दी भाषा और हिन्दी प्रचार" में तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए निर्धारित किया है। परन्तु ब्रजरत्नदास ने अपनी लिखित जीवनी में थोड़ा-बहुत तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का आभास पाठक को करवा दिया है। उनका "राजभक्ति" शीर्षक इसी प्रकार का है। इसमें लेखक ने भारतेन्दु के व्यक्तित्व को परिस्थितियों से प्रभावित दिखलाया है—

---

१. भारेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० शिवनन्दन सहाय, पृ० ३४६, प्रथम संस्करण, १६०५
२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० ब्रजरलदास, पृ० २५०

"भारतेन्दुजी का रचनाकाल सं० १९२४ से सं० १९४१ तक था और वह समय था जब भारवर्ष में पूर्ण शान्ति नहीं हो चुकती थी। उनके जन्मस्थान काशी ही में उन्हीं के समय संध्या के बाद किसी अमीर आदमी का आगे-पीछे दस-पाँच सिपाही साथ लिए बिना निकलना कठिन था। ऐसे समय शान्ति-स्थापक अंग्रेजी राज्य को, 'ईस इत थिर करि थापै' कहना ही देशप्रेम था। साथ ही अंग्रेजी राज्य के दोषों का कथन, उनके निवारणार्थ प्रार्थना करना आदि 'राजद्रोह' नहीं कहा जा सकता था। वे अंग्रेजी राज्य को उसके दूषणो से रहित देखना ही देशप्रेम समझते थे और वही उस समय के लिए उचित भी था।"[१]

इसी प्रकार "प्रेमचन्द कलम का सिपाही" में भी अमृतराय ने जहाँ उचित समझा वहीं तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन किया है—

"सन् १९१४ तक आते-आते देश पूरी तरह निष्प्राण हो चुका था। जुलाई १९१४ में महायुद्ध छिड़ा। नवम्बर में जर्मन सेनाएँ फ्रांस के दरवाजे पर थीं। इंगलैंड-फ्रांस के जीवन-मरण का संकट उपस्थित था। ऐसे समय में हिन्दुस्तान के बड़े लाट हार्डिंग ने बड़ी हिम्मत करके हिन्दुस्तान से अपनी गोरी और काली फौजें हटायीं और उन्हें योरोप के मोर्चों पर भेजा। साथी देशों की प्राण-रक्षा हुई।······ प्रेमचन्द भी इसी बीच इन्तहाई पस्ती के दौर से गुजरे। शरीर, मन दोनों बिल्कुल टूटा हुआ।[२]

यह तो हुई साहित्यिक व्यक्ति की जीवनी की बात जहाँ तक राजनैतिक व्यक्ति का प्रश्न है उसका तो सम्पूर्ण जीवन देश की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में ही निखरता है बापू का समस्त जीवन इस बात का प्रतीक है। घनश्यामदास बिड़ला द्वारा लिखा हुआ "बापू" के जीवन में पाठक को एक तो तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का पता चलता है दूसरे उन परिस्थितियों में बापू का क्या हाथ रहा यह भी ज्ञात होता है। ऐसे महापुरुषों का समस्त जीवन इन सभी परिस्थितियों से प्रभावित होता है—

"गाँधीजी ने सरकार के साथ कई लड़ाइयाँ लड़ीं और कई मर्तबा सरकार के संसर्ग में आए। इन सभी लड़ाइयों में या संसर्गों में सत्याग्रह की झलक मिलती है, पर मेरा ख्याल है कि १९१४-१८ का योरोपीय महाभारत और उसी जमाने में किया गया चम्पारन सत्याग्रह और वर्तमान योरोपीय महाभारत—ये तीन प्रकरण इनके स्वदेश लौटने के बाद ऐसे हुए हैं कि जिनमें हमें शुद्ध सत्याग्रह का दिग्दर्शन होता है।[३]

इन पंक्तियों से एक तो यह अनुमान होता है कि गांधीजी ने तात्कालीन देश

---

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ले० ब्रजरत्नदास, पृ० २०९
२. प्रेमचन्द कलम का सिपाही, ले० अमृतराय, पृ० १६२
३. बापू, ले० घनश्यामदास बिड़ला, पृ० १०३

की परिस्थितिमों से वाध्य होकर सत्याग्रह किए । दूसरे उनके तपस्वी जीवन का ज्ञान पाठक को होता है फिर भी लेखक का उद्देश्य राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन करना नहीं था । जीवनी लेखक इसी ढंग से वर्णन कर सकता है । जहाँ तक सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का प्रश्न है इन जीवनियों के पढ़ने से पाठक अनुमान लगा सकता है लेकिन इनका कहीं भी स्पष्ट चित्रण हमें नहीं प्राप्त होता । धार्मिक व्यक्तियों की जीवनियों में विशेषतया तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण है फिर उन परिस्थितियों में लेखक ने चरित्र नायक का स्थान निर्धारित करने का प्रयत्न किया है ।

उद्देश्य

जीवनी साहित्य का यह एक महत्वपूर्ण तत्व है । इस तत्त्व में लेखक क्या कहना चाहता है, उसके अमुक पुस्तक लिखने का क्या आशय है, इन सव वातों का उल्लेख होता है, वैसे तो प्रत्येक लेखक जो कुछ भी लिखता है वह किसी-न-किसी उद्देश्य से ही लिखता है । निरुद्देश्य कोई भी रचना नहीं लिखी जाती । जीवनीकार का उद्देश्य भी उसकी रचना में प्रकारान्तर से समाविष्ट हो जाता है ।

कोई भी व्यक्ति जिसने भी अपने समय में जो भी महत्वपूर्ण कार्य किए उन सभी का पूर्णतया ज्ञान हमें उसकी जीवनी पढ़ने से ही मिलती है । यदि वह राजनैतिक व्यक्ति है तो अवश्य ही देश के प्रति उसकी विचारधारा का एवं राजनैतिक परिस्थितियों के वर्णन में उसके सहयोग का आभास हमें उसके जीवन चरित्र से मिले । यदि वह सच्चा देशभक्त है तो वह किस प्रकार आग के अंगारों से जूझता हुआ सोना बनता है और अपने कर्तव्य में सफल होता है—इन सभी वातों का पता उसके जीवन चरित्र से प्रामाणिक रूप से लगता है । लेखक इसीलिए ऐसे महापुरुषों का जीवन जनता के सामने लिखकर रखते हैं कि हम भी उससे कुछ प्रेरणा ग्रहण करें और अपने जीवन को सार्थक वनाए । घनश्यामदास विड़ला ने इसी उद्देश्य से वापू और जमनालाल वजाज के जीवन चरित्र लिखे । विड़ला के इन लोगों के जीवन चरित्र लिखने का यही उद्देश्य था कि जनता को पता चल जाए कि भारत को स्वतन्त्रता किन कठिनाइयों से प्राप्त हुई है और उसकी प्राप्ति में किन-किन महापुरुषों का हाथ रहा है ।

जहाँ तक साहित्यिक जीवनी लिखने के उद्देश्य का प्रश्न है वह भी इसी उद्देश्य से लिखी जाती है कि हिन्दी साहित्य की प्रगति में जो भी व्यक्ति अधिक पुस्तकें लिखकर सहयोग देता है और कोई नई पुस्तक जनता के सम्मुख रखता है जिससे समाज एवं साहित्य है नई चेतना उत्पन्न होती है तो उस व्यक्ति की जीवनी लिखने के लिए लेखकगण आकृष्ट होते हैं । यहाँ मेरे कहने का तात्पर्य यह है दो-चार पुस्तकें लिखकर कोई भी व्यक्ति साहित्य में अपना नाम लिखवा सकता है पर ऐसे व्यक्तियों की जीवनी लिखने से कोई भी लाभ नहीं है । मेरा अभिप्राय तो ऐसे साहित्यिक लोगों की जीवनी लिखने से है जिन्होंने कोई विशेष योग हिन्दी साहित्य

की प्रगति में दिया है जैसे 'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र सर्वप्रथम विस्तृत जीवनी इनकी शिवनन्दन सहाय ने लिखी है 'भूमिका' में अपने उद्देश्य को उन्होंने प्रकट किया है—

> "इस पुस्तक को लिखने का मुख्य उद्देश्य यह है कि मातृभाषा हिन्दी को नीरस एवं सारहीन समझने वाले अंग्रेजी भाषी रसिकजनों की हिन्दी पढ़ने में रुचि जन्मे, और वे लोग सब प्रकार की प्रकृति के अनुसार सब प्रकार के रसों से पूर्ण हरिश्चन्द्र के ग्रन्थों को पढ़कर देखें कि हिन्दी की उन्नति के लिए केवल एक व्यक्ति ने कितना यत्न तथा परिश्रम किया है एवं उसी निष्काम मातृभाषा की सेवा से वह देश-विदेश में कैसा सम्मानित हुआ है और सचेष्ट इसकी ओर अधिक गौरव वृद्धि के निमित्त यत्नवान हों। इसी कारण यह जीवनी अंग्रेजी पुस्तक के ढंग से लिखी गई है।"[1]

इसीलिए महापुरुषों की जीवनियाँ लिखी जाती हैं। जीवन चरित्र लिखने का एक तो यह उद्देश्य है कि हम मनुष्य के बाह्य स्वरूप के साथ-साथ उसके आन्तरिक स्वरूप को भी जान सकते हैं। दूसरी बात यह है कि दुनिया में विशाल स्मारक, भवन, दृढ़तम मन्दिर, चित्र आदि सभी नष्ट हो जाते हैं, केवल अमरग्रन्थ ही रह जाते हैं। किसी भी श्रद्धेय महापुरुष की जीवली इसी अमरत्व की भावना को लेकर ही लिखी जाती है।

किसी भाषा के समग्र साहित्य को देखिए—सभी में मनुष्य तथा उसकी कृति और विचार भरे हैं। इसलिए सुलिखित जीवन चरित्र के पढ़ने में देखा जाता है कि मनुष्य को सबसे अधिक आनन्द मिलता है। कहानियों तथा उपन्यासों में मनगढ़ंत कल्पित चरित्र चित्रण होने से उनसे अधिक मनोरंजन होता है और नाटकों में भी इसी कारण अधिक तमाशाई इकट्ठे होते हैं। इतिहास भी सैंकड़ों मनुष्यों की जीवनियों का संग्रह मात्र है। बड़े-बड़े सत्काव्य आदर्श नायकों के चरित्र ही चित्रित करते हैं जिन्हें लोग बड़े प्रेम से सुनते हैं।

जीवन चरित्र यह भी उपदेश देता है कि मनुष्य क्या हो सकता है और क्या कर सकता है। एक महान व्यक्ति की जीवनी पाठकों के हृदय में उत्साह, आशा, शक्ति और साहस भर देती है, और उन्हें इस आदर्श तक उठने को प्रोत्साहित करती है। साहित्य का इन कारणों से जीवन चरित्र एक विशेष अंग है।[2]

वर्तमानकाल की सर्वश्रेष्ठ जीवनी 'प्रेमचन्द : कलम का सिपाही' भी अमृतराय ने इसी उद्देश्य से लिखी है। उस जीवनी के पढ़ने के पश्चात् पाठक को यह पता चल जाता है कि किस प्रकार इस कलम के सिपाही ने अपने जीवन में कष्टों एवं उलझनों का सामना करते हुए हिन्दी साहित्य की प्रगति की ओर ध्यान रखा है। कलम के

---

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० शिवनन्दन सहाय, भूमिका

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० ब्रजरत्नदास, पृ० २३

सम्मुख किसी भी जीवन को आकर्षित करने वाली एवं सुख देने वाली बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। पाठक को यह अनुभव हो जाता है कि जीवन में परिश्रमी व्यक्ति ही कुछ प्राप्त कर सकता है। अमृतराय ने जिस उद्देश्य से यह जीवनी लिखी है वह इसमें पूर्णतया सफल हुए हैं, बहुत से आने वाले साहित्यिकों को इससे प्रेरणा मिलेगी।

भाषा शैली

शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। जीवन चरित्र लेखक को अपने नायक के काल्पनिक रूप की सृष्टि नहीं करनी होती, उसे तो केवल एक साँचा तैयार करना पड़ता है। यह साँचा शैली के नाम से पुकारा जा सकता है। जीवनी लेखक के पास नायक के सम्बन्ध में लिखित, अलिखित अथवा विश्वस्त सूत्रों से उपलब्ध तथ्यों को संकलित करके ऐसे कौशल से सजाना पड़ता है कि पाठक के मन में वे सीधे घर कर लें।[1] इस प्रकार जीवनी की शैली में कुछ विशेषताएँ एवं गुणों का होना आवश्यक है जिनके होते हुए वह उत्कृष्ट शैली कहला सकती है।

जीवनी शैली में सर्वप्रथम सुसंगठितता का होना आवश्यक है। जीवनीकार को समस्त सामग्री का इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे उसमें अन्विति हो। जीवन की समस्त घटनाएँ एक-दूसरे से बँधी हुई हों। उनमें किसी प्रकार का बिखरापन न हो। इस बात के लिए अनावश्यक बात का निवारण एवं आवश्यक बात का समावेश करना पड़ता है जैसे शिवनन्दन सहाय ने भारतेन्दु के जीवन की प्राप्त सामग्री को क्रमानुसार रक्खा है। किसी भी प्रकार का बिखरापन उसमें दृष्टि-गोचर नहीं होता। यही बात 'गोस्वामी तुलसीदास' में अंकित तुलसी के जीवन चरित्र में भी पायी जाती है। इसी गुण के कारण वह जीवनी लिखने में कुशल माने गए हैं। उन्होंने अपने चरित्र नायकों के जीवन को परिच्छेदों में बाँट लिया है इससे सभी सामग्री अच्छी प्रकार से सुगठित हो गई है।

जीवनी में शैली सम्बन्धी दूसरी विशेषता निरपेक्षता की है। निरपेक्षता से मेरा अभिप्राय यह है कि लेखक अपने चरित्र नायक के गुण-दोषों का निष्पक्ष होकर वर्णन करे। ऐसा न हो कि वह श्रद्धावश गुणों का ही वर्णन करता जाय और दोषों को भूल जाय। श्रद्धा रखने पर उसे अन्ध-भक्त नहीं होना चाहिए। लेखक को अपनी स्वतंत्रता नहीं खोनी चाहिए। कभी-कभी आदर एवं पूज्य भाव के कारण लेखक का विश्लेषण निष्पक्ष न होकर अतिरंजित हो जाता है। कभी-कभी अपनी तुलनात्मक प्रतिभा के कारण वह अपने चरित्र नायक को आवश्यकता से अधिक ऊँचा उठाकर दूसरे का अपमान भी कर देता है। जीवनीकार को इस सम्बन्ध में विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए और अपने नायक का चरित्र यथातथ्य रूप में निष्कपट भाव से वर्णन करना

---

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० ब्रजरत्नदास, पृ० २३

चाहिए। हिन्दी साहित्य में जितनी भी साहित्यिक व्यक्तियों की जीवनियाँ प्राप्त होती हैं उनकी शैली में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है जोकि उनकी शैली को परिपक्व बनाता है।

तीसरा महत्त्वपूर्ण गुण शैली में लेखक की तटस्थता का होना है। जीवन चरित्र का लेखक बिल्कुल तटस्थ रहकर ही चरित्र-चित्रण कर सकेगा।[1] इसलिए जीवनीकार को अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग उचित अनुपात में करना चाहिए। उसकी अपनी धारणा का आधार पर्याप्त सत्य होना चाहिए। जीवनी में सत्य का पुट न होने से वह समाज को प्रभावित करने में असमर्थ रहेगी। वही जीवन चरित्र उच्चकोटि का होगा जिसकी शैली में सन्तुलन होगा एवं लेखक का मस्तिष्क तटस्थ होगा।[2]

चौथी विशेषता सहृदयता की है। जीवनीकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रमा में कलंक है अवश्य किन्तु वह साधारण है। सहानुभूति अन्ध भक्ति से भिन्न है। अन्ध भक्ति दोषों को भी गुण समझती है, सहानुभूति दोष को दोष ही समझती है किन्तु उसके कारण दोष की हँसी नहीं उड़ाई जाती। जीवनीकार छोटे-मोटे दोषों को अर्थात् गुणों के समूह या बाहुल्य में एक दोष इस प्रकार छिपा जाता है जैसा चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक।···दोषों के वर्णन में सहृदयता का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए।[3] इसलिए शैली में लेखक की सहृदयता का होना आवश्यक है।

उपरिलिखित गुणों से युक्त शैली ही जीवनी को प्रभावोत्पादक बना सकती है। इसलिए जीवनी की शैली में इन सभी विशेषताओं का होना आवश्यक है। इन इन गुणों से सम्मिलित जीवन चरित्र ही विशुद्ध जीवन चरित्र कहला सकता है। हैराल्ड निकलसन ने तभी तो जीवन-चरित्र को दो मार्गों में विभाजित किया है। १. शुद्ध जीवन चरित्र, २. अशुद्ध जीवन चरित्र[4] (Pure and Impure Biography)। शुद्ध जीवन चरित्र इन्होंने उसको माना है जिसकी शैली में सभी उपरिलिखित गुण हैं और अशुद्ध जीवन चरित्र तो है ही इससे विपरीत।

जीवनी लेखन कला की सफलता के लिए भाषा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। जीवन चरित्र लिखने में सरल, सुबोध, आकर्षक और रुचिकर भाषा का प्रयोग आवश्यक है। जीवन भर की घटनाओं के समूह को थोड़े में इस प्रकार संगठित और सुसज्जित करके उपस्थित करना आवश्यक है कि भाव में लेशमात्र भी कमी न आने पावे, उसकी भव्यता बढ़ जाय और रूप अधिक स्पष्ट हो जाए। इसीलिए जीवनी लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। जीवनी साहित्य जीवन की घटनाओं का नीरस ऐतिहासिक उल्लेख मात्र नहीं है। और न धक्का देने के लिए केवल मनोदशा का

---

१. समीक्षाशास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १६६

२. हिन्दी में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृष्ठ १३

३. काव्य के रूप, लेखक गुलाबराय, पृष्ठ २३६

४. Development of English Biography by Harold Nicolson.

वैज्ञानिक विश्लेषण है। इसमें साहित्य का माधुर्य अनिवार्य है जो पाठक की उत्सुकता और जिज्ञासा, उसके आनन्द की अनुभूति और मन के आमोद को उत्तरोत्तर बढ़ाता जाय। भाषा इतनी सुबोध हो कि घटनाओं की गुत्थियाँ और नायक के मानसिक विकास तथा मस्तिष्क की क्रिया-प्रतिक्रिया के गूढ़ तत्व सरलता से पाठक को स्पष्ट होते जाएँ। भाषा ऐसा आवरण और परिधान है जो चरित्र को सुसज्जित एवं वास्त- विक रूप देता है और व्यक्तित्व को ठीक रूप में व्यक्त करता है।[1]

इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि भाषा ही लेखक की भावाभिव्यक्ति का साधन है। यदि भाषा शुद्ध परिमार्जित एवं भावानुकूल होगी तभी वह कृति पाठक को प्रभावित कर सकती है। प्रसाद गुण का भाषा में होना अनिवार्य है परन्तु विषया-नुसार एवं आवश्यकतानुसार लेखक आलंकारिक भाषा का प्रयोग भी कर सकता है। यह विशेषता विशेष रूप से शिवनन्दन सहाय में पाई जाती है। जहाँ वह भारतेन्दु की कविता के विषय में लिखते हैं वहाँ उनकी भाषा अलंकारमयी दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त जहाँ उन्होंने एक विस्तृत लेख उनकी 'हिन्दी भाषा और हिन्दी प्रचार' के विषय में लिखा है उसमें इतनी सरसता नहीं। 'कविता' में तो इनकी भाषा में भी माधुर्य और अलंकारों की छटा है।

> "हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य वाटिका के प्रवीण माली थे। इनकी इसी वाटिका में काव्य-नाटक आदि की कैसी-कैसी सुन्दर क्यारियाँ कटी हुई हैं, ललित लेख, प्रबन्ध एवं पुस्तकों के कैसे-कैसे अपूर्व वृक्षों से यह सुशोभित है। उसमें कविता लता कैसे लहरा रही है, अलंकारों के पुष्पों की कैसी छटा छहरा रही है, अर्थ का कैसा पराग झर रहा है, भाव का कैसा सुगन्ध उड़ रहा है, सरसता से कैसा मधु टपक रहा है······सच तो यह है कि इस वाटिका की सैर निःसन्देह आमोद-प्रमोद है। परन्तु इस वाटिका में स्वयं भ्रमण किए बिना किसी को यथार्थ आनन्द नहीं मिलता।"[2]

अतः जीवनीकार की भाषा एवं शैली शुद्ध परिमार्जित, परिनिष्ठित एवं सधी हुई होनी चाहिए। विषय एवं भावानुकूल शैली ही अपना स्थायी प्रभाव लेखक पर डाल सकती है। इसलिए लेखक का भाषा शैली में सिद्धहस्त होना आवश्यक है।

विकास

हिन्दी जीवनी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु युग से पहले जीवनी साहित्य तीन प्रकार का प्राप्त होता है—रासो शैली का जीवनी साहित्य, भक्तों की जीवनियाँ एवं बनारसीदास का अर्धकथा आत्मचरित। रासो काल में जितने भी जीवन चरित्र लिखे गए उनमें से कोई भी ऐसा जीवन चरित्र नहीं जो किसी मानवेतर व्यक्ति का हो। इसी प्रकार भक्तिकाल के चरित्रों में भी सभी

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १३
२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० शिवनन्दन सहाय, पृ० ११४

साधारण व्यक्ति हैं। 'भक्तमाल', 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' या 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' या 'अष्ट सखान की वार्ता' के चरित्र भी साधारण व्यक्तियों के ही हैं। चमत्कारपूर्ण बातें तो उनके व्यक्तित्व में हैं पर उससे वे मानवेतर नहीं हो पाते हैं। उनके अध्ययन से केवल यही ज्ञात होता है कि वे भक्त थे जिन पर भगवान् की असीम कृपा थी। 'अर्ध कथानक' का लेखक बनारसीदास भी साधारण व्यक्ति है। 'पृथ्वीराज रासो' एवं 'अर्ध कथानक' के सिवाय कोई चरित्र जीवनी लिखने के उद्देश्य से नहीं लिखा गया था। भक्तों की भक्ति और उनके चमत्कारपूर्ण कार्यों के वर्णन में भी प्रसंगवश जीवन वृत्तान्त लिखे गए। अतः १००० ई० से १९०० ई० के पूर्वार्द्ध के पहले तक के हिन्दी जीवनी साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस काल का जीवनी साहित्य उन लक्षणों अथवा तत्वों से शून्य था जिनके आधार पर किसी साहित्य को हम जीवनी साहित्य कह सकें। 'भक्तमाल' तथा '८४ वैष्णवन की वार्ता' आदि की जीवनियाँ व्यक्तित्व का पूरा चित्र उतना नहीं प्रस्तुत करतीं जितना वे भक्ति का प्रचार करती हैं। सबसे महत्वपूर्ण कमी इस काल तक के जीवनी साहित्य में वृत्तान्त की प्रामाणिकता में अभाव पाया जाता है। सभी वृत्तान्त सुने सुनाए हैं सिवाय पृथ्वीराज रासो के। इस काल में जीवनी साहित्य के प्रफुल्लित न होने के कारण तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, देश की परिस्थितियाँ हैं; इन्हीं के कारण हिन्दी जीवनी साहित्य का वैज्ञानिक विकास न हो सका। केवल 'अर्ध कथानक' में जीवनी साहित्य की वैज्ञानिक रूपरेखा को बहुत कुछ अंशों में पूरा किया है। लेकिन फिर भी आधुनिक युग में ही जीवनी साहित्य पर्याप्त रूप से लिखा गया है। इसका आरम्भ भारतेन्दु युग से होता है।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग के सर्वप्रथम जीवनी लेखक भारतेन्दु स्वयं ही हैं। यद्यपि इनके द्वारा लिखे हुए जीवन चरित्र इस श्रेणी के नहीं जिनमें जीवन का सम्पूर्ण चित्र खींचा गया हो प्रत्युत फिर भी जीवनी लिखने का यह नवीन प्रयास था। 'चरितावली' में इन्होंने सोलह जीवन चरित्र लिखे हैं जो कि निबन्धों के रूप में हैं। कालिदास, रामानुजाचार्य, जयदेव, सूरदास, वल्लभाचार्य जैसे विद्वानों के जीवन चरित्रों के अतिरिक्त लार्डम्यो एवं महाराजाधिराज जार के जीवन चरित्र भी लिखे हैं। इनके अध्ययन से नायक के चरित्र की पूर्ण जानकारी पाठक को नहीं हो सकती—ये तो छोटे-छोटे निबन्ध हैं जिनमें इनके जीवन की दो-एक घटनाओं का वर्णन है। सूरदास की जीवनी लिखने का इन्होंने प्रयत्न किया था परन्तु ये उसमें भी सफल नहीं हो सके।

'बादशाह दर्पण' इनकी दूसरी जीवन चरित सम्बन्धी पुस्तक है। इसमें कासिम द्वारा जीते गए सिन्ध देश से लेकर मुगल साम्राज्य के अन्तिम बादशाह तक का वर्णन है। इसमें जीवनी साहित्य के तत्व का अभाव है। 'पंच पवित्रात्मा' में

मुहम्मद बीबी फातिमा एवं इमाम हुसैन की जीवनियां हैं। इनके अतिरिक्त 'उदय-पुरोद्य' और 'बूंदी का राजवंश' भी भारतेन्दु द्वारा लिखे गए ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों में केवल वंश-परम्परा, राज्यारोहण एवं विजय पराजय का, इसके साथ ही मृत्यु का वर्णन है।

हिन्दी जीवनी साहित्य के तत्वों की ओर दृष्टिपात करते हुए यदि भारतेन्दु के जीवनी साहित्य का विश्लेषण किया जाय तो इसमें कई त्रुटियां दृष्टिगोचर होती हैं। जहां तक चरित्र चित्रण का प्रश्न है, इन्होंने किसी भी अपने चरित नायक का विस्तृत रूप से वर्णन नहीं किया उनके जीवन की दो-चार घटनाओं को लेकर इन्होंने एक निबन्ध-सा लिखा है। इनके चरित्र चित्रण में वह तटस्थता नहीं जो कि एक जीवनी लेखक की जीवनी में होनी चाहिए। फिर भी 'पंच पवित्रात्मा' में इतनी कुछ तटस्थता दृष्टिगोचर होती है। जहां तक घटनाओं और वृत्तान्तों की छानबीन का प्रश्न है वह भी नकारात्मक है। कुछ ही लेखों में इसका प्रयत्न किया है। इन जीवन चरित सम्बन्धी निबन्धों को लिखने का उद्देश्य लेखक ने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया। इनके अध्ययन से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि लेखक का उद्देश्य इन चरित्रों को लिखने का यह था कि हिन्दी साहित्य की उन्नति हो, यह गद्य की इस विधा से भी वंचित न होने पाए दूसरे कुछ महान् व्यक्तियों के चरित्रों का जनता को परिचय करवाना था।

जहां तक इनकी भाषा शैली का प्रश्न है भारतेन्दु के जीवन चरित्र सम्बन्धी लेखों में शुद्ध एवं साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा प्रसाद गुण युक्त है। भावानुकूल एवं विषयानुकूल भाषा का प्रयोग इन्होंने किया है। जीवनी साहित्य का भाषा से घनिष्ट सम्बन्ध है। भारतेन्दु के जीवन चरित्र सम्बन्धी लेखों में साहित्यिक भाषा का रोचक प्रयोग है। भाषा सरल तथा सुन्दर है। भावानुकूल भाषा का प्रयोग कर चरित्र चित्रण में सजीवता उत्पन्न करने की क्षमता भारतेन्दु में यथेष्ट रूप से थी मानव हृदय के व्यापक भावों, हर्ष, शोक, क्षोभ आदि को व्यक्त करने में सफल थे।[1]

१८८३ ई० में श्री रमाशंकर व्यास द्वारा लिखी हुई 'नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन चरित्र' पुस्तक प्राप्त होती है। यह पुस्तक २० पृष्ठों में लिखी गई है। इसमें नेपोलियन के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। इस जीवनी में भी वही कमी है जो कि भारतेन्दु के जीवन चरितों में पायी जाती है। नेपोलियन के चरित्र का पूर्णतया विश्लेषण इसमें नहीं किया गया है। लेखक जो कुछ कहना चाहता है वह उसमें निष्कर्ष रूप में ही कहा है। कहीं भी उसके व्यक्तित्व का स्पष्ट विवेचन नहीं प्राप्त होता। भाषा-शैली भी जीवनी साहित्य के अनुकूल नहीं है। १८८३ ई० में ही काशीनाथ खत्री द्वारा लिखित पुस्तक 'भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के जीवन चरित्र' प्राप्त होती है। जीवनी साहित्य की दृष्टि से इस पुस्तक का भी कोई विशेष

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १२४

महत्व नहीं है। इसके पश्चात १८८८ ई० में जगन्नाथ द्वारा लिखित 'महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र' प्राप्त होता है। इस पुस्तक में स्वामी जी के जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाओं का वर्णन करते हुए उनके जीवन पर प्रकाश डाला है।

१८९३ ई० में सर्वप्रथम किसी साहित्यिक व्यक्ति पर लिखी हुई जीवनी हमें कार्त्तिक प्रसाद खत्री द्वारा प्राप्त होती है। इनकी जीवनी का नाम 'मीराबाई का जीवन चरित्र' है। इस पुस्तक में लेखक ने मीराबाई के जीवन पर लिखने का प्रयास किया है। जीवन चरित लिखने में लेखक काफी सीमा तक सफल हुआ है। जिन भी जीवन के पक्षों को लेकर लेखक ने मीरा के व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है वह इसका प्रयास अवर्णनीय है। लेकिन फिर भी इसमें एक त्रुटि है वह यह कि यह जीवनी भी मीराबाई के सम्पूर्ण चरित्र का ज्ञान पाठक को नहीं कराती। इसमें लेखक की **भाषा** परिमार्जित है। वर्णन शैली में भी रोचकता है। इन्हीं द्वारा लिखी हुई शिवाजी पर जीवनी हमें १८९० ई० में प्राप्त होती है। इसमें खत्रीजी ने शिवाजी के जीवन का वर्णन स्पष्ट एवं सत्य रूप से किया है। समय, स्थान एवं घटनाओं की वास्तविकता पर लेखक ने पूरा ध्यान दिया है। इसमें भी पूर्ण जीवन का वर्णन नहीं है। १८९३ ई० में हमें कई राजनैतिक पुरुषों के जीवन चरित प्राप्त होते हैं। प्रेमचन्द्र द्वारा लिखा हुआ 'महाराजा विक्रमादित्य का जीवन चरित्र' एवं 'महाराजा छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र,' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त १८९५ ई० में राधाकृष्ण दास द्वारा लिखित 'कविवर बिहारीलाल' पुस्तक प्राप्त होती है। इस पुस्तक में भी अनेक त्रुटियां हैं इसलिए इसको उच्च जीवनी साहित्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। 'श्री नागरीदास का जीवन चरित' भी इन्होंने लिखा है। इसके अतिरिक्त 'सूरदास' एवं भारतेन्दु के जीवन विषयक लेख भी इन्होंने लिखे। इन सभी जीवन चरितों में किसी भी चरित्र नायक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन नहीं है। ये तो केवल जीवन चरित्र सम्बन्धी निबन्ध हैं। इनको जीवन चरित्र लिखने का प्रारम्भिक प्रयास कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त बालमुकुन्द गुप्त का १८९६ ई० में 'हरिदास गुरयानी' १८९७ ई० में गोकुलनाथ शर्मा द्वारा लिखित 'श्री देवी सहाय चरित्र' एवं बलभद्र मिश्र का 'स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज का जीवन चरित्र' प्राप्त होते हैं।

भारतेन्दु युग में अन्य भाषाओं के जीवन ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद भी प्राप्त होता है। इससे यह पता चलता है कि इस काल में जीवनी साहित्य की ओर न केवल रुचि और आकर्षण बढ़ा बल्कि सजग चेतना के साथ साहित्य के इस क्षेत्र में उन्नति और विकास की ओर भी ध्यान दिया गया। १८९९ ई० में स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, परमहंस शिवनारायण स्वामीजी का जीवन चरित्र, एवं 'क्रिस्टोफर कोलम्बस' जीवनियां प्राप्त होती हैं। स्वामी विरजानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र का अनुवाद जगदम्बा प्रसाद ने सन् १८९९ ई० में उर्दू से हिन्दी में किया। इसमें

मूल लेखक पंडित लेखराम हैं। परमहंस शिवनारायण स्वामीजी का जीवन चरित्र मोहनी मोहन चटर्जी ने बंगला से हिन्दी में अनुवाद करके १८९५ ई० में प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त 'क्रस्टोफर कोलम्बस' का अनुवाद गोपालद देवगण शर्मा ने १८९९ ई० में किया।

भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध जीवनीकारों में देवी प्रसाद मुंसिफ का नाम उल्लेखनीय है। इनका इतिहास का अच्छा ज्ञान था इसलिए ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधार पर इन्होंने अनेक महापुरुषों की जीवनियां लिखी हैं। महाराज मानसिंह कछवाला वाले अमीर का जीवन चरित्र (१८८९ ई०), राजा मालदेव का चित्र और जीवनी चरित्र, (१८८९ ई०) अकबर बादशाह और राजा बीरबल का जीवन चरित्र (१८९३) ई०, श्री रणधीर महाराजा प्रतापसिंह जी का जीवन चरित्र (१८९३ ई०), राणा भीम रत्नसिंह (१८९३ ई०), यदुपति महाराजा उदयसिंहजी (१८९३ ई०), मीराबाई का जीवन चरित्र (१८९८ ई०), श्री जयवन्त सिंह सिवोत का जीवन चरित्र १८९८ ई० में प्राप्त होते हैं। ये सभी प्रामाणिक जीवनियां हैं। भाषा की दृष्टि से भी ये अपना अद्वितीय स्थान रखती हैं।

विदेशी मिशनरियों ने भी जीवनी साहित्य की प्रगति में इस युग में सहयोग दिया है। यह ठीक है कि इन मिशनरियों का उद्देश्य अपने मजहब का प्रचार करना था, साहित्य या साहित्य के किसी अंग का विकास करना इनका उद्देश्य नहीं था फिर भी इनके द्वारा प्रकाशित हमें कुछ जीवनियां प्राप्त होती हैं। सन् १८९६ ई० में 'महाराणी विक्टोरिया का वृत्तान्त' पुस्तक क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। १८९६ ई० में 'सिकन्दर महान का वृत्तान्त' भी इंडियन क्रिश्चियन प्रेस, इलाहाबाद से ही प्रकाशित करवाया। इन पुस्तकों में भाषा का स्तर बहुत नीचा है, इसे बाजारू साहित्यिक भाषा की श्रेणी में रक्खा जा सकता है। यह भाषा भारतेन्दु युग के साहित्यिक स्तर से बहुत नीची है।

भारतेन्दु युग के जीवनी साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रायः सभी जीवनियों में जीवनी की स्थूल घटनाओं का वर्णन मात्र कर दिया है। जीवनी साहित्य इन्हें नहीं कहा जा सकता। इन्हें नायक के जीवन सम्बन्धी वर्णनात्मक लेख कहना अधिक उपयुक्त है।

द्विवेदी युग

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के साथ ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रादुर्भाव हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य में प्रवेश करते ही हिन्दी भाषा को शुद्ध परिमार्जित एवं उसका परिपक्व रूप स्थापित किया। भाषा के व्याकरण-शैली और वाक्य-विन्यासों पर ध्यान देते हुए उन्होंने साहित्यिक समालोचना, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति और जीवन चरित्र आदि विषयों पर गम्भीरता, तल्लीनता तथा परिश्रम के साथ लिखना अपना कर्त्तव्य

निर्धारित कर लिया था। द्विवेदीजी ने जीवनी साहित्य के विषय में जो कुछ भी लिखा वह 'सरस्वती' पत्रिका में प्राय: प्रकाशित हुआ। ये सभी जीवन चरित्र लेख के रूप में प्रकाशित हुए इनका संकलन पुस्तक रूप में हो गया। जीवन चरित्र सम्बन्धी इनकी पाँच पुस्तकें हैं। 'प्राचीन पंडित और कवि' पुस्तक में आठ प्राचीन विद्वानों के जीवन सम्बन्धी लेख हैं। इसमें सुखदेव मिश्र एवं लोलिंब राज के जीवन के विषय में लिखा है। द्विवेदीजी प्रत्येक बात अच्छी प्रकार से छानबीन करने के पश्चात् कहते थे। इस पुस्तक की भूमिका में इन्होंने सुखदेव मिश्र की चर्चा करते हुए लिखा है 'इसके सिवाय उनके चरित्र में विलक्षणतापूर्ण कुछ अलौकिक बातें भी हैं जिनसे विशेष मनोरंजन हो सकता है।'[1] इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में विशेष रूप से नायक की कविताओं का उल्लेख मात्र है।

'सुकवि संकीर्त्तन' में सात जीवनियां १५० पृष्ठों में लिखी गई हैं। इसमें महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद, बंगकवि माइकेल मधुसूदन और कविवर रवन्द्रनाथ ठाकुर जैसे कवियों की जीवनियां हैं। इनमें द्विवेदीजी ने इनके कवि जीवन को ही विशेष रूप से लिया है, जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाएँ अनायास ही आ गई हैं।

'चरित चर्चा' में १२ व्यक्तियों के जीवन चरित्र हैं जिनमें 'रामकृष्ण परमहंस', 'सीताराम शरण भगवान प्रसाद', 'बाबू शिशिर कुमार घोष', प्रसिद्ध नायक 'मौला बक्श' आदि विद्वान हैं। इन सभी जीवनियों में द्विवेदीजी ने नायक के कार्यों की प्रशंसा की है। ये सभी जीवनियां उन्होंने उपदेशात्मक दृष्टिकोण से लिखी हैं जैसाकि उन्होंने पुस्तक की भूमिका में भी स्वयं कहा है— "इस चरित माला के आधार सत्पुरुषों में से दो एक को छोड़कर बाकी के सभी आधुनिक कहे जा सकते हैं इन सभी के चरित्रों में अनेक विशेषताएँ हैं वे सभी गेय हैं अनुकरणीय हैं।"[2]

'वालेस का जीवन चरित्र' अनूदित जीवनी ग्रन्थ लिखकर द्विवेदीजी ने जीवनी साहित्य को उन्नतिशील बनाने का प्रशंसात्मक कार्य किया है। वालेस का जीवन देश-प्रेम एवं त्याग से सम्पन्न है। इसी उपदेशात्मक दृष्टिकोण को सम्मुख रखते ही इन्होंने बंगला से हिन्दी में अनुवाद किया।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि द्विवेदीजी ने सभी प्रकार के व्यक्तियों के जीवन चरित्र लिखे। कवि, लेखक, विद्वान और वक्ता, सम्पादक, राजनीतिज्ञ, बादशाह सुल्तान और अमीर एवं नूतन पथ-प्रदर्शक सभी प्रकार के जीवन चरित्र लिखे हैं। इन्होंने अपने जीवन-चरित्र उपदेश के लिए, चरित्र निर्माण के लिए, यशस्वी तथा महान् व्यक्तियों की उपादेयता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए, हिन्दी पाठकों को देश के इतिहास से परिचित कराने के लिए,

---

१. प्राचीन पंडित और कवि, पृ० ७, द्वितीय आवृत्ति, ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

२. चरित चर्चा, ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० २

समाज की बुराइयों से लोगों को परिचित कराने के लिए और हिन्दी लेखकों को हिन्दी सेवा के लिए प्रेरणा देने के लिए तथा अन्य ऐसे ही उद्देश्यों को ध्यान में रखकर जीवनियाँ लिखी थीं।[१] कई पुस्तकों में द्विवेदीजी ने अपने उद्देश्य को स्वयं लिखा है। 'चरित चर्चा' की भूमिका में लिखते हैं—

"विद्वानों और महात्माओं के चरित से कुछ न कुछ अच्छी शिक्षा अवश्य मिलती है और समय ऐसी शिक्षा के प्रभाव को मलिन या कम नहीं कर सकता—इस चरित संग्रह से यदि पाठक का घड़ी दो घड़ी मनोरंजन ही हो सका तो इसके प्रकाशन का प्रयास सफल हो जाएगा।"[१] उनके समस्त जीवनी लेख सन् १९०४ से १९३८ के बीच लिखे गए हैं।

बालमुकुन्द गुप्त

भारतेन्दु और द्विवेदी युग के संधिस्थल पर बालमुकुन्द गुप्त हुए हैं। इनके द्वारा लिखे हुए १७ जीवन चरित्र सम्बन्धी लेख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। प्रतापनारायण मिश्र पर लिखा हुआ इनका जीवन चरित्र लेख १९०७ सन् में प्राप्त होता है। गुप्तजी ने प्रतापनारायण मिश्रजी का जीवन उनकी 'ब्राह्मण पत्रिको' में लिखी स्वलिखित जीवनी के आधार पर लिखा है। इसमें गुप्तजी ने उनके जीवन में यद्यपि विस्तारपूर्वक घटनाओं का वर्णन नहीं कर सके प्रत्युत्त फिर भी इनकी शैली उत्तम है। अन्य जीवन चरित्रों में देवकीनन्दन तिवारी 'अम्बिकादत्त व्यास', 'पंडित देवीसहाय', 'बाबूराम दीन,' 'पंडित गौरी दत्त', 'पंडित माधवप्रसाद मिश्र,' 'मुंशी देवी प्रसाद', 'योगेन्द्रचन्द्रवसु मैक्समूलर', 'अकबर बादशाह' एवं 'शेखसादी' हैं। शेखसादी के जीवन चरित्र लिखने से पहले यह लिखते हैं—

> "कुछ ऐसे लोग हैं कि जो जीते हैं पर लोग नहीं जानते कि वह जीते हैं या मर गए। कुछ ऐसे हैं कि जो मरकर मर गए और कुछ जी कर जीते हैं। पर कुछ ऐसे भी हैं कि सैंकड़ों साल हुए मर गए, भूमि उनकी हड्डियों को कबर समेत चाट गई तथापि वह जीते हैं। फारिस के मुसलमान कवियों में शेखसादी भी वैसे ही लोगों में से हैं।"[२]

इस उक्ति से इनके जीवन चरित्र लिखने का उद्देश्य एवं उत्कृष्ट भाषा शैली के प्रयोग का अनुमान हो जाता है। गुप्तजी के ये सभी जीवन चरित सम्बन्धी निबन्ध सन् १९०० से १९०७ ई० तक लिखे गए। ये सभी 'भारत मित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी ने भी जीवन की कुछ घटनाओं को आधार मान कर ही जीवनी साहित्य लिखा है लेकिन इनमें वैज्ञानिकता एवं सत्यता का पूर्ण रूप से ध्यान रक्खा है।

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १४१

२. चरित चर्चा, प्रथम संस्करण, पृ० २

३. गुप्त निबन्धावली, पृ० ६६, ले० बालमुकुन्द गुप्त

इसके अतिरिक्त स्व० बाबू जमनादास की 'संजीवनी चरित्र' १६०० ई० में, रामविलास सारढ़ा द्वारा लिखित 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन महर्षि' १६०१ ई० में, पूर्ण कवि द्वारा लिखित 'विक्टोरिया चरितानंद', लज्जा राम शर्मा का 'विक्टोरिया का चरित्र' १६०२ ई० में गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का 'कर्नल जेम्सटाड', राजाराम का 'स्वामी शंकराचार्य', लाला काशीनाथ खत्री का 'भारतवर्ष की विख्यात नारियों के चरित्र,' बलदेव प्रसाद मिश्र का 'पृथ्वीराज चौहान' प्रकाशित हुए। इनमें राजाराम द्वारा लिखित स्वामी शकराचार्य का जीवन वृत्तान्त उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त रामविलास सारढ़ा ने महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र भी 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन महर्षि' धार्मिक जीवन चरित्रों की श्रेणी में उल्लेखनीय पुस्तक है। इसमें स्वामीजी के जीवन का वर्णन अत्यन्त रोचक एवं आकर्षक है।

सन् १६०३ में देवीप्रसाद का 'महाराणा प्रतापसिंह' माधवप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'स्वामी विशुद्धानन्द', क्षेत्रपाल शर्मा का 'डॉ० हरनामसिंह' एवं लज्जाराम मेहता का 'अमीर अब्दुर्रहमान खां' जीवनियां प्रकाशित हुई। इनमें देवीप्रसाद द्वारा लिखित महाराणाप्रतापसिंह की जीवनी अधिक प्रामाणिक आधारों को लेकर लिखी गई है। तत्कालीन इतिहास का यह पाठक को अच्छा दिग्दर्शन करवाती हैं।

सन् १६०४ ई० में कन्हैयालाल शास्त्री द्वारा लिखित 'श्री वल्लभाचार्य दिग्विजय,' गंगाप्रसाद गुप्त की 'रानी भवानी', दयाराम द्वारा लिखित 'दयानन्द चरितामृत', देवीप्रसाद का 'राणा संग्रामसिंह', विज्ञानन्द द्वारा लिखित 'रामकृष्ण परमहंस और उनके उपदेश', कात्तिक प्रसाद द्वारा लिखित 'अहिल्याबाई का जीवन चरित्र,' सखाराम गणेश का 'आनन्दीबाई', विश्वेश्वरानन्द का 'महिला महत्व', गोकर्णसिंह की 'श्रीयुत सप्तम एडवर्ड की संक्षिप्त जीवनी', सुन्दरलाल शर्मा द्वारा लिखित 'विश्वनाथ प्रसाद पाठक, एवं परमानन्द द्वारा लिखित 'पतिव्रता स्त्रियों का जीवन चरित्र' प्रकाशित हुए। इन प्राप्त जीवनियों में गोकर्णसिंह की सप्तम एडवर्ड पर लिखी हुई जीवनी का विशेष महत्व है क्योंकि यह विदेशी शासक के जीवन पर लिखने का प्रयास है। दयाराम ने स्वामी दयानन्द का जीवन भी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिखा है। इस जीवनी का धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व है। श्रद्धा का अतिरेक होने से जीवनी साहित्य के सिद्धांतों का लेखक ने पूर्णरूप से प्रयोग नहीं किया है।

शिवनन्दन सहाय

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम एवं सफल साहित्यिक जीवनी लेखक शिवनन्दन सहाय हैं। जीवनी लेखकों में इनका नाम सर्वमान्य एवं उल्लेखनीय है। सत्य तो यह है कि जीवनी लेखन में वे मार्गदर्शक हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गोस्वामी तुलसीदास, बाबू साहिब प्रसादसिंह की जीवनी चैतन्य महाप्रभु एवं मीराबाई की जीवनियां इनकी अमर देन है।

'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' नामक जीवनी

शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' जीवनी सन् १९०५ में पटना—'खंग विलास' प्रेस, वांकीपुर से प्रकाशित हुई। इस समस्त जीवनी को इन्होंने सुसंगठित एवं संक्षिप्त रूप देने के लिए परिच्छेदों में विभाजित किया है। इसके अष्ट-विंश परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में लेखक ने भारतेन्दु के 'वंश परिचय' का वर्णन किया है जिसमें अमीचन्द को भारतेन्दु का पूर्वज मानते हुए इनके निवास स्थान की प्रामाणिकता के विषय में 'इण्डियन क्रोनिकल मैगजीन', रमाशंकर व्यास और राधाकृष्णदास के मत को स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त सेठ अमीचन्द के वर्णन में अनेक आंग्ल भाषा की ऐतिहासिक पुस्तकों को आधार माना है।

द्वितीय परिच्छेद में 'बाल्यावस्था' का वर्णन है। इसमें बचपन से ही इनकी कुशाग्र बुद्धि का परिचय इन्होंने पाठक से करवा दिया है। तृतीय परिच्छेद में इनकी 'यात्रा' का वर्णन है। जिन-जिन देशों एवं नगरों में ये घूमे उन सभी स्थानों का वर्णन प्रमाण-युक्त लेखक ने किया है।

चतुर्थ परिच्छेद में इन्होंने जो भी लोकहित कार्य किए उन सभी का उल्लेख है। लोकहित कार्य में लेखक ने चौखम्भा स्कूल, समाचार पत्रों में—बनारस अखबार सुधाकर, पत्र, कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, बालबोधिनी काशी पत्रिका, आर्य-मित्र, मित्र विलास, भारत मित्र एवं हिन्दी प्रदीप पत्रिकाओं के जन्म के प्रधान कारण भारतेन्दु को बतलाते हुए लेखक ने इनके पूर्ण सहयोग का वर्णन किया है। इसके पश्चात् लोगों के हित के लिए जो इन्होंने सभाएं—'कविता वर्द्धिनी सभा' सं० १९२७ में, १८७३ में 'पेनिंग रीडिंग क्लब' एवं श्रावण शुक्ल १३ बुधवार १९३० (१८७३ ई०) को इन्होंने 'तदीय समाज' जो स्थापित किया था इन सभी का वर्णन 'कवि समाज' शीर्षक में है। इसके अतिरिक्त वैश्य लोगों के हित के लिए १८७४ ई० में 'वैश्व हितैषिणी' सभा जो इन्होंने स्थापित की थी उन सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इनके अतिरिक्त भारतेन्दु की स्थापित अन्य सभाएं अनाथ रक्षिणी सभा, काशी सार्व-जनिक सभा, यंग मैन्स असोसियेशन एवं हिन्दी डिबेटिंग क्लब का भी इसमें उल्लेख है। अन्य देशहित कार्य भी इन्होंने किए जैसे १८६८ ई० में 'होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय' की स्थापना जो इन्होंने की उन सभी का उल्लेख है।

'पंचम परिच्छेद' हिन्दी भाषा तथा 'हिन्दी अक्षर' नाम से है। इसमें लेखक ने हिन्दी भाषा एवं हिन्दी वर्णमाला के विषय में लिखा है। इसको लिखने का लेखक का विशेष उद्देश्य था जैसा कि उसने भूमिका में स्पष्ट किया है—

"इसमें एक परिच्छेद 'हिन्दी भाषा' और 'हिन्दी वर्णमाला' के विषय में लिखा गया है। इसको हमने निज प्रिय पुत्र बाबू ब्रजनन्दन सहाय वकील के अनुरोध से लिखा है। निःसन्देह यह परिच्छेद बहुतेरों के लिए उपयोगी होगा। यह विषय अद्या-वधि कदाचित् किसी पुस्तक में सन्निवेशित नहीं हुआ है। इस विषय का लेख

कभी किसी-किसी पत्र में देखने में आया है सही । यह विषय इस पुस्तक में इस ाय से सन्निवेशित किया गया है कि हिन्दी रसिकों को इस विषय में आगे अधिक वान करने का उत्साह होगा । इसमें कतिपय अंग्रेजी पुस्तकों तथा लेखों से ता ली गई है ।"[1]

षष्ठ परिच्छेद में भारतेन्दु की कविता के समस्त गुणों का वर्णन किया है—

"विषय और प्रबन्ध की सत्यता, सम्पादन, भाव की गम्भीरता, भाषा की ता और शब्द-विन्यास की निपुणता का प्रदर्शन ही प्रकृति कवि के मुख्य गुण हैं। कवि की कविता इन गुणों से भूषित हो वही उत्तम कवि कहलाने का अधिकारी विचारपूर्वक देखने से हरिश्चन्द्र की कविता इन गुणों से भूषित पाई जाती है।··· ा मानों इनकी आज्ञाकारिणी घर की लौंडी थी। कठपुतली के समान जिधर इच्छा है उधर ही उसे नचाया है ।"[2]

सप्तम परिच्छेद के आरम्भ में ही लेखक ने इसके विषय को स्पष्ट किया है—

"काव्य क्यारी की साधारण छवि दिखलाने के अनन्तर इस परिच्छेद में उसके मनोहर तरुवर तथा लतादि के सौंदर्य दिखलाने अर्थात् हरिश्चन्द्र कृत काव्य ग्रंथों कुछ विवरण लिखने की चेष्टा की जाती है किन्तु अवकाशाभाव से उन सबकी ालोचना सविस्तार नहीं हो सकती । कविता रसिकजन स्वयं पुस्तकों को देखकर ा आनन्द उठा सकेंगे, केवल नमूने की भाँति जहाँ तहाँ पूर्ववत् उनमें से कविता का ल्लेख किया जाएगा ।"[3]

अष्टम परिच्छेद में नाटक, नवम परिच्छेद में धर्मग्रन्थ एवं दशम परिच्छेद में नकी पुस्तकों का जो कि इतिहास सम्बन्धी हैं उनका उल्लेख है ।

एकादश परिच्छेद में इनके परिहास एवं व्यंग्य सम्बन्धी लेखों का वर्णन है । ादश परिच्छेद में विश्लेषण भी लेखक ने स्पष्ट रूप से किया है । इस प्रकार शैली म्बन्धी सभी गुण—सत्यता, वास्तविकता, रोचकता, वैज्ञानिकता एवं सुसंगठितता नकी जीवनी में पाए जाते हैं । हिन्दी साहित्य की यह प्रथम जीवनी है जोकि एक ाहित्यिक व्यक्ति के विषय में विस्तार रूप से प्रकाश डालती है । साहित्यिक लेखक होने से इसका और ही महत्व है । लेखक ने अन्य लोगों में इसकी प्रसिद्धि हो इसलिए स्थान-स्थान पर अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग किया है । भाषा भावानुकूल एवं विषयानुकूल है ।

'गोस्वामी तुलसीदास' शीर्षक जीवनी

शिवनन्दन सहाय की यह दूसरी महत्वपूर्ण जीवनी है। इसका प्रकाशन काल

---

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० शिवनन्दन सहाय, 'भूमिका'

२. वही, पृ० ११५

३. वही, पृ० १३७

१९१६ ई० है। इस पुस्तक के दो खंड हैं। पहले में बड़े विस्तार से सत्रह परिच्छेदों में तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डाला है। इन परिच्छेदों के शीर्षक तुलसी के जीवन के निरूपित विभिन्न पक्षों को स्पष्टतः द्योतित करते हैं शीर्षक हैं - जन्मकाल और जन्मस्थान, जाति और जनक जननी, बाल्यावस्था, विवाह, राजापुरवास, श्री रामदर्शन, श्री हनुमानजी विषयक दो एक अन्य बातें, काशी वास वृत्तांत, दिल्ली गमन, व्रजगमन, चित्रकूट तथा अवधवास, मित्र और सम्मान, बंधु और वंशज, भ्रमण स्वभाव तथा स्वर्ग-पयान। इस जीवनी में लेखक ने जन श्रुतियों के महत्व को बहुत समझा है इसीलिए वह सजीव व्यक्तित्व के निर्माण में सफल हुए हैं। दूसरी ओर, अंतस्साक्ष्य से उपलब्ध तथ्य विशेष में जनश्रुति की सहायता से प्राण संचार कर दिया है। यही कारण है कि इस पुस्तक का जीवनी खंड भक्तमाल प्रकार का न होकर वास्तविक जीवनी की कोटि में परिगणनीय है।

इस पुस्तक के द्वितीय खंड में तुलसीदास की कृतियों के साहित्यिक महत्व पर साधारणत. पृथक कृतियों को ध्यान में रखते हुए तथा समवेत रूप से भी विचार किया गया है। शिवनन्दन सहाय ने उन सभी प्राचीन भक्तचरित लेखकों तथा समसामयिक विद्वानों एवं टीकाकारों आदि के मत मतांतरों का यथास्थान उल्लेख कर अपने ग्रन्थ को प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है, जिन्होंने सविस्तार या संक्षेप्तः पुस्तकों या पत्र पत्रिकाओं में तुलसीदास के जीवन या साहित्य पर लिखा था। जिनमें भक्तमाल, प्रियादासकृत भक्तमाल की टीका, वेणीमाधवकृत मूल गोसाई चरित, शिवसिंह सरोज इंपीरियल गजेटियर, राधाचरण गोस्वामी कृत नव भक्तमाल आदि। गोस्वामी तुलसीदास पर लिखी हुई यह सर्वप्रथम जीवनी है जिसमें इतना विशद वर्णन गोस्वामीजी का प्राप्त होता है। माताप्रसाद गुप्त ने इस ग्रन्थ की उपादेयता के विषय में कहा है—"ग्रन्थ दो दृष्यों से उपादेय है : एक तो उसके पहले कवि के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया था, इस ग्रन्थ में उस पर गम्भीरतापूर्वक किया विचार गया है और दूसरे 'मानस' में अपने पूर्ववती संस्कृत ग्रन्थों की जो प्रतिच्छाया मिलती है उसकी ओर स्पष्ट रूप से पहले पहल इसी ग्रन्थ में तुलसीदास के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।[1] इस जीवनी में कहीं-कहीं लेखक ने तुलसीदास की तुलना शेक्सपियर से की है। श्रद्धावश तुलसी को शेक्सपीयर से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। भाषा एवं शैली की दृष्टि से जीवनी सर्वश्रेष्ठ है।

इनके पश्चात् १९०५ ई० में उमापति दत्त शर्मा की नेपोलियन बोनापार्ट की जीवनी भी प्राप्त होती है। सन् १९०६ में गंगाप्रसाद गुप्त की 'दादा भाई नौरोजी', देवराज की 'सेमीरामिसे', मु० देवीप्रसाद की 'रसानामृत भाग १' जीवनियाँ लिखी गई जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्व है। इसके पश्चात् १९०७ ई० में चिमनलाल वैश्य द्वारा लिखित स्वामी दयानन्द, ठाकुरप्रसाद खत्री द्वारा 'हैदरअली', महादेव भट्ट की 'लाजपत महिमा', सतीशचन्द्र मिश्र द्वारा 'रणधीर महाराणा प्रतापसिंह जी',

---

१. तुलसीदास ले० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं० भूमिका, पृ० १२

र कन्हैया जू द्वारा 'बुन्देलखण्ड केशरी', वामनाचार्य गिरी द्वारा वीरेन्द्र बाजीराव, तसिंह पन्नालाल द्वारा 'रमणीरत्नमाला', ब्रजनन्दसहाय द्वारा लिखित बलदेवप्रसाद एवं ब्रजनन्दन सहाय वकील द्वारा लिखित 'राधाकृष्णदास जी की जीवनी' प्रका- हुई। इनके अतिरिक्त इसी सन् में गंगाप्रसाद गुप्त का 'बाबू राधाकृष्णदास का न चरित्र', रामशंकर शर्मा का 'गौरीशंकर उदयशंकर का 'रा० दुर्गाप्रसाद साहब दुर का जीवन चरित्र', चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद का 'गौरीशंकर उदयशंकर ओझा' प्रकाशित हुए। इन सभी में जीवनी लेखक कला का सफल प्रयास है।

द्विवेदी युग के जीवनी साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि सन् १९०८ १९२६ तक कोई भी उत्कृष्ट साहित्यिक व्यक्ति की जीवनी किसी भी साहि- क लेखक ने नहीं लिखी। जो भी जीवनियाँ प्राप्त होती हैं वे सामाजिक, राजनैतिक एं धार्मिक पुरुषों की हैं। १९०८ ई० में वृन्दावनलाल वर्मा का भगवान बुद्ध का वन चरित्र' बलदेव प्रसाद मिश्र का 'तालिया भीम', सूर्यकुमार वर्मा का 'कांग्रेस रितावली' पं० रामचन्द्र वैद्य शास्त्री का 'भारत नर रत्न चरितावली' प्रकाशित हुए। ९०९ ई० गोचरण स्वामी का 'भगवानप्रसादजी', रूपनारायण पांडेय, का 'श्री गौराग- रित', पुरमानन्द स्वामी का 'बुद्ध' सूर्यकुमार वर्मा का 'मुगल सम्राट अकबर', मु० वीप्रसाद का 'खानखाना नामा दो भाग', ज्वालादत्त शर्मा का 'सिक्खों के दस रु', बैजनाथजी का 'सच्चासाधु' एवं पारसनाथ त्रिपाठी का 'तपोनिष्ठ महात्मा अरविन्द घोष' प्रकाशित हुए। इन जीवनियों में से सूर्यकुमार द्वारा लिखित अकबर की जीवनी में हमें तत्कालीन देश की परिस्थितियों के विषय में अच्छा अनुमान हो जाता है।

सन् १९१० में देवीप्रसाद की 'बाबरनामा' अखिलानन्द शर्मा की 'दयानन्द दिग्विजय' किशोरीलाल गोस्वामी की 'नन्हे लाल गोस्वामी' दयाचन्दगोयलीय की 'कांग्रेस के पिता ए० ओ० ह्यू म' ब्रजनाथ शर्मा घोवक द्वारा लिखित 'सर विलियम वेडरबर्न' नवनीत चौबे की 'हरिदास वंशानु चरित्र' मु० सूर्यमल का 'जीत जीवन चरित्र' जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का 'शंकर चरित्र' ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा का 'महारानी बायजा बाई सिंधिया' तिलक सिंह का 'रामपाल सिंह' जीवन चरित्र प्रकाशित हुए। ये सभी जीवन चरित साधारण कोटि के हैं। इनमें कोई विशेष बात नहीं किन्तु इनका महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से ही है।

सन् १९११ में मु० राम जिज्ञासु का 'नेपोलियन बोनापार्ट' उदयनारायण तिवारी का 'सम्राट् जार्ज पंचम का जीवन चरित्र' विलियम ए० थेयर का 'गारफील्ड' जीवन चरित्र प्रकाशित हुए। इनमें उदयनारायण तिवारी का 'जार्ज पंचम का जीवन चरित्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस जीवन चरित्र के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भारतीय लेखकों को विदेशी पुरुषों के जीवन चरित्र लिखने का शौक था। हिन्दी लेखकों का यह प्रयास भारतीय जीवनी साहित्य की प्रगति के लिए एक सराहनीय स्थान है।

सन् १९११ में द्वारिकाप्रसाद शर्मा की 'भीष्म पितामह', 'आदर्श महात्मागण भाग २', 'आदर्श महिलाएँ भाग १', लज्जा राम शर्मा की 'उम्मेदसिंह चरित्र', ललिता प्रसाद शर्मा की 'विदुषी स्त्रियां भाग १', 'विदुषी स्त्रियां भाग २', देवेन्द्र प्रसाद जैन की 'ऐतिहासिक स्त्रियां', बैजनाथ शर्मा की 'श्रीगुरुचरित्र', रामप्रताप पंडित की 'राम गोपाल सिंह चौधरी की संक्षिप्त जीवनी', एवं यशोदादेवी की 'वीरपत्नी संयोगिता', जीवनियां प्रकाशित हुई। ये सभी जीवनियां धार्मिक एवं सामाजिक व्यक्तियों की हैं। ये सभी जीवन चरित्र निबन्धात्मक शैली में लिखे गए हैं। इसलिए इन्हें जीवन चरित्र सम्बन्धी निबन्ध कहना अधिक उपयुक्त है। राधामोहन गोकुलजी की 'देशभक्त लाजपत' एवं नारायण प्रसाद अरोड़ा का 'स्वामी रामतीर्थ का जीवन चरित्र', भी इसी सन् में प्राप्त होते हैं। यही दो जीवनियां इसी सन् में ऐसी हैं जो मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झांकी प्रस्तुत करती है। इसलिए इनका विशेष महत्व है।

सन् १९१३ में भी धार्मिक एवं सामाजिक व्यक्तियों की जीवनियां ही प्राप्त होती हैं। परमानन्द स्वामी की 'शंकराचार्य', मुकुन्दी लाल वर्मा का 'कर्म वीर गांधी', लज्जाराम शर्मा का 'उम्मेदसिंह चरित', भगवती नारायण सिंह की 'हिज हाइनेस श्री सर प्रभुनारायण सिंह बहादुर जी० सी० आई० ई० काशी की संक्षिप्त जीवनी', गंगाप्रसाद शास्त्री का 'महिला जीवन', गणेश लाल का 'सचित्र भारत रत्न', ललिताप्रसाद वर्मा की 'भारतवर्ष की वीर माताएँ', कु० छत्रपति सिंह जू देव का 'रमेश जीवन', देवीप्रसाद शर्मा का 'हृदयोद्गार', बलदेव प्रसाद शर्मा का 'हकीकत राय धर्मी', एवं लक्ष्मी धर वाजपेयी का 'स्वामी नित्यानन्द' जीवन चरित्र प्रकाशित हुए।

सन् १९१४ में आनन्द किशोर महता का 'गुरु गोविन्दसिंह जी', वेनीप्रसाद द्वारा लिखित 'गुरु गोविन्दसिंह', स्वामी श्रद्धानन्द की 'आर्य पथिक लेखराम', महात्मा मुन्शीराम की 'आर्य पथिक लेखराम', रघुनन्दन प्रसाद मिश्र की 'शिवाजी और मराठा जाति', सम्पूर्णानन्द की 'धर्मवीर गांधी', सूर्य नारायण त्रिपाठी की 'रानी दुर्गावती' गणपति कृष्ण गजर की 'स्वामी रामतीर्थ की जीवनी और व्याख्यान', रामानन्द द्विवेदी का 'गांधी चरित्र', नन्दकुमार देव शर्मा का 'महात्मा गोखले', ब्रह्मानन्द का 'जर्मनी के विधाता या केसेर के साथी', लक्ष्मीधर वाजपेयी की 'गोसिफ मैजिनी', बद्रीप्रसाद गुप्त की 'मि० दादाभाई नौरोजी', अखौरी कृष्ण-प्रसाद सिंह की 'नैलसन', रामचन्द्र वर्मा की 'महादेव गोविन्द रानाडे', ताराचरण अग्निहोत्री की 'महाराष्ट्र केसरी शिवाजी', नाथूराम प्रेमी की 'कर्णाटक जैन कवि', जैनेन्द्र किशोर की 'मु० कु० वा० रामदीन सिंह', मेहता लज्जाराम शर्मा का 'जुझारतेजा', पांडेय लोचन प्रसाद शर्मा की 'चरित्र माला', एवं नारायणसिंह जी की 'भारतीय आत्मकथा' इसी सन् में प्रकाशित हुई। इन सभी में स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा लिखी हुई 'आर्य पथिक लेखराम', एवं वेनीप्रसाद की 'गुरु गोविन्द सिंह की जीवनी' उत्कृष्ट हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से इनका विशेष महत्व है। सम्पूर्णानन्द एवं

रामानन्द द्विवेदी ने गांधीजी के जीवन की कुछ घटनाओं का आधार लेकर जीवन चरित्र लिखने का प्रयास किया है। इसी प्रकार ताराचरण अग्निहोत्री एवं रघुनन्द प्रसाद मिश्र ने शिवाजी की जीवनी लिखी है। इसका ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व है। दुर्गावती का जीवन चरित्र भी सूर्यनारायण त्रिपाठी ने लिखा है। इन इतिहास के बीते हुए समय के प्रसिद्ध वीर पुरुषों एवं वीरांगनाओं के जीवन चरित्र इस समय में उपदेशात्मक दृष्टिकोण से लिखे जाते थे जिससे लोग इनके अध्ययन से कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

१९१५ सन् में द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी का 'रामानुजाचार्य', ज्ञानचन्द्र का 'वीरांगना', केदारनाथ पाठक का 'लक्ष्मण द्विवेदी', लाला भगवानदीन की 'श्रीमती ऐनी बेसेंट', द्वारिका प्रसाद शर्मा का 'साक्रटीज महात्मा', श्री किशोरीदास का 'निम्बार्क महामुनीन्द्र', इंद्रवेदालंकार का 'प्रिन्स विस्मार्क', केशव प्रसाद उपाध्याय का 'भारतीय आरकाने', रामेश्वर प्रसाद शर्मा का 'मि० दादाभाई नौरोजी', नरेन्द्र कुमार देव शर्मा की 'स्वामी रामतीर्थ की जीवनी और व्याख्यान', व्रज मोहन झा ओंकारनाथ वाजपेयी का 'समर्थ रामदास' एवं चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा का भाष्यकार श्री रामानुजाचार्य का सचित्र जीवन चरित्र जीवनियां प्रकाशित हुई।

१९१६ ई० में जगमोहन वर्मा की 'राणा जंगबहादुर', सम्पूर्णानन्द की 'महाराज छत्रसाल', चन्द्रशेखर पाठक का 'नेपोलियन बोनापार्ट', वृजविहारी शुक्ल का 'मदन मोहन मालवीय', शिव कुमार सिंह की 'मानवीय पंडित मालवीयजी के साथ', और हिन्दू विश्वविद्यालय के काशीराम नारायण मिश्र की 'महादेव गोविन्द रानाडे एवं अज्ञात की 'सच्ची स्त्रियां'' भी प्रकाशित हुई। इनके अतिरिक्त १९१६ सन् में अन्य भाषाओं की जीवनियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। श्याम सुन्दर दास की 'बुद्धदेव,' जिसके मौलिक लेखक जगमोहन वर्मा है इसी सन् में प्राप्त होती हैं। चंडीचरण बनर्जी द्वारा लिखित जीवनी 'विद्यासागर'' का हिन्दी अनुवाद रूपनारायण पांडेय ने लिखा। बंकिमचन्द्र लाहिड़ी द्वारा लिखी जीवनी 'नेपोलियन बोनापार्ट', का हिन्दी अनुवाद जनार्दन झा ने किया।

सन् १९१७ में पद्मनन्दन प्रसाद मिश्र की 'राजा राम मोहन राय', शिवनारायण द्विवेदी की 'राजाराम मोहन राय', एवं 'कोलम्बस', बृजमोहन लाल की 'हजरत मुहम्मद साहब', रामानन्द द्विवेदी का नूरजहां यदुनंदन प्रसाद एवं बालमुकुंद वाजपेयी की 'एनी बेसेंट', जयशंकर प्रसाद की 'सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य', लक्ष्मीधर वाजपेयी की 'छत्रपति शिवाजी', शीतला चरण वाजपेयी की 'रमेशचन्द्र दत्त', हरिदास माणिक की 'भारत की छत्राणी भाग २', राधामोहन गोकुल जी की 'नेपोलियन बोनापार्ट', जीवनियां प्रकाशित हुई।

सन् १९१८ सन् में पूर्णसिंह वर्मा की 'भीमसेन शर्मा', लालमणि शास्त्री की 'पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र', राधाकृष्ण का 'नवरत्न', ओंकारनाथ वाजपेयी का 'जे० एन० टाटा', अक्षयकुमार मैत्रेय का 'सिराजुद्दौला', विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

का 'रूस का राहु' 'वीर सत्याग्रही भवानी दयाल की संक्षिप्त जीवनी' अज्ञात द्वारा लिखी गई। इनके अतिरिक्त लोकमान्य तिलक, गुरु गोविन्द सिंह की जीवनियाँ भी माता सेवक एवं राधेमोहन गोकुल ओंकार द्वारा लिखी गई।

सन् १९१९ में रूपनारायण पांडेय की 'वंकिम चन्द्र चटर्जी की जीवनी' प्राप्त होती है। यह तथ्यपूर्ण एवं सप्रमाण जीवनी लिखी गई है। पांडेयजी ने अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से नायक के चरित्र गुणों का उल्लेख किया है। एक भारतीय हृदय द्वारा लिखी हुई केशवचन्द्र सेन की जीवनी भी इसी सन् में प्राप्त होती है। इस युग में जीवनी साहित्य में यदि सर्वोत्तम नहीं तो सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में इस पुस्तक का स्थान ऊँचा है। चरित्र नायक का व्यक्तित्व इस ग्रन्थ में देखा जा सकता है। उसकी आत्मा पहचानी जा सकती है। जीवन का सच्चा चित्र इस पुस्तक में मिलता है। पाठक यह अनुभव करता है कि एक तटस्थ लेखक ने एक व्यक्ति के जीवन की मीमांसा दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयत्न किया है। चरित्र नायक का मानवीय रूप उसके गुण और दोष के साथ इस ग्रन्थ में चित्रित है। इसका मुख्य आधार अंग्रेजी पुस्तक है। इनके अतिरिक्त विश्वम्भरनाथ शर्मा का 'रूस का शत्रु', महावीर प्रसाद का 'आदर्श सम्राट', चन्द्रशेखर पाठक का 'पृथ्वीराज', केदारनाथ गुप्त का 'भारत के देश रत्न' जैसी जीवनियाँ प्राप्त होती हैं।

१९२० सन् सम्पूर्णानन्द की लिखी हुई 'सम्राट हर्षवर्द्धन', 'महादाजी सिन्धिया' जैसी जीवनियाँ प्राप्त होती हैं। इन जीवनियों को न तो इतिहास की श्रेणी में रक्खा जा सकता है और न जीवन चरित्रों की। इनमें लेखक ने नायक के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। 'महादाजी सिंधिया' में इसी वीर पुरुष का जीवन चरित्र लिखा है। इसमें नायक के सम्बन्ध का साधारण इतिहास है जो केवल सर्व-साधारण की जानकारी के लिए लिखा गया है। लेखक ने इसको पुस्तक की भूमिका में ही कह डाला है—"उनके जीवन का परिचय सर्वसाधारण को करवाने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई।" इन पुस्तकों में हिन्दू संस्कृति और भारत के गौरव के महत्व पर जोर दिया है। व्यक्तिगत स्वभाव, परिवार की बातें इन पुस्तकों में वर्णित हैं। इसलिये उन्हें ऐतिहासिक जीवनी साहित्य में लिया गया है।

यही नहीं १९२० सन् में ही चन्द्रशेखर पाठक ने राणा प्रताप सिंह एवं सिकन्दर शाह के जीवन चरित लिखे। नवजादिकलाल श्रीवास्तव का 'देशभक्त लाला लाजपत राय', भगवानदास केला का 'देशभक्त दामोदर', लक्ष्मीबाई का 'धन्नो देवी', सुखसम्पत राय भंडारी का 'भगवान बुद्ध', वेनीप्रसाद का महाराजा रणजीत सिंह' एवं ईश्वरी प्रसाद शर्मा, अज्ञात एवं माता सेवक की वाल गंगाधर तिलक पर लिखी जीवनियाँ भी इसी सन् में प्रकाशित हुईं।

सन् १९२१ में श्यामसुन्दरदास की 'कोविद रत्नमाला भाग २', सुरेन्द्रनाथ तिवारी की 'वेदज्ञ मैक्समूलेर', विश्वेश्वरनाथ मेहर की 'अब्राहम लिंकन' एवं रामदयाल तिवारी की 'गांधी मीमांसा' प्रकाशित हुई। इनमें डॉ० श्यामसुन्दरदास

की कोविद रत्नमाला का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व है। सन् १९२२ में
दुलारेलाल भार्गव की 'द्विजेन्द्र लाल राय', श्री रूपनारायण पांडेय की 'मारवाड़ के
प्रसिद्ध महात्मा की वानी और जीवन चरित्र', मथुराप्रसाद दीक्षित की 'नादिरशाह',
शिवव्रत लाल की 'प्राचीन हिन्दू माताएँ', बालकृष्णपति वाजपेयी की 'एडमस्मिथ',
स्वामी मुरली धर का 'निम्बादित्य चरितम्', राधामोहन गोकुल जी की 'जोजेफ
गेरीवाल्डी' प्रकाशित हुई। सन् १९२३ में भाई परमानन्द की 'वैरागीवीर', गुलबदन
ब्रजरत्नदास की 'सर हेनरी लारेंस', सुखसम्पत्ति राय भंडारी की 'श्री जगदीशचन्द्र
बोस', कृष्ण कुमारी की 'भारत की विदुषी नारियाँ' एवं पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा
द्वारा लिखित 'दादा भाई नौरोजी' जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं। सन् १९२४ में
रामनारायण सिंह जायसवाल की 'स्वामी शंकराचार्य का जीवन वृत्तान्त' एवं
बनारसीदास चतुर्वेदी की महादेव गोविन्द रानाडे प्राप्त होती हैं। १९२५ सन् में
केवल दो ही जीवनियाँ चक्रवर्ती वाप्पारल एवं शिवाजी रामशंकर त्रिपाठी एवं
रामवृक्ष शर्मा द्वारा लिखी हुई प्रकाशित हुई। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है
कि १९१६ से १९२५ सन् के भीतर जितनी भी जीवनियाँ लिखी गई हैं वे सामाजिक,
धार्मिक एवं राजनीतिज्ञों की हैं चाहे उनके लेखक साहित्यिक ही हैं।

बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित जीवनी-साहित्य

इस समय की अन्य महत्वपूर्ण जीवनी बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित
'सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी' है। यह भी एक मौलिक जीवनी है। इसका
प्रकाशन काल १९२६ सन् है। लेखक ने चरित्र नायक के दोषों का भी पूर्ण रूप से
उल्लेख किया है। इसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं देखने में आती। लेखक
ने नायक का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से किया है। इसके अतिरिक्त नायक की
व्यक्तिगत घटनाओं को लेखक ने सप्रमाण व्यक्त किया है। लेखक ने नायक के घर
जाकर उनके जीवन के सम्बन्ध में पता लगाया जो नायक के व्यक्तित्व पर पूर्ण रूप से
प्रकाश डालता है। जीवनी में लेखक ने कुछ पत्रों का भी समावेश किया है। इनके समा-
वेश से जीवनी के चरित्र नायक का स्तर और भी ऊँचा उठ जाता है। लेखक ने जीवन
की प्रत्येक घटना को सप्रमाण प्रस्तुत किया है। जहाँ इन्होंने नायक के विद्यार्थी जीवन
के विषय में लिखा है वहाँ यह पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं जोकि इनकी सत्यता एवं
प्रामाणिकता का द्योतक है—

"सत्यनारायण के विद्यार्थी जीवन को हम दो भागों में बाँट सकते हैं।
एक तो अध्ययन काल सन् १८९० से १८९६ तक और दूसरा अंग्रेजी अध्ययन
सन् १८८७ से १९०० तक। यद्यपि सन् १८९० से पहले सत्यनारायण ने गुरुमुखी,
आगरे में वैद्यवर पंडित रामदत्त के साथ, सारस्वत पढ़ना आरम्भ किया
था जबकि वे अपनी माता के साथ रामदत्तजी के पिता देवदत्तजी के यहाँ रहा
करते थे तथापि नियमानुसार पढ़ाई धाँधूपुर पहुँचने पर ही आरम्भ हुई।...
धाँधूपुर आगरे के निकट भी है और दूर भी।...वास्तव में सत्यनारायण भी

शिक्षा का आरम्भ इसी ग्राम से समझना चाहिए। पहले वे ताजगंज के मदर्से में पढ़ने के लिए विठलाए गए थे।"[१]

यह जीवनी सरल, रोचक एवं मार्मिक भाषा में लिखी गई है। इस जीवनी का महत्व इसलिए है कि लेखक ने एक साधारण व्यक्ति का चरित्र चित्रण करके मानवता का सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है।

इसके अतिरिक्त १९२६ ई० में उमादत्त शर्मा की शंकराचार्य जटाधरप्रसाद शर्मा विमल की 'अहिल्यावाई', रामवृत्त शर्मा का 'लंगट सिंह', रामनाथ लाल सुमन का 'माइकेल' मधुसूदन दत्त उमादत्त शर्मा का 'शिवाजी' जीवनियाँ भी प्रकाशित हुई। १९२२ ई० में विश्व की 'पृथ्वीराज चौहान', वल्लभभट्ट शास्त्री की 'राजा वीरवल', अमरलाल सोनी की 'मेवाड़ के महावीर' द्वारिका प्रसाद शर्मा की 'प्राचीन आर्य वीरता', हरिहर नाथ शास्त्री की 'मीरकासिम', पं० शीशनाथ चौधरी की 'भगवान बुद्ध', गौरी शंकर हीराचन्द ओझा की 'महाराणा प्रताप' जैसी जीवनियां प्रकाशित हुई। इस युग में डॉ० श्यामसुन्दरदास द्वारा लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की जीवनी प्रकाशित हुई। शिवनन्दन सहाय के पश्चात् डॉ० श्यामसुन्दरदास ने भारतेन्दु की जीवनी लिखने का प्रयास किया। आलोचक होने के कारण लेखक ने भारतेन्दु के जीवन की अच्छी प्रकार से छानवीन की है, भाषा भी उच्चकोटि की है।

सन् १९२८ में लक्ष्मी सहाय माथुर की 'वैंजामिन फ्रैंकलिन का जीवन चरित्र', वटुक सिंह की 'वेचसिंह नाम पैदा करने वाला', सूर्यदेवसिंह की 'महाराणा हम्मीरसिंह', शिवकुमार शास्त्री की 'नेलसन की जीवनी', प्रवासी लाल वर्मा की 'कर्मदेवी' एवं सत्यव्रत की 'अब्राह्म लिंकन' जीवनियाँ प्राप्त होती हैं। सन् १९२९ में भक्तवर तुकाराम जी का जीवन चरित्र चतुर्भुजसहाय द्वारा लिखा हुआ, अवतारकृष्ण कौल का 'शिवाजी महाराज', रामगोपाल का 'वीर सन्यासी श्रद्धानन्द', उदयभानु शर्मा का 'देवी अहिल्यावाई' जीवनियाँ प्रकाशित हुईं। सन् १९३० में सरदार वल्लभभाई पटेल एवं 'वादशाह हुमायूँ' सुरेन्द्र शर्मा एवं व्रजरत्नदास द्वारा लिखे हुए चरित्र प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार द्विवेदी युग के प्राप्त जीवनी साहित्य से स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग से इसमें अधिक उन्नति हुई है। इससे पूर्व की जीवनी शैली से इसमें विशेष अन्तर उत्पन्न हुआ। इसके साथ एक और महत्वपूर्ण वात है कि सभी लेखकों का ध्यान जीवन चरित्र लिखने की ओर आकर्षित हुआ। आवेश में आकर जैसा भी लिख सकते थे उन्होंने लिखा, केवल कुछ ही जीवन चरित्र उच्चकोटि के हैं। अधिकतर लेखकों ने सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक व्यक्तियों के विषय में ही लिखा है। स्वयं द्विवेदीजी ने भी अधिकतर ऐतिहासिक पुरुषों के विषय में ही लिखा है क्योंकि इनका दृष्टिकोण उपदेशात्मक था एवं हिन्दी का प्रचार करना इनका उद्देश्य था। इसलिए इन्होंने

---

१. सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७-८, ले० वनारसीदास चतुर्वेदी।

इतिहास से अपने जीवन चरित्रों को लिया। इनके लिखे हुए सभी जीवन चरित निबन्ध शैली में हैं। लेकिन फिर भी द्विवेदीजी ने वैज्ञानिक ढंग से उनका विवेचन किया है। यह ठीक है कि श्रद्धा की भावना होने से शिक्षा ग्रहण करने का उद्देश्य होने से जीवन के उन्हीं पक्षों का विश्लेषण है जिसे पढ़कर पाठक कुछ ग्रहण कर सके। अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि इस काल में अन्य भाषाओं की जीवनियों का हिन्दी भाषा में अनुवाद हुआ। रूपनारायण पांडेय ने 'विद्यासागर' एवं श्यामसुन्दरदास ने 'बुद्धदेव' लिखकर विशेष प्रशंसनीय कार्य किया। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनूदित जीवनियाँ प्रकाशित हुईं। राष्ट्रीय चरित्रों में जहाँ इन्होंने 'देशभक्त लाजपत', 'कर्मवीर गांधी', 'सरोजिनी नायडू', 'दादा भाई नौरोजी' लिखे वहाँ उन विदेशी महापुरुषों के जीवन चरित्र भी लिखे जो त्याग और बलिदान से ओतप्रोत हैं। इनमें 'गैरीवाल्डी', 'महावीर गैरीवाल्डी', 'बैंजामिन फ्रैंकलिन', 'अब्राहम लिंकन' आदि उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक चरित्रों की भी कमी नहीं है। 'नेपोलियन बोनापार्ट', 'महाराणा प्रतापसिंह', 'सम्राट अशोक' आदि जीवनियाँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी जीवनियाँ हैं जो कि मानव जीवन को ऊँचा उठाती हैं जैसे—शंकराचार्य, 'गुरु गोविन्दसिंह', 'केशवचन्द्र सेन', 'महर्षि सुकरात' आदि।

जहाँ तक साहित्यिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र का प्रश्न है वह भी इस युग में लिखे गए। शिवनन्दन सहाय ने 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' एवं 'गोस्वामी तुलसीदास' लिखकर इस श्रेणी को प्रगतिशील बनाया है। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु पर लिखी हुई यह जीवनी अधिक प्रामाणिक एवं सर्वप्रथम जीवनी मानी जा सकती है। इसमें लेखक ने भारतेन्दु के समस्त जीवन का वर्णन प्रामाणिक रूप से किया है। इनकी गोस्वामी तुलसीदास पर लिखी हुई जीवनी भी उत्कृष्ट है। इस प्रकार शिवनन्दन सहाय से ही साहित्यिक जीवनी लेखकों का आरम्भ माना जाना चाहिए क्योंकि इनसे पहले जो भी साहित्यिक व्यक्तियों के विषय में हमें प्राप्त होता है वह निबन्धात्मक रूप में ही है। किसी भी लेखक ने पूर्ण एवं विस्तृत जीवनी, जीवनी शैली में नहीं लिखी। यही नहीं बनारसीदास चतुर्वेदी की कवि सत्यनारायण की जीवनी भी अपना स्थान रखती है। इनके पश्चात् डा० श्यामसुन्दरदास ने भी भारतेन्दु पर जीवनी लिखी। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिवनन्दन सहाय से ही हिन्दी साहित्यिक पुरुषों की जीवनी का आरम्भ होता है।

वर्तमान काल

वर्तमान काल १९३० ई० के पश्चात् आरम्भ होता है। १९३१ ई० में देवव्रत द्वारा लिखित 'गणेशशंकर विद्यार्थी', रामबिहारी शुक्ल की 'अनमोल रत्न', प्यारे मोहन चतुर्वेदी की 'क्रान्तिकारी राजकुमार' एवं कृष्णकान्त मालवीय की 'वीरवर दुर्गादास' जीवनियाँ प्रकाशित हुईं। ये सभी साधारण कोटि की जीवनपरक हैं।

सन् १९३१ में गंगाप्रसाद मेहता द्वारा लिखित 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' जीवनी प्राप्त होती है। गंगाप्रसाद मेहता ने यह जीवनी [illegible] के साथ लिखी है [illegible] भी [illegible] है।

गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का वृत्तान्त विद्यमान ऐतिहासिक साधनों से जितना कुछ स्पष्ट हुआ है उसका विवेचन और विचार मैंने यथा-शक्ति इस पुस्तक में किया है।[1]

इस जीवनी में गुप्तकालीन इतिहास के साथ चन्द्रगुप्त की जीवनी का वर्णन है। लेखक ने इसके [illegible] जीवन को [illegible] इतिहास की सीमा में अधिक वर्णन किया है।

इसी सन् में इनके अतिरिक्त और जीवनियाँ भी प्राप्त होती हैं—श्री [illegible] मिश्र का '[illegible]', [illegible] एवं [illegible] महाराज की [illegible] और [illegible] के [illegible]', [illegible] प्रसाद [illegible] की '[illegible] का जीवन चरित्र', [illegible] का '[illegible]', [illegible] शर्मा की '[illegible]' [illegible] दीक्षित की '[illegible]' एवं [illegible] की 'रणवीर महाराणा प्रताप [illegible]' हैं। ये सभी जीवनियाँ साधारण कोटि की हैं। इनमें ऐसी कोई विलक्षण बात नहीं जो कि उल्लेखनीय हो।

ब्रजरत्नदास कृत 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'

ब्रजरत्नदास की 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' जीवनी १९३५ ई० में प्राप्त होती है। हिन्दी साहित्य में प्राप्त साहित्यिक जीवनियों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। लेखक ने यह जीवनी प्रामाणिक रूप से लिखी है। जिन व्यक्तियों की सहायता से इन्होंने भारतेन्दु के जीवन को प्रामाणिक रूप दिया है उन सभी का उल्लेख लेखक ने आरम्भ में ही दे दिया है। इसके साथ जीवनी लिखने के सभी साधनों का भी वर्णन है—

"इस कार्य में मुझे बहुत सज्जनों से सहायता मिली है और उन लोगों का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ। बाबा राधाकृष्णदासजी के पितृव्य बा० पुरुषोत्तम दासजी, दामकृष्णदासजी, बा० अयोध्याप्रसादजी, बा० गोकुलदासजी जयपुरी, बा० जगन्नाथ दासजी बी० ए० रत्नाकर, पं० गणेशदत्त त्रिपाठी आदि सज्जनों ने भारतेन्दु के विषय में जितनी ज्ञातव्य बातें बताई हैं''इसके अनन्तर ईश्वर की कृपा से बहुत से कागजात, पत्र-पत्रिकाएँ आदि आप से आप मिलती गईं, जिनसे इस जीवनी के लिखने में बहुत सहायता मिली। कुछ कागजात की नकल कचहरी से ली गई।[2]

इस जीवनी में लेखक ने भारतेन्दु के जीवन का पूर्ण रूप से विश्लेषण किया

---

१. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, ले० गंगाप्रसाद मेहता, पृ० १०
२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ले० ब्रजरत्नदास, पृ० ७

है। गुण-दोषों को प्रकट करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं दृष्टिगोचर होता। इन्होंने उनके विषय में स्पष्ट रूप से लिखा है—

"भारतेन्दु की जीवनी देखने से ज्ञात होता है कि घर के शुभचिन्तकों ने उन्हें जितना ही लायक बनाने का प्रयत्न किया उतने ही वे मीराबाई के समान 'नालायक' होते गए। और दोनों ही पक्ष अन्त तक अपने-अपने प्रयास में डटे रहे। फलतः प्रारम्भ में यह परकीया नायिकाओं के फेर में कुछ दिन पड़कर अपने चित्त को सान्त्वना देते रहे।"

इस प्रकार वर्णन से स्पष्ट है कि लेखक ने नायक के गुण-दोष दोनों का वर्णन पूर्ण रूप से किया है। भाषा एवं वर्णन शैली उत्तम है। प्रत्येक घटना का वर्णन लेखक ने कोमलता से किया है।

इसके अतिरिक्त १९३३ ई० में और भी कई जीवनियाँ प्रकाशित हुईं। रामनाथ सुमन की 'हमारे राष्ट्र निर्माता', बेनीमाधव अग्रवाल का 'इटली का शहीद', कृष्णचन्द्र विरमानी की 'दयानन्द सिद्धान्त भास्कर', द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी की 'वारेन-हेस्टिंग्स' लक्ष्मीचन्द्र उपाध्याय की 'महाराणा प्रताप', कृष्णदेव उपाध्याय की 'चारु-चरितावली' अयोध्यानाथ शर्मा की 'उज्ज्वल तारे', दयाशंकर दुबे की 'भक्त मीरा', सत्यदेव विद्यालंकार की 'स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी', सत्यभक्त की 'कार्लमार्क्स', सत्यदेव पंडित की 'स्वामी श्रद्धानन्द', रमाशंकरसिंह की 'संसार के प्रसिद्ध पुरुष' इसी युग की देन हैं।

१९३४ ई० से १९४४ तक की जीवनी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें दो प्रकार की जीवनियां लिखी गई हैं—राष्ट्रीय जीवन चरित्र एवं ऐतिहासिक जीवन चरित्र। राष्ट्रीय जीवन चरित्रों में श्री गदाधरप्रसाद की 'देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद' १९३४ ई०, 'हमारे राष्ट्रपति' ले० सत्यदेव विद्यालंकार १९३६ ई०, शिवनारायण टंडन की 'पंडित जवाहरलाल नेहरु' १९३७ ई०, 'जवाहरलाल नेहरु' गोपीनाथ दीक्षित, १९३७ ई०, लाला 'लाजपतराय' जगतपति चतुर्वेदी १९३८ ई० 'राजा राममोहन राय' ले० गणेश पांडेय, १९३८ ई०, 'देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद' १९३८ ई०, ले० देवव्रत शास्त्री, 'सुभाष बोस' १९३८ ई० ले० श्री राजेन्द्र [illegible] 'चन्द्रशेखर आजाद', १९३८ ई० ले० मन्मथनाथ गुप्त, महात्मा गांधी १९३९ ई० ले० लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, 'मोतीलाल नेहरु' १९३९ ई० ले० रामनाथ सुमन, 'बापू' १९४० ई० ले० घनश्यामदास बिड़ला है। इन प्राप्त राष्ट्रीय जीवन चरित्रों में से घनश्यामदास बिड़ला द्वारा लिखा हुआ 'बापू' जीवन चरित्र विशेष रूप में उल्लेखनीय है। बिड़ला जी की यह जीवनी अत्यन्त प्रामाणिक है क्योंकि इसका लेखक गांधीजी के साथ बहुत देर तक रहा। इस दीर्घकालीन निकटता के आधार पर ही इन्होंने यह पुस्तक लिखी है। यह सारी पुस्तक बिड़लाजी की [illegible] शक्ति का सुन्दर नमूना है। इसमें कहीं-कहीं गांधीजी के विचारों एवं सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला गया है। यह जीवनी कथात्मक शैली में लिखी गई है।

इन जीवन चरित्रों में से पन्नालाल का (१९४० ई०) 'बाबू जवाहरलालजी का जीवन चरित्र', एवं घनश्यामदास बिड़ला का जमनालाल बजाज (१९४२ ई०) भी उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त कई ऐसी पुस्तकें भी प्राप्त होती हैं जिनमें निबन्धात्मक शैली में राष्ट्रीय पुरुषों के जीवन चरित्र लिखे है, इनमें—रामनाथ सुमन की 'हमारे नेता और निर्माता' १९४२ ई०, सिद्धनाथ दीक्षित 'सन्त' की 'सम्मेलन के रत्न' १९४२ ई० एवं केदारनाथ गुप्त की 'भारत के दस रत्न' १९३८ ई० उल्लेखनीय है।

ऐतिहासिक पुरुषों की प्रकाशित जीवनियों के नाम ये हैं—ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा की 'महारानी बायजा बाई सिन्धिया' १९३५, जगदत्त की 'भारतीय महिला' १९३५, 'महाराज पृथ्वीराज' १९३६ ई०, ले० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, 'महाराज छत्रसाल बुन्देले' १९३६ ई०, ले० राधाकृष्ण तोपनीवाल, 'राठौर दुर्गादास' (१९३७ ई०) ले० राम रत्न हल्दर, 'छत्रपति शिवाजी' ले० लाला लाजपत राय (१९३९ ई०), 'बाबरनामा' १९४० ई० ले० देवीप्रसाद कायस्थ आदि लिखी गई। इनके अतिरिक्त कुछ विदेशी शासकों की जीवनियाँ जो त्याग और बलिदान से भरपूर हैं प्राप्त होती हैं, उनके नाम ये हैं—'महात्मा लेनिन' (१९३४ ई०), ले० सदानन्द भारती, 'हिटलर महान' (१९३६ ई०) ले० चन्द्रशेखर शास्त्री, 'सम्राट पंचम जार्ज' (१९३६ ई०) ले० श्री नारायण चतुर्वेदी, 'राष्ट्र-निर्माता मुसोलिनी' (१९३७ ई०) ले० श्री चन्द्रशेखर, 'राबर्ट क्लाइव' (१९३८ ई०) द्वारिकाप्रसाद शर्मा, 'प्रिंस क्रोपाटकिन' (१९३९ ई०) मूल लेखक ए० जी० गार्डनर अनु० बनारसीदास चतुर्वेदी, 'इटली का तानाशाह मुसोलिनी' (१९४० ई०) लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, 'स्टालिन' (१९४० ई०) त्रिलोकीनाथ। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे धार्मिक व्यक्तियों की जीवनियाँ प्राप्त होती हैं जो कि मानव जीवन को ऊँचा उठाने के लिए पर्याप्त रूप से सहायता प्रदान करती हैं। इनमें श्रीमन्नारायण स्वामी, श्री रामकृष्ण परमहंस (१९३६ ई०) ले० स्वामी विवेकानन्द, 'संत तुकाराम' (१९३७ ई०) ले० हरिराम चन्द्र दिवेकर, 'गुरु नानक' (१९३८ ई०) ले० मन्मथनाथ गुप्त, 'रामकृष्ण चरितामृत' (१९४० ई०) ले० लल्ली प्रसाद पांडेय, स्वामी शंकरानन्द संदर्शन (१९४२ ई०) ले० भवानी दयाल आदि हैं। इस १९३४ ई० से १९४४ ई० तक प्राप्त जीवनी साहित्य से स्पष्ट है कि इसमें किसी भी साहित्यिक लेखक की जीवनी नहीं प्रकाशित हुई।

शिवरानी देवी कृत 'प्रेमचन्द : घर में'

सन् १९४४ ई० में शिवरानी देवी द्वारा लिखी हुई। 'प्रेमचन्द : घर में' [illegible] आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली से प्रकाशित हुई। शिवरानीजी प्रेमचन्द की पत्नी हैं। इसलिए इन्होंने प्रेमचन्द का जो भी जीवन लिखा है वह सप्रमाण [illegible] इसमें लेखिका की स्पष्टवादिता एवं ईमानदारी पूर्णरूप से लक्षित होती है [illegible] लेखिका ने स्वयं भी कहा है—

"पुस्तक के लिखने में मैंने केवल एक बात का अधिक से ध्यान रखा है और वह है ईमानदारी सचाई। घटनाएं जैसे-जैसे याद आती गई हैं मैं उन्हें लिखती गई हूँ।"[1]

संस्मरणों में लिखा हुआ यह जीवन चरित्र अत्यन्त रोचक एवं मार्मिक है। पुस्तक लिखने के उद्देश्य को लेखिका ने स्वयं ही वर्णन किया है—

"इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य उस महान आत्मा की कीर्ति फैलाना नहीं है जैसाकि अधिकांश जीवनियों का होता है। इस पुस्तक में आपको घरेलू संस्मरण मिलेंगे पर इन संस्मरणों का साहित्यिक मूल्य भी इस दृष्टि से है कि इनसे उस महान् साहित्यिक के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। मानवता की दृष्टि से वह व्यक्ति कितना महान् कितना विशाल था, यही बताना इस पुस्तक का उद्देश्य है।...उनके और उनके असंख्य प्रेमियों के प्रति यह मेरी बेवफाई होती अगर मैं उनकी मानवता का थोड़ा-सा परिचय न देती। मेरा भी यह विश्वास है कि यह पुस्तक साहित्यिक आलोचकों को भी प्रेमचन्द साहित्य समझने में मदद पहुँचाएगी क्योंकि उनकी आदमियत की छाप उनकी एक-एक पंक्ति और एक-एक शब्द पर है।[2]

इस पुस्तक में शिवरानी देवी ने प्रेमचन्द्र के व्यक्तित्व पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला है। भाषा भी उच्चकोटि की है।

१९४६ सन् से लेकर १९५१ तक का जो भी जीवनी साहित्य हमें प्राप्त होता है उनमें अधिकतर बापू के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इनके अतिरिक्त उन सभी महापुरुषों के जीवन चरित्र की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं जिन्होंने भारत को स्वतंत्र बनाने के लिए त्याग और बलिदान दिए। इनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचन्द्र बोस एवं राजर्षि टंडन मुख्य हैं। शिवनारायन टंडन एवं देवराज मिश्र ने तो राजर्षि टंडन के विषय में लिखा है, श्री सुरेन्द्र शर्मा एवं विश्वम्भरप्रसाद शर्मा ने सरदार पटेल के जीवन के विषय में लिखा है। गांधीजी के जीवन के विषय में लिखा है। इनके विषय के लेखकों में डा० सुशीला नायर, वियोगी हरि, कमलापति प्रधान, जवाहरलाल नेहरु, राजेन्द्रप्रसाद का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। इन सभी ने कुछ घटनाओं के आधार पर गांधीजी के चरित्र को आंका है। इस युग में अर्थात् १९४९ ई० में रत्नलाल बांसल की 'मृत्युंजय सरदार भगतसिंह' पर लिखी जीवनी प्राप्त होती है। यह भी अपना स्थान वीर पुरुषों की जीवनियों में रखती है।

सन् १९५१ में रामवृक्ष बेनीपुरी की दो जीवनियां 'कार्लमार्क्स' एवं 'जयप्रकाश नारायण' प्रकाशित हुईं। इनके अतिरिक्त भीमसेन विद्यालंकार की 'शिवाजी' जीवनी इसी सन् में प्राप्त होती है। इसमें शिवाजी का ऐतिहासिक जीवन चरित्र है। सन् १९५७ में लालबहादुर शास्त्री ने 'श्रीमती क्यूरी' का अनुवाद किया। इस युग तक

१. प्रेमचन्द : घर में, लेखिका शिवरानी देवी, दो शब्द
२. वही

कुछ हिन्दी विद्वानों ने खोजपूर्ण जीवनी-ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें नायक के जीवन पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला है। ऐसे लेखकों में माताप्रसाद गुप्त, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा एवं डॉ० दीनदयालु गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं। गुप्तजी ने अपने ग्रन्थ तुलसीदास में जोकि १९४२ ई० में प्रकाशित हुआ तुलसीदास का जीवन चरित्र वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें तुलसी के ग्रन्थों तथा उसकी रचना का समय आदि बातों की सतर्क विवेचना की गई है। यह आलोचनात्मक जीवनी साहित्य है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा का भी 'सूरदास जीवनी और काव्य का अध्ययन' भी इसी श्रेणी का ग्रन्थ है। इसमें भी सूर के ग्रन्थों के आधार पर उनके जीवन तथा व्यक्तित्व का चित्र अंकित किया गया है। समय की परिस्थिति की भी छानबीन की गई है। डा० दीनदयालु गुप्त ने अपनी पुस्तक 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' में अष्ट-छाप के आठों भक्तों का बड़ी छानबीन के साथ जीवन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में जीवनी के अतिरिक्त वल्लभ सम्प्रदाय का पूर्ण विवेचनात्मक साहित्य है।

कुछ अभिनन्दन ग्रन्थ भी इस काल तक प्रकाशित हुए। ये अभिनन्दन ग्रंथ विशेषतया जन्म दिवस पर भेंट किए गए। मालवीय अभिनन्दन ग्रन्थ १९३६ ई० में भेंट किया गया एवं नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ १९४८ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी युग में गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ। इन अभिनन्दन ग्रन्थों में नायक के जीव के प्रशंसात्मक कार्यों का ही उल्लेखमात्र है। निर्दोष जीवन चरित्र का उल्लेख इन ग्रथों में नहीं है। फिर भी जीवनी साहित्य की उन्नति में इन ग्रन्थों का विशेष हाथ रहा है।

राहुल सांकृत्यायन कृत जीवनी साहित्य

१९५१ के पश्चात् विदेशी शासकों के जीवन चरित्र लिखने वालों में राहुलजी का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने कई जीवनियां लिखी हैं। १९५३ ई० में इनकी 'स्तालिन' की जीवनी प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त १९५४ सन् में कार्लमार्क्स, लेनिन, माओत्सेतुंग, घुमक्कड़स्वामी, प्रकाशित हुई। ये सभी जीवनियां हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इन जीवनियों की शैली सर्वसाधारण है।

सन् १९५५ में रंगनाथ रामचन्द्र द्वारा लिखित श्री अरविन्द की जीवनी साधना और उपदेश 'महायोगी' नाम से रामकुमार प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुई। अरविन्द की यह जीवनी रंगनाथ रामचन्द्र ने अत्यन्त रोचक एवं मार्मिक भाषा में प्रस्तुत की है। श्रद्धा का अतिरेक होने से यह उपदेशात्मक प्रवृत्ति को मुख्य रूप से ध्यान में रखकर लिखी गई है।

सन् १९५६ में इलाचन्द्र जोशी द्वारा लिखी हुई 'विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर' जीवनी भारतीय विद्याभवन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। जोशीजी ने रवीन्द्रनाथ की जीवनी अत्यन्त प्रामाणिक रूप से लिखी है। मनोवैज्ञानिककार होने के नाते इन्होंसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन की प्रत्येक घटना को मनोविज्ञान के आधार पर रखा है। उनके विवाह के विषय में एक स्थान पर लिखते हैं—

"अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में उनके मन में तरह-तरह की विचित्र कल्पनाएँ धूप-छाँह का लेख लिखा करती थीं। यूरोप के नारी समाज की स्वतन्त्रता का पक्ष समर्थन करते हुए उस पाश्चात्य आदर्श को अपने यहाँ के प्राचीन-आदर्श से समन्वित करके योग्य जीवनी संमिति की जो प्रतिमा उन्होंने निर्धारित की थी उसमें कम-से-कम कालिदास के 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या-ललिते कलाविधो' का आदर्श तो निहित था ही। पर ग्यारह वर्ष की जिस देहाती लड़की से उनका गठजोड़ होने जा रहा था उसके साथ उक्त आदर्श की चरितार्थता की सम्भावना प्रकट में कुछ विशेष न होने पर भी उसके लिए उन्होंने अपनी मौन सहमति दे दी।"[१]

विश्व कवि के चिरपरिचित होने के कारण एवं काफी समय तक सहवास के कारण इनकी जीवनी प्रामाणिक मानी जा सकती है। इलाचन्द्र जोशी ने कविवर के मस्तिष्क का काफी मात्रा में अध्ययन किया था, यह इस जीवनी से लक्षित होता है।

१९५६ सन् में ही रामकृष्णदेव के अंतरंग गृही शिष्य का जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ। यह जीवन चरित्र श्री शरच्चन्द्र चक्रवर्ती द्वारा लिखा हुआ है और इसका नाम 'साधुनाग महाशय' है।

सन् १९५७ में रांगेय राघव द्वारा लिखित तुलसीदास का जीवन चरित्र 'रत्ना की बात' नाम से विनोद पुस्तक भंडार, आगरा से प्रकाशित हुआ, यह द्वितीय संस्करण है। इसमें तुलसी का जीवन वर्णित है। राहुल सांकृत्यायन की जीवनी 'अकबर' भी इसी काल में प्रकाशित हुई। १९५८ सन् में 'जार्ज वाशिंगटन' की जीवनी प्रकाशित हुई जिसके अनुवादक मगनलाल जैन हैं। १९५९ में श्यामराय भटनागर ने 'अब्राहमलिंकन' की जीवनी का हिन्दी अनुवाद किया। १९५९ में ही श्री रविशंकर द्वारा लिखी गुजराती भाषा में 'गुजरात के महाराज' जीवनी का हिन्दी रूपान्तर निगमानन्द परमहंस ने किया। श्री कृष्ण दत्त भट्ट की जीवनी 'जाजू जी जीवन और साधना' भी इसी सन् में प्रकाशित हुई। किताब महल इलाहाबाद से 'राष्ट्रनिर्माता तिलक' जीवनी कृपाशंकर द्वारा लिखी हुई भी इसी समय में प्राप्त होती है।

सन् १९५९ एक और दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। इसमें अनेकों अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुए जिनसे जीवनी साहित्य की प्रगति और भी होने लगी। 'राजेन्द्र स्मृति ग्रन्थ', 'सुमित्रानन्दन स्मृति चित्र', 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ' एवं 'शिवपूजन रचनावली चौथा खण्ड' भी इसी सन् में प्रकाशित हुआ। इन स्मृति ग्रन्थों में विविध हिन्दी लेखकों द्वारा निबन्धात्मक शैली में इनके जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इन सभी जीवन चरित्र सम्बन्धी निबन्धों में नायक के गुणों का ही वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'शिवपूजन रचनावली चौथे खंड' में शिवपूजन सहाय द्वारा लिखी हुई अनेक छोटी-छोटी जीवनियाँ संकलित हैं। ये सभी ग्रन्थ हिन्दी जीवनी साहित्य के

---

१. विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, ले० इलाचन्द्र जोशी, पृ० ६६

विकास में विशेष सहयोग देते हैं।

सन् १९६० में ऋषि जेमिनी कौशिक वरुआ द्वारा लिखी हुई 'माखनलाल चतुर्वेदी की जीवनी' भारती ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व का विश्लेषण सुचारु रूप से किया है। लेकिन जहाँ लेखक इनके व्यक्तित्व की कुछ दुर्बलताओं का विश्लेषण करने लगता है वहाँ उन दुर्बलताओं को और ही साँचे में ढालकर पाठक का मन उनके प्रति श्रद्धा से भर देता है। एक स्थान पर जहाँ लेखक उनके पढ़ाने के विषय में वर्णन करता है—पत्नी को उन पर किए शक का अनुमान एवं उसके प्रत्यक्ष रूप से देखने का वर्णन है वहाँ लेखक का मन उनकी चारित्रिक त्रुटियों का वर्णन करता हुआ अपनी कलम को पीछे हटा लेता है और उस मालकिन के सम्बन्ध को बहन के रूप में परिवर्तित कर देता है—

> "एक दिन इस शंकालु पत्नी से न रहा गया और वह निकट से सत्य की जानकारी के लिए उस समय उन जेठानी देवरानी के पास ही आ बैठी, जब परदे की दूसरी ओर उसका पति बच्चों को पढ़ा रहा था। उसने महसूस किया कि कनखियाँ तो व्यस्त रहना चाहती हैं पर परदे की दिशा पर उसकी उपस्थिति में उन कनखियों की कठिनाई बढ़ चली है। अब उससे न रहा गया और उसने उसी दिन फुरसत पाते ही पति से कह ही तो दिया कि जब आप पढ़ाते हैं, तो बच्चों की माताएँ आपको कनखियों से देखा करती हैं···पर शीघ्र ही समाधान का क्षण आया। उस दिन सुबह से शहर में रक्षाबन्धन का पर्व था, पर माखनलाल किसी दूसरे शहर शाम होते ही जाने की तैयारी में व्यस्त था कि नीचे से मकान मालिक का बुलावा आया—दुबारा बुलावा आया तो माखनलाल ने स्वयं जाकर मकान मालिक से उस दिन ठहर जाने की यह शर्त ठहराई कि उनके परिवार की दोनों पत्नियाँ उसे रक्षाबन्धन का डोरा बाँध दें।"[1]

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है लेखक ने अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक भाषा का प्रयोग किया है। यह जीवनी प्रामाणिक है। एक तो इस दृष्टिकोण से कि इसमें जहाँ भी आवश्यकता पड़ी है चतुर्वेदी की निजलिखित पंक्तियों का समावेश किया गया है, इसके अतिरिक्त वह स्वयं उन स्थानों पर घूमा है जहाँ चतुर्वेदी का जन्म हुआ। काफी सामग्री लेखक ने इसी प्रकार इकट्ठी की है।

सन् १९६० में ही 'बालकृष्ण भट्ट' का जीवन ब्रजमोहन व्यास द्वारा लिखा हुआ प्रकाशित हुआ। यह समस्त जीवन लेखक ने संस्मरणों में लिखा है। इसमें व्यासजी ने भट्टजी के आद्यांत जीवन पर नया प्रकाश डाला है। इससे त्याग और तपस्या से परिपूर्ण उनका ज्वलंत चित्र उपस्थित हो जाता है। लेखक ने ऐसे कितने ही प्रसंगों का वर्णन किया है जिनसे उनका व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। भाषा की स्वाभाविकता एवं शैली की सजीवता इनकी जीवनी में लक्षित होती है।

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी, ले० ऋषि जेमिनी कौशिक 'वरुआ', पृ० २३९

सन् १९६२ में 'प्रेमचन्द : कलम का सिपाही' जीवनी अमृतराय द्वारा लिखी हुई हंस प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। हिन्दी साहित्य में प्रकाशित जीवनियों में इसका स्थान अग्रगण्य है। इस जीवनी का महत्व कई कारणों से है। एक तो इस ढंग की लिखी हुई जीवनी हिन्दी साहित्य में किसी भी लेखक की नहीं प्राप्त होती। यह तो एक ढंग का उपन्यास है। उपन्यास और इसमें अन्तर यही है कि इसकी कहानी कल्पित नहीं बल्कि वास्तविक है। जीवनी को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए लेखक ने तत्कालीन लिखित प्रेमचन्द सम्बन्धी संस्मरणों एवं पत्रों का विशेष सहयोग लिया है, अधिक सहायता शिवरानी देवी से इन्होंने ली है। लेखक ने प्रेमचन्द के जीवन का इतने रोचक ढंग से वर्णन किया है कि नीरस प्रसंगों को पढ़ने में भी लेखक रस का अनुभव करता है। जहाँ लेखक ने देश की राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उनका प्रेमचन्द के जीवन से सम्बन्ध स्थापित किया है वहाँ इसकी कला की कुशलता द्रष्टव्य है। प्रेमचन्द के समस्त जीवन का विवेचन अमृतरायजी ने वैज्ञानिक ढंग से किया है। देश की परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ नायक के व्यक्तित्व एवं विचारों में भी परिवर्तन आया है इसका विवेचन करते हुए लिखते हैं—

> "देश एक नई करवट ले रहा था—वैसे ही जैसे अपने छोटे-से पैमाने पर खुद मुंशीजी की जिन्दगी, उनका दिल दिमाग एक नयी करवट ले रहा था। राष्ट्रीयता की चेतना में एक नया ज्वार आ रहा था और उस नये ज्वार को जिन लोगों ने अपने खून की गर्मी और खानी में सबसे पहले महसूस किया उन्हीं में एक मुंशीजी भी थे।"[1]

इतना ही नहीं जीवनी में वर्णित कई प्रसंग तो इतने मार्मिक हैं कि उनको पढ़ते ही पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, विषयानुसार ही लेखक ने भाषा का प्रयोग किया है। उनकी प्रथम पत्नी के प्रसंग में जोकि नवाब को भी पसन्द न थी लिखते हैं—

> "शादी हुई, शादी में खूब चुहलबाजी हुई—घर पहुँचकर उसने अपनी बीवी की सूरत जो देखी तो उसका खून सूख गया। उम्र में वह नवाब से ज्यादा थी, मगर वह तो ऐसी कोई बात नहीं लैला थी तो मजनूं से बड़ी थी काली थी मगर सुनते हैं लैला भी तो काली थी। किस्सा और चीज है, जिन्दगी और चीज। यथार्थ का एक और यह गहरा धक्का था जो नवाब को लगा। देखते ही शकल से नफरत हो गयी—बड़ी बुलबुल फूहड़।"[2]

इस जीवनी की भाषा शैली जीवन चरित शैली के अनुकूल है। लेखक ने पूर्ण तटस्थ एवं निष्पक्ष रूप से प्रेमचन्द के जीवन का विवेचन किया है। प्रस्तुत जीवनी में जहाँ हमें प्रेमचन्द के व्यक्तिगत जीवन का अनुभव होता है वहाँ साहित्यिक जीवन एवं

---

१. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, ले० अमृतराय, पृ० ८०
२. वही, पृ० ८५

कृतियों का भी लेखक ने वर्णन किया है। ये सभी वर्णन इस ढंग से किए गये हैं कि पाठक का मन तनिक भी नहीं घबराता। इस प्रकार नवीनतम जीवनियों में इस जीवनी का स्थान अद्वितीय है। अभी तक हिन्दी साहित्य में ऐसे ढंग का कोई भी जीवन चरित्र प्राप्त नही होता।

१९६४ सन् में अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' का 'आचार्य द्विवेदी गांव में' जीवन चरित्र प्राप्त होता है। इसमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के ग्रामीण जीवन का चित्रण है।

१९६० के पश्चात् कुछ अनुसन्धानकर्त्ताओं के ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं जिनमें उन्होंने अपने नायक के जीवन चरित्र का उल्लेख किया है। वास्तव में हैं ये सभी आलोचनात्मक ग्रन्थ। इनमें डॉ० त्रिभुवनसिंह का 'महाकवि मतिराम' १९६० में प्रकाशित हुआ एवं डॉ० सरनामसिंह का 'कबीर : एक विवेचन' भी इसी समय का ग्रन्थ है। 'मतिराम : कवि और आचार्य' भी इसी श्रेणी का ग्रन्थ है। डॉ० त्रिभुवनसिंह एवं महेन्द्र कुमार ने मतिराम के जीवन के विषय में जो कुछ भी लिखा है वह अनेक वैज्ञानिक प्रमाणों सहित लिखा है। इसके अतिरिक्त डॉ० सरनामसिंह ने भी कबीर का जीवनवृत्त अनेक बाह्य एवं अन्तर्साक्ष्य के आधार पर लिखा है। डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने भी अपनी घनानन्द पर लिखी प्रतिशोध पुस्तक 'घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा' में घनानन्द के जीवन वृत्त को जो भी लिखा है वह प्रामाणिक है। प्रत्येक घटना के वर्णन में पुस्तकों को आधार माना है। अनेक अंग्रेजी भाषा में लिखी हुई ऐतिहासिक पुस्तकों का आधार भी लिया है। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही थीसिस निकले हैं जिनसे जीवनी साहित्य का विकास प्रगति की ओर अग्रसर है।

विभाजन

प्रकाशित जीवनी साहित्य के आधार पर इसका विभाजन निम्नलिखित ढंग से हो सकता है—

(क) वर्ण्य चरित्र के क्षेत्र के आधार पर

साहित्यिक पुरुषों की जीवनियाँ—हिन्दी जीवनी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें साहित्यिक पुरुषों की जीवनियाँ भी लिखी गई हैं। यहाँ साहित्यिक पुरुष से अभिप्राय उस व्यक्ति से है जिसने हिन्दी साहित्य को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया है अर्थात् कुछ लिखकर अपनी विद्वता का परिचय जनता को करवाया है। शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'गोस्वामी तुलसीदास', डा०श्यामसुन्दरदास द्वारा लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' एवं व्रजरत्नदास की 'भारतेन्दु हरिश्चद्र' इसी श्रेणी की जीवनियाँ हैं। जैसाकि हिन्दी साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है इसमें शुद्ध एवं प्रामाणिक साहित्यिक जीवनियाँ कुछ कम ही लिखी गई हैं। अधिकतर जीवनियाँ निबन्ध शैली में ही हैं जिनको सम्पूर्ण जीवन चरित्र न कहकर

जीवन की एक झाँकी ही कहा जा सकता है। जैसाकि जीवनी लेखक के लिए आवश्यक है कि वह चरित्र नायक का जीवन तटस्थ एवं निरपेक्ष रूप से वर्णन करे, इन जीवनियों के लेखकों ने भी अपने चरित्र नायक का जीवन चरित्र इसी ढंग से लिखा है। शिवनन्दन सहाय ने गोस्वामीजी के व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से विश्लेषण किया है। साहित्यिक लेखक होने के कारण इनकी भाषा शैली भी विषयानुकूल एवं भावानुकूल है। एक स्थान पर गोस्वामीजी के स्वभाव के विषय में लिखते हैं—

> "इतने प्रतिष्ठित तथा सर्वमान्य पुरुषों से भेंट और भिन्नता होने पर भी इन्होंने कभी किसी के सम्बन्ध या प्रशंसा में कुछ कविता नहीं की। सर्वदा अपनी जिह्वा से रामयश कीर्तन करते तथा अपनी प्रबल लेखनी को उन्हीं के गुण-वर्णन में प्रचलित करते रहे और अपने इस कथन को 'कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछताना।' जीवनपर्यन्त निर्वाह किया।"[1]

कहीं-कहीं लेखक ने इनके व्यक्तित्व के विषय में इतने संक्षिप्त रूप से कहा है कि बात भी स्पष्ट हो जाती है और शैली भी सुन्दर दृष्टिगोचर होती है। जहाँ लेखक ने इनकी रचनाओं में प्राप्त पात्रों के विषय में लिखा है वहाँ इनकी शैली द्रष्टव्य है—

> "उत्कृष्ट तथा निकृष्ट पात्रों का इन्होंने ऐसा सच्चा चित्र खींचा है कि कदाचित् कोई विरला ही कवि इस बात में इनकी समता कर सकता है। इनके पात्रगण कहते-करते, सोचते-विचारते, मानो हम लोगों के नेत्रों के सामने उपस्थित किए जाते हैं। रामायण पाठ से वस्तुतः ऐसा ही प्रतीत होता है कि नाटक के पात्रगण नेपथ्य से निकल-निकल कर रंगभूमि में आते और बातचीत करते हैं।"[2]

हिन्दी साहित्य में कुछ ही जीवन चरित्र साहित्यिक लेखकों के प्राप्त होते हैं। जो हैं वे अपनी शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। ब्रजरत्नदास के भारतेन्दु के लिखे गए जीवन में भी कोई त्रुटि नहीं है। वे भी प्रामाणिक जीवनी लिखने में सिद्धहस्त हैं। इन सभी लेखकों ने प्रामाणिक जीवनी सिद्ध करने के लिए अनेक [illegible] प्रमाण दिए हैं जिससे किसी भी प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो ही नहीं सकता। इस प्रकार ऐतिहासिक सत्यता, निष्पक्षता, वैज्ञानिकता, सुसंगठितता आदि सभी विशेषताएँ इनकी जीवनी शैली में विद्यमान हैं। भाषा भी इनकी भावानुकूल एवं विषयानुकूल है। इस प्रकार सभी प्रकाशित इस श्रेणी की जीवनियों में प्रायः ये गुण हैं। [illegible] जैमिनी कौशिक 'बरुआ' की 'माखनलाल चतुर्वेदी' एवं अमृतराय की 'प्रेमचन्द : कलम का सिपाही' भी इसी ढंग की जीवनियां हैं।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, ले० शिवनन्दन सहाय, पृ० १२२,

२. वही, पृ० १२६

(२) राजनैतिक पुरुषों की जीवनियां—जहां साहित्यिक पुरुषों की जीवनियां हमें प्राप्त होती हैं वहां राजनैतिक पुरुषों की जीवनियों की भी कमी नहीं है। जैसा कि हिन्दी जीवनी साहित्य के विकास से स्पष्ट है अधिकतर जीवनियां इसी प्रकार की विभिन्न समयों में प्रकाशित हुई हैं। महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल पर लिखी हुई जीवनियां इसी श्रेणी की हैं। 'घनश्यामदास बिड़ला' की 'बापू', जमनालाल बजाज सुरेन्द्र शर्मा की 'वल्लभभाई पटेल', नवजादिकलाल श्रीवास्तव की 'देशभक्त लाला लाजपतराय' जैसी जीवनियां इसी कोटि की हैं। इन जीवनियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें पाठक को नायक के व्यक्तित्व के साथ-साथ तत्कालीन परिस्थितियों का भी आभास हो जाता है। जैसेकि बिड़ला द्वारा लिखे हुए 'बापू' में पाठक को जहां उनके त्याग और तपस्यामय व्यक्तित्व का अनुभव होता है वहां यह भी पता चलता है कि जिस समय इनके व्यक्तित्व का उभार हुआ उस समय देश की क्या परिस्थितियां थीं। सारा स्वतन्त्रता संग्राम का एक चित्र-सा उपस्थित हो जाता है। इन परिस्थितियों का वर्णन करना लेखक के लिए आवश्यक सा हो जाता है क्योंकि उन्हीं के बीच इनका व्यक्तित्व उभरता है। घनश्यामदास बिड़ला ने अत्यन्त रोचक एवं सीधी-सादी भाषा का प्रयोग किया है। छोटे वाक्यों का प्रयोग यह करते हैं—

> "गांधीजी ने सत्य की साधना की है। अहिंसा का आचरण किया है। ब्रह्मचर्य का पालन किया है। भगवान की भक्ति की है। स्वराज्य के लिए युद्ध किया है। खादी आन्दोलनों को अपनाया है। हरिजनों का हित साधा है।[1]

जहां हमें भारतीय राजनैतिक पुरुषों की जीवनियां प्राप्त होती हैं वहां हिन्दी लेखकों व विदेशी पुरुषों की भी जीवनियां लिखी हैं, कुछ मौलिक हैं एवं कुछ का अनुवाद किया है। बनारसीदास चतुर्वेदी की 'भारत भक्त एण्ड्रूज' जीवनी इसी प्रकार की है। लालबहादुर शास्त्री जैसे व्यक्तियों ने भी 'श्रीमती क्यूरी' का हिन्दी अनुवाद किया।

ऐतिहासिक वीर पुरुषों की जीवनियां—कुछ ऐसी जीवनियां भी लिखी गई हैं जिनके नायक ऐतिहासिक वीर पुरुष हैं। जितना भी जीवनी साहित्य अभी तक प्रकाशित हुआ है उसमें अधिकतर इसी प्रकार की जीवनियां हैं। इनके लिखने में लेखक का यह आशय होता है कि साधारण जनता इनको पढ़ने से कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सके और दूसरा कारण यह होता है कि मृत इतिहास को पुनर्जीवित किया जाय। द्विवेदी युग में जितने भी जीवन चरित्र लिखे गए हैं वे सभी इन्हीं भावनाओं को लेकर लिखे गए हैं। स्वयं द्विवेदीजी का उद्देश्य उन व्यक्तियों के जीवन चरित्रों को लिखना था जिनसे जनता कुछ ग्रहण कर सके। गंगाप्रसाद मेहता की लिखी हुई 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य', गौरीशंकर चटर्जी का 'हर्षवर्द्धन', रूपनारारायण पांडेय का 'सम्राट अशोक' इसी प्रकार की जीवनियां हैं। रामवृक्ष शर्मा की 'शिवाजी', विश्व

---

१. बापू, ले० घनश्यामदास बिड़ला, पृ० २३

का 'पृथ्वीराज चौहान' ब्रजरत्नदास का 'बादशाह हुमायूँ' आदि जीवनियाँ प्राप्त होती हैं।

हिन्दी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीय लेखकों ने केवल भारतीय ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन चरित्र नहीं लिखे अपितु जनता को जागृत एवं परिपक्व बनाने के लिए विदेशी वीर पुरुषों के चरित्र लिखे हैं। रामप्रसाद त्रिपाठी का 'जनरल जार्ज वाशिंगटन का जीवन चरित्र', चन्द्रशेखर पाठक का 'नेपोलियन बोनापार्ट', गुलवदन ब्रजरत्नदास का 'सर हेनरी लोरेंस' इसी प्रकार के जीवनी चरित्र हैं।

धार्मिक पुरुषों की जीवनियाँ— हिन्दी जीवनी साहित्य में जहाँ हमें राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक पुरुषों की जीवनियाँ प्राप्त होती है वहाँ धार्मिक व्यक्तियों की भी बहुत-सी जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं। द्विवेदी युग में तो अनेक ग्रन्थ श्री दयानन्द सरस्वती के विषय में लिखे गए। 'दयानन्द चरितामृत', 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन महर्षि' 'स्वामी दयानन्द', 'दयानन्द दिग्विजय' आदि अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त आर्य समाज के अन्य महापुरुषों की जीवनियाँ भी— 'स्वामी विशुद्धानन्द', 'लाजपत महिमा', 'आर्य पथिक लेखराम' इसी युग में प्राप्त होती हैं। १९५० में प्रकाशित श्री बलदेव उपाध्याय की 'श्री शंकराचार्य' पुस्तक धार्मिक जीवनी ग्रंथ है। यह ग्रंथ जीवनी साहित्य का उत्कृष्ट ग्रंथ है। लेखक ने वैज्ञानिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से पुस्तक लिखने का प्रयत्न किया है। कुछ अलौकिक बातों की चर्चा इस ग्रंथ में है परन्तु इसे भी प्रामाणिक करने की चेष्टा लेखक ने की है। पाठक शंकराचार्य के व्यक्तित्व को मानव रूप में देखता है। रंगनाथ रामचन्द्र द्वारा लिखी हुई अरविन्द की जीवनी जो 'महायोगी' नाम से १९५५ ई० में प्रकाशित हुई वह भी इसी प्रकार का जीवनी ग्रंथ है। 'सन्त तुकाराम' और 'स्वामी रामतीर्थ महाराज का जीवन चरित्र' भी उच्चकोटि के हैं। इन ग्रंथों में भी कल्पनाओं का आधार नहीं लिया गया है और न अप्रामाणिक बातें कहने का प्रयत्न किया गया है। जीवन का मानवीय चित्र उपस्थित किया गया है जिसे लोग ग्रहण कर सकें।

(ख) शैली के आधार पर

प्रत्येक लेखक का अपने चरित्र नायक के विषय में लिखने का अपना-अपना ढंग होता है कोई तो निबन्ध रूप में अपने चरित्र नायक के विषय में लेखक का जीवन संक्षिप्त रूप से कह देता है, कोई संस्मरणों के आधार पर चरित्र नायक की जीवनी लिख देता है। इसी प्रकार हिन्दी जीवनी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विभिन्न लेखकों की जीवन चरित्र लिखने की विभिन्न शैलियाँ हैं इन्हीं के अनुसार हिन्दी जीवनी साहित्य का विभाजन निम्नलिखित है—

संस्मरणात्मक शैली में लिखी हुई जीवनियाँ—इस शैली में लिखी हुई [illegible] साहित्यिक जीवनियाँ अभी तक प्रकाशित हुई हैं। शिवरानी देवी की 'प्रेमचन्द : घर में'

एवं ब्रजमोहन व्यास द्वारा लिखित 'बालकृष्ण भट्ट'। शिवरानी ने प्रेमचन्द का समस्त वर्णन इस पुस्तक में संस्मरणात्मक शैली में किया है। जैसे कि संस्मरणात्मक शैली में प्रभावोत्पादकता, रोचकता, सुसंगठितता एवं संक्षिप्तता आदि गुणों का समावेश होता है वैसे ही इनके द्वारा लिखे हुए प्रत्येक संस्मरण से प्रेमचन्द का व्यक्तित्व उभरता है जैसा कि लेखिका ने स्वयं भी कहा है—

"इस पुस्तक में घरेलू संस्मरण मिलेंगे पर इन संस्मरणों का साहित्यिक मूल्य भी इस दृष्टि से है कि इनसे उस महान् साहित्यिक के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।"

इसी प्रकार ब्रजमोहन व्यास ने 'बालकृष्ण भट्ट' का जीवन भी संस्मरणों में लिखा है। इसमें लेखक ने अत्यन्त रोचक एवं सजीव भाषा में बालकृष्ण भट्ट के जीवन का वर्णन संस्मरणों में लिखा है।

निबन्धात्मक शैली में लिखी हुई जीवनियाँ—हिन्दी साहित्य में बहुत से ऐसे जीवनीकार हुए हैं जिन्होंने अपने चरित्र नायकों का जीवन निबन्धात्मक शैली में लिखा है। छोटे-छोटे निबन्धों के रूप में लिखे हुए जीवन चरित्र तो बहुत ही प्रकाशित हुए हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं इसी शैली का प्रयोग किया था। इनके जितने भी जीवन चरित्र हैं वे सभी निबन्ध रूप में प्राप्त होते हैं।

औपन्यासिक शैली में लिखी हुई जीवनी—हिन्दी साहित्य में केवल एक जीवनी 'प्रेमचन्द : कलम का सिपाही' अमृतराय की इस शैली की प्राप्त होती है। यह जीवनी एक तरह का प्रेमचन्द पर लिखा हुआ उपन्यास है, परन्तु उपन्यास और जीवनी में अर्थात् इनकी शैली में जहाँ कुछ समानताएँ होती हैं वहां विषमताओं की भी कमी नहीं होती, इसी प्रकार इस जीवनी में दृष्टिगोचर होता है। आरम्भ से अन्त तक प्रेमचन्द की कथा धारावाहिक रूप से चलती है। लेखक ने स्वयं भी कहा है—

"यह भी एक उपन्यास ही है जिसका नायक प्रेमचन्द नाम का एक आदमी है। फर्क बस इतना ही है कि यह आदमी मेरे दिमाग की उपज नहीं है, हाड़-मांस का एक पुतला है जो इस धरती पर डोल चुका है और समय की पगडंडी पर अपने पैरों के कुछ निशान छोड़ गया है। उसको मारने-जिलाने की, जैसा मन चाहे तोड़ने-मरोड़ने की आजादी मुझे नहीं है, घटना प्रसंगों का आविष्कार करने की छूट मुझे नहीं है, कितने ही मोटे-मोटे रस्सों से मैं अच्छी तरह खूंटे से बँधा हुआ हूँ। लेकिन मुझे उसकी शिकायत नहीं है क्योंकि मैं जानता हूँ कि पूर्ण स्वच्छन्दता उपन्यास की कहानी कहते समय भी नहीं रहती, वहाँ भी कहानी कहने वाला जीवन के खूंटे से, प्रतीति के खूंटे से बँधा ही रहता है। एक न एक संयम अनुशासन हर सृजन के साथ लगा हुआ है। लेकिन सृजन के सुख में उ से कोई बाधा नहीं उपस्थित होती क्योंकि जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ सृजन का असली सुख इसमें नहीं है कि कथाकार अपने कल्पना लोक में अबाध विचरण कर सके बल्कि इसमें कि वह जड़ वास्तविकता को अपनी कल्पना से स्फूर्त और स्पंदित कर सके, मूक बधिर तथ्यों को वाणी दे सके, जीवन के

संदर्भ में अपने चरित्रों को देख सके, पहचान सके खोल सके। यह गुण मुझे यहाँ भी मिला और भरपूर मिला।[1]

वास्तविक घटनाओं का वर्णन लेखक ने इस ढंग से किया है कि पाठक को यह अनुभव भी नहीं होता कि मैं एक सच्ची घटनाओं से युक्त प्रेमचन्द का जीवन पढ़ रहा हूँ। उपन्यास में जैसे लेखक नायक के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन भी करता है वैसे ही अमृतराय ने भी प्रेमचन्द के जीवन की छोटी से छोटी घटना का वर्णन भी किया है पर विशेषता यह है कि पढ़ते हुए यह कभी भी अनुभव नहीं होता कि जीवनी में अनावश्यक विस्तार-सा है। उपन्यास में लेखक उसी व्यक्ति को नायक बनाता है जिनको कि वह समाज में देखता है। किसी भी ऐसे व्यक्ति का चित्रण वह नहीं कर सकता जो कि हमारी दुनिया के बाहर का व्यक्ति हो वरना कथावस्तु में असंभाव्यता का गुण आ जाता है। इस जीवनी का नायक भी एक सामान्य व्यक्ति है। परन्तु यह सामान्य व्यक्ति अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण विशेष बन जाता है। इस प्रकार यह जीवनी एक ढंग का उपन्यास-सा है और इसकी शैली बहुत कुछ उपन्यास शैली से मिलती है। कहीं लेखक ने प्रेमचन्द के वार्तालापों का ज्यों का त्यों वर्णन किया है जो कि इनके जीवन को और भी रोचक बना देता है। अपने शैली सम्बन्धी गुण के कारण यह हिन्दी जीवनी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है।

१. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, ले० अमृतराय, पृ० ११

4 आत्मकथा

आत्मकथा गद्य का वह रूप है जिसमें लेखक व्यक्तिगत जीवन का विवेचन विश्लेषण निःसंकोच रूप से करता है। इसके साथ ही वह बाह्य विश्व से सम्बन्धित मानसिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का विवेचन भी कलात्मक रूप से करता है। इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है।

तत्व

प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं एवं प्राप्त पुस्तकों के आधार पर आत्मकथा के तत्व निम्नलिखित हैं—

१. वर्ण्य विषय—'आत्मकथा' साहित्य का यह प्रमुख तत्व है। जैसे कि आत्मकथा शब्द से स्पष्ट है इसमें लेखक का विषय अपने सम्पूर्ण जीवन का वर्णन करना है। आत्मचरित्र अपने ही जीवन और मस्तिष्क का विश्लेपण कर जीवन और संसार को समझने का प्रयत्न है।[1] इस प्रकार आत्मचरित्र लेखक का विषय आत्म-विश्लेपण, आत्मनिरीक्षण के साथ-साथ विश्व की बाह्य घटनाओं की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का भी वर्णन है।

आत्मकथा तभी प्रभावित कर सकती है यदि उसका लेखक सर्वमान्य एवं सर्वप्रतिष्ठित व्यक्ति हो। आत्मचरित्र लेखक किसी भी क्षेत्र का हो परन्तु उसका सर्वमान्य होना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास से स्पष्ट है कि जहाँ हमें साहित्यिक पुरुषों की आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं वहाँ राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक पुरुषों की भी आत्मकथाएँ लिखी हुई हैं। जहाँ तक विषय का प्रश्न है व्यक्ति के अनुसार ही विषय का आत्मचरित्र में उल्लेख होता है। सामाजिक व्यक्ति होगा तो उसमें समाज की परिस्थितियों का वर्णन अवश्य होगा क्योंकि उसका व्यक्तित्व उससे प्रभावित होगा, इसी प्रकार राजनैतिक एवं धार्मिक व्यक्ति के विषय में कहा जा सकता है। जहाँ तक साहित्यिक व्यक्ति का प्रश्न है उसकी आत्मकथा में भी हमें तत्कालीन साहित्य की परिस्थितियों का अवश्य आभास मिलेगा। मेरा अभिप्राय यह है कि यद्यपि आत्मचरित्र लेखक का विषय तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करना नहीं है परन्तु फिर भी परोक्ष रूप से उनका वर्णन स्वतः ही हो जाता है। इन

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का इतिहास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० ६७

परिस्थितियों के वर्णन के बिना वह अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट नहीं कर पाता।

वर्ण्य विषय में अर्थात् आत्मकथा में कुछ गुणों का होना आवश्यक है जिनसे यह प्रभावोत्पादक बनती है। सर्वप्रथम आत्मकथा में सत्यवादिता व यथार्थता का होना आवश्यक है। प्रत्येक आत्मकथा का विषय अनुभूत्यात्मक होता है काल्पनिक नहीं। इसलिए इसमें वास्तविकता होती है। आत्मकथा में सत्य से अभिप्राय विषयगत सत्य से नहीं कुछ सीमित विषय तक का सत्य है जिससे लेखक का जीवन बनता है एवं जिससे विशेष गुण एवं घटनाओं के परिपक्व होने की दृढ़ता एवं व्यावहारिक गुण एवं आकृति स्पष्ट होती हैं[1]

It will not be an objective truth but the truth in the confines of a limited purpose, a purpose that grows out of the author's life and imposes itself on him as his specific quality and thus determines his choice of events and the manner of his treatment and expression.

हिन्दी साहित्य में प्राप्त आत्मकथाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि जितने भी साहित्यिकों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी है उनमें इस गुण को पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। उदाहरणतया यदि डा० श्यामसुन्दरदास को ही लें तो उनकी लिखी हुई आत्मकहानी में उनकी सत्यवादिता एवं स्पष्टता पूर्ण रूप से लक्षित होती है। यही एक प्रमुख गुण है जिसने उनकी आत्मकथा को उत्कृष्ट बना दिया है—

> "मेरे जीवन में दो बातें मुख्यतया विशेषता रखती है। एक तो मेरा जीवन सदा संघर्ष में बीता। विरोध का सामना करने में मुझे प्रयत्नशील रहना पड़ा•• दूसरी विशेष बात मेरे जीवन में यह हुई कि वैयक्तिक रूप में मैंने जिन-जिन की सहायता की उनमें से अधिकांश प्रायः कृतघ्न सिद्ध हुए और अपने स्वार्थ के आगे मुझको हानि पहुँचाने में उनको तनिक भी संकोच नहीं हुआ।"[2]

पूर्ण ईमानदारी के साथ आत्मकथा का वर्णन करना ही वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट एवं परिपक्व बनाता है। आत्मचरित्र लेखक के लिए ईमानदारी ही एक कठिन समस्या व एक महान् अनुभूति का कारण है। अपने विषय में सत्य कह देने की जो प्रतिज्ञा है यह चरित्र को एक साहसी एवं कठोर दृढ़ बनाने वाला बना देती है। ऐसे वर्णन में लेखक की योग्यता साधारण मनुष्य की अन्तर्दृष्टि से अधिक होती है।[3]

Honesty is the greatest stumbling block of the autobiographer. The resolution to tell the truth about oneself takes a Spartan rigor of character and the ability to do so requires a more than common insight.

---

१. Design and Truth in Autobiography by Roy Pascal, P. [illegible]

२. मेरी आत्मकहानी, डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० [illegible]

३. One Mighty Torrent by Johnson, P. 97

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका कि विषय वर्णन में होना नितान्त आवश्यक है वह है रोचकता। लेखक को अपनी आत्मकथा इस ढंग से वर्णन करनी चाहिए जिससे वह पाठक को रुचिकर प्रतीत हो। नीरस विषय को कोई भी पाठक नहीं पढ़ता। आचार्य चतुरसेन ने अपनी आत्मकथा का तो आरम्भ ही ऐसे रोचक ढंग से किया है कि पाठक को आगे पढ़ने में भी उकसाहट उत्पन्न होती है। शैली भी विषयानुसार रोचक प्रतीत होती है—

> "मैं एक आहत किन्तु अपराजित योद्धा हूँ। अपने चिर जीवन में मैंने सब कुछ खोया है पाया कुछ भी नहीं। मैंने एक भी मित्र जीवन में नहीं उत्पन्न किया। आज जीवन की सन्ध्या में अपने को सर्वथा एकाकी असहाय और निस्संग अनुभव करता हूँ। मेरी दशा उस मुसाफिर के समान है जो दिन भर निरन्तर मंजिल काटता रहा हो और जब निर्जन राह ही में सूर्य अस्त हो गया हो, वह बेसरोसामान थक कर राह के एक वृक्ष के सहारे रात काटने पड़ गया हो।"[1]

रोचकता, स्पष्टता, सत्यवादिता एवं ईमानदारी के पश्चात् विषय वर्णन में संक्षिप्तता का होना आवश्यक है। अनावश्यक विस्तार विषय को नीरस एवं कृत्रिम बना देता है। आत्मचरित्र लिखना कोई आसान काम नहीं है क्योंकि पहले तो अपने आप को पहचानना ही कठिन है और फिर पाठकों के सम्मुख अपनी जिन्दगी के हमारे किन अंशों को लाना उचित है और किनको न लाना उचित है यह निर्णय करना कठिन है और इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या जीवन में कोई ऐसी विशेष बात है भी जिसका वर्णन किया जाय? वैसे तो यदि कोई निर्जीव व्यक्तित्व वाला भी ईमानदारी के साथ अपनी निर्जीवता का वर्णन कर सके और उसके कारण भी बतला सके तो वह एक मनोरंजक एवं उपदेशप्रद आत्मचरित्र लिख सकता है पर दूसरों के जीवन में स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला आत्मचरित लिखना किसी सजीव व्यक्तित्व वाले पुरुष का ही काम है।[2]

इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा के लेखक को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वह अनावश्यक घटनाओं का विस्तार न करे। केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करे जिनसे उसके व्यक्तित्व के विश्लेषण में सहायता मिले तथा पाठकों के सम्मुख मानव जीवन के यथार्थ सत्य को उद्घाटित करने में उनकी उपयोगिता हो।[3]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विषय वर्णन में स्पष्टवादिता, रोचकता यथार्थता, निरपेक्षता, संक्षिप्तता एवं स्वाभाविकता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों से सम्पन्न होने पर ही सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा बन सकती है।

चरित्र-चित्रण—आत्मकथा साहित्य का यह दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। जैसे

---

१. मेरी आत्मकहानी, ले० आचार्य चतुरसेन, पृ० २

२. अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल'

३. सिद्धान्तालोचन, ले० धर्मचन्द सन्त, बलदेवकृष्ण, पृ० २११

कि आत्मकथा साहित्य से स्पष्ट है आत्मचरित्र आत्मपरिचय का साधन है। लेखक आत्मचरित्र में अपने मस्तिष्क के विकास का क्रम लिखता है। वह स्वयं अपने मस्तिष्क का अध्ययन करता है। आत्मनिरीक्षण और आत्मविवेचन करता है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक का उद्देश्य अपने ही चरित्र का विश्लेषण करना है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है—"इसमें जहाँ तक मुमकिन हो सकता था मैंने अपना मानसिक विकास अंकित करने का प्रयत्न किया है।[2]"

जब लेखक अपने ही व्यक्तित्व का वर्णन करता है तब वह अपनी लेखनी को तटस्थ भाव से चलाता है; गुण एवं अवगुणों को एक साथ लेता है। जहाँ तक गुणों का प्रश्न है यह ठीक है कि उसे आत्मश्लाघा करनी पड़ती है परन्तु ऐसा किए बिना उसका व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं हो पाता। इस प्रकार आत्मचरित्र में अहंकार और आत्मश्लाघा के दोष से बच सकना कठिन है। डॉ० श्यामसुन्दरदास में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है। उन्होंने भी अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन करते हुए अपने स्वाभिमान का वर्णन किया है—

"मैंने नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति में भरसक उद्योग किया और अपनी तथा अपने कुटम्ब की चिन्ता छोड़कर इसकी सेवा में अपना शरीर अर्पण कर दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उपरान्त हिन्दी बड़ी शोचनीय अवस्था में थी। उसे कोई पूछने वाला नहीं था। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना, 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन, तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की आयोजना से हिन्दी दृढ़ता से उन्नति करने लगी।[3]

यही नहीं आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी आत्मचरित्र में अपने अहं को स्वीकार करते हैं। वे इस बात को मानने के लिए तत्पर हैं कि आत्मचरित्र में अहंकार और आत्मश्लाघा के दोष से बच सकना कठिन है। इसीलिए उन्होंने आत्मनिवेदन में कहा है—"अब आज मैं अपने अहं का एक दूसरा प्रमाण इस निवेदन में दे रहा हूँ।"[4]

कुछ भी हो इस दोष और दुर्बलता के बीच भी आत्मचरित्र आत्मअध्ययन तथा आत्मनिरीक्षण का सर्वश्रेष्ठ साधन है। एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक Experiment in Autobiography की भूमिका में लिखा है, "यदि मैं जीवन में अत्यधिक दिलचस्पी न लेता तो आत्मचरित्र लिखने का प्रयास न करता और चूँकि अपने ही जीवन की विवेचना और परीक्षण के द्वारा जीवन की गुत्थियाँ समझी जा सकती हैं इसलिए अपनी आत्मकहानी लिखने का प्रयत्न किया है।"[5]

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह, पृ० १९
२. मेरी कहानी, संस्करण ७, पृ० ६, जवाहरलाल नेहरू, पृ० १६
३. मेरी आत्मकहानी, ले० डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० २५६
४. मेरी आत्मकहानी, ले० चतुरसेन शास्त्री (ग)
५. Experiment in Autobiography, Publication 1934, by H. G. Wells, Vol. II, Page 417

If I did not take an immense interest in life through the medium of myself, I should not have embarked upon this analysis ......I am being my own rabbit, because I find no other specimen so convenient for dissection.

इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक गुण-दोषों का वर्णन निरपेक्ष भावना से करता है। लेखक का किसी विशेष दोष व गुण को वर्णन करने में मोह नहीं होता। वह आत्मकथा सफल नहीं कही जा सकती जिसमें लेखक ने केवल अपने जीवन के केवल एक पहलू का ही चित्रण किया हो। प्रत्येक मनुष्य में दोष भी होते हैं एवं गुण भी होते हैं, दोनों के वर्णन में ही व्यक्तित्व स्पष्ट होता है।

अपने चरित्र को स्पष्ट करने के लिए जहाँ लेखक अपनी रुचि, स्वभाव, चारित्रिक विशेषताओं में गुण एवं न्यूनताओं का वर्णन करता है वहाँ वह उन व्यक्तियों के चरित्र को भी साथ-साथ स्पष्ट करता जाता है जिनसे उसका जीवन में सम्बन्ध होता है। ऐसे करने से भी लेखक के व्यक्तित्व को समझने में हमें और भी सहायता मिलती है। डॉ० श्यामसुन्दरदास की आत्मकथा में अनेक साहित्यिकों के नाम आते हैं जिनसे इनका सम्बन्ध रहा है। गौण रूप से इन साहित्य-सेवियों के विषय में भी पाठक को पता चल जाता है। राधाकृष्णदास, मदनमोहन मालवीय एवं बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आदि का नाम प्रमुख है। बाबू राधाकृष्णदास के विषय में लिखते हैं—

> "बाबू राधाकृष्णदास सा सज्जन और सहृदय मित्र मिलना तो कठिन है। उनकी कृपा का मैं कहाँ तक उल्लेख करूँ। उन्हीं ने मुझे हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का काम सिखाया और हिन्दी के सम्बन्ध में अनुसंधान करने की रीति सिखाई।[1]

जब लेखक अपने व्यक्तित्व के वर्णन में अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों के चरित्र पर कुछ ही पंक्तियों में प्रकाश डालता है तो उससे दो लाभ होते हैं—एक तो लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट होता है और दूसरा उस व्यक्ति के विषय में गौण रूप से पाठक को पता चल जाता है। डाक्टर श्यामसुन्दरदास में ही नहीं अन्य आत्मकथा लेखकों में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक अपने चरित्र को स्पष्ट रूप से पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है वह अपने चरित्र सम्बन्धी गुण एवं दोषों का निःसंकोच भावना से वर्णन करता है। जीवन में जो भी उसे विशेष सफलताएँ मिलती हैं और कुछ ऐसी आकांक्षाएँ जिनको प्राप्त करने के लिए वह सम्पूर्ण जीवन भरसक प्रयत्न करता है सभी का उल्लेख अपनी आत्मकथा में करता है जोकि उसके चरित्र को समझने में सहायक होती हैं। वाह्य व्यक्तित्व का वर्णन तो होता ही है पर आन्तरिक व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से व्यक्त करना ही बड़े

---

१. मेरी आत्मकहानी, ले० डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० २७३

साहस का कार्य होता है। इन सभी विशेषताओं से लेखक के व्यक्तित्व को समझने में सुविधा होती है। इस प्रकार लेखक के चरित्र का जो खुला रूप हम आत्मकथा में पा सकते हैं वह अन्यत्र नहीं।

देशकाल—वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है। देशकाल वातावरण का बाह्य स्वरूप है। वातावरण आन्तरिक भी हो सकता है। आदमी जिस प्रकार के समाज में रहता है वैसा तो कार्य करता ही है परन्तु उसके भाव, भावना और विचार भी उसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता में सहायक होते हैं।[1]

वर्ण्य चरित्र किसी देश या किसी काल में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। उसके जीवन की घटनाएँ देशकाल से सर्वथा सम्बद्ध रहती हैं। इस प्रकार आत्मकथा में भी देशकाल का महत्व है। अन्य प्रकथनात्मक साहित्य की भाँति आत्मकथा साहित्य में देशकाल का चित्रण मुख्यता प्राप्त नहीं होता। यह तो व्यंग्य रहता है। अन्य साहित्य में देशकाल का चित्रण उचित अनुपात के साथ स्वतन्त्र रूप से भी किया जा सकता है। आत्मकथा में लेखक ही मुख्य होता है। वह अंगी होता है देश और काल तो अंगभूत होकर रहता है और वह व्यंग्य रहता है।

हिन्दी आत्मकथा साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि जहाँ साहित्यिक लोगों की आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं वहाँ राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक पुरुषों ने भी अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं। जहाँ तक राजनैतिक पुरुषों का प्रश्न है इनकी आत्मकथाओं में तो तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन होना ही है क्योंकि इनका जीवन उन्हीं परिस्थितियों के प्रभाववश फलता-फूलता है। इसलिए राजनैतिक परिस्थितियों का विशेषतया ज्ञान हमें इन्हीं द्वारा रचित आत्मकथाओं में मिलता है। जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद एवं महात्मा गाँधी द्वारा लिखित आत्मकथाएँ इसी श्रेणी की हैं। इनकी आत्मकथाओं में पाठक को तत्कालीन सभी राजनैतिक परिस्थितियों का ज्ञान हो जाता है। इन्हीं परिस्थितियों के वर्णन द्वारा ही लेखक अपने व्यक्तित्व को पाठक के सम्मुख रख देता है। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की आत्मकथा में भी राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन यथार्थ भाषा में किया गया है।

धार्मिक व्यक्ति प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाओं में तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का आभास होता है क्योंकि उनका जीवन उन्हीं परिस्थितियों में प्रस्फुटित होता है। भवानीदयाल सन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा' इसी ढंग की है। इसमें सभी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन है। इसमें इन्होंने भारत के स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्नों का भी इतिहास लिख डाला है। इसमें भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया है और बहुत कुछ निजी कारनामों और [illegible]

---

१. समीक्षाशास्त्र, ले० डा० दशरथ ओझा, पृ० १६१, द्वितीय संस्करण सन् १९५[illegible]

के आधार पर लिखा है। साथ ही हमारे सामाजिक जीवन का, उसकी त्रुटियों और खूबियों का भी इसमें चित्रण है।[१]

इन आत्मकथाओं के अतिरिक्त कुछ साहित्यिक व्यक्तियों ने भी आत्मकथाएं लिखी हैं उनमें हमें साहित्य की परिस्थितियों का आभास होता है। उदाहरणतया डा० श्यामसुन्दरदास की सम्पूर्ण आत्मकहानी में हमें तत्कालीन देश की साहित्यिक दशा का ही आभास होता है। डाक्टर साहब का सम्पूर्ण जीवन साहित्य सेवा में व्यतीत हुआ था इसलिए इनके जीवन में इन्हीं परिस्थितियों का दिग्दर्शन होना था। इनकी प्रत्येक व्यक्तिगत घटना भी इन्हीं परिस्थितियों से सम्बद्ध है। एक स्थान पर 'हिन्दी शब्दसागर' के प्रकाशन की परिस्थितियों के विषय में लिखते हैं।—

> "अप्रैल १९१० से सितम्बर १९१० तक तो जंबू में कोश के सम्पादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा पर पीछे इसमें विघ्न पड़ा—१९१० में छुट्टी लेकर प्रयाग आना पड़ा···१५ दिसम्बर १९१० को कोश का कार्यालय जंबू से काशी भेज देना पड़ा···जनवरी, १९११ को अमीरसिंह भी स्वस्थ होकर सम्मिलित हो गए···नवम्बर, १९११ को गंगाप्रसाद गुप्त ने इस्तीफा दे दिया···१९२२ में लाला भगवानदीन पुनः इस विभाग में सम्मिलित कर लिए गए।"[२]

आचार्य चतुरसेन की आत्मकहानी में जहाँ हमें तत्कालीन साहित्य की परिस्थितियों का वर्णन मिलता है वहाँ उनकी आत्मकहानी में 'राजनैतिक और साहित्यिक विचार' में राजनैतिक परिस्थितियों का ज्ञान भी हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मकथाओं में लेखकों के व्यक्तित्व के अनुसार ही तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन पाया जाता है। इन परिस्थितियों का वर्णन हम गौण रूप से पाते हैं। लेखक का मुख्य उद्देश्य आत्मनिरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण ही होता है। लेखक अपने व्यक्तित्व का उभारने एवं निखारने के लिए ही इन परिस्थितियों का वर्णन करता है।

देश और काल के उभय पक्षों में वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान होना आवश्यक है। हिन्दी आत्मकथा साहित्य में केवल राहुल सांकृत्यायन ही ऐसे आत्मकथा लेखक हैं जिन्होंने इसकी ओर ध्यान दिया है। राहुलजी ने अपनी 'जीवन यात्रा' में जिन-जिन स्थानों का भ्रमण किया है उन सभी का विस्तार से चित्रण किया है। 'जीवन यात्रा' में द्वितीय खंड इसी प्रकार का है। उनकी आत्मकथा में देश एवं स्थान विशेष का वर्णन कोई विशेष मुहावरेदार भाषा में नहीं है बल्कि स्वाभाविक ढंग से किया गया है। जिन-जिन नगरों एवं पहाड़ी स्थानों पर उन्होंने भ्रमण किया था उन सभी का थोड़ा-बहुत वर्णन उनकी आत्मकथा में अवश्य होना था। यह सब गौण रूप

---

१. प्रवासी की आत्मकथा, ले० भवानीदयाल संन्यासी, पृ० ३, प्रथम संस्करण १९४७
२. मेरी आत्मकहानी, ले० डॉ० श्यामसुन्दरदास, पृ० १५४

से ही किया गया है, मुख्य उद्देश्य तो आत्मकहानी का ही वर्णन करना है।

इस प्रकार आत्मकथा साहित्य से स्पष्ट है कि लेखक का मुख्य उद्देश्य आत्म-विश्लेषण ही है परिस्थितियों का चित्रण करना नहीं। जिन परिस्थितियों का वर्णन आत्मकथा में आया भी है, वह उन्होंने अपने व्यक्तित्व को प्रामाणित एवं पुष्ट रूप प्रदान करने के लिए किया है। किसी स्थान विशेष का चित्रण तो बहुत कम ही पाया जाता है।

उद्देश्य—इसमें लेखक की उस सामान्य या विशिष्ट जीवन दृष्टि का विवेचन होता है जो उसकी कृति में कथावस्तु का विन्यास, पात्रों की योजना, वातावरण के प्रयोग प्राप्ति में सर्वत्र निहित पायी जाती है। इसे लेखक का जीवन दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि, जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना कह सकते हैं। उन कृतियों को छोड़कर जिनकी रचना का उद्देश्य मन-बहलाव या मनोरंजन मात्र होता है, सभी कलाकृतियों में लेखक की कोई विशेष विचारधारा प्रकट या निहित रूप में देखी जा सकती है। बिना इसके साहित्यिक कृतित्व प्रयोजनहीन और व्यर्थ होता है।

जहाँ तक आत्मकथा लेखक के उद्देश्य का प्रश्न है इसका उद्देश्य अन्य लेखकों से पृथक् होता है। आत्मकथा साहित्य का उद्देश्य होता है आत्म-निर्माण, आत्म-परीक्षण या आत्म-समर्थन, अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह या जटिल विश्व के उलझावों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्विक प्रयास। इस प्रकार के आत्मकथात्मक साहित्य के पाठकों में सर्वप्रमुख स्वतः लेखक होता है जो आत्मांकन द्वारा आत्मपरिष्कार एवं आत्मोन्नति करना चाहता है।

आत्म-सम्बन्धी साहित्य लिखने का एक दूसरा उद्देश्य यह भी है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सकें। महान् ऐतिहासिक आन्दोलनों और घटनाओं के सम्पर्क में रहते से डायरी, संस्मरण या आत्मकथा लेखक को यह आशा होना स्वाभाविक है कि आगामी युगों में उसकी रचना उसके युग तथा समय के प्रमाण रूप में पढ़ी जाएगी। यदि धर्म, राजनीति अथवा साहित्य के इतिहास-निर्माण में किसी व्यक्ति का महत्वपूर्ण हाथ रहा हो तो अवश्य ही पाठक उस व्यक्ति के बारे में स्वयं उसकी लिखी बातों को पढ़ना पसन्द करेंगे।

इन दोनों स्वतः सिद्ध उपयोगों के अतिरिक्त आत्मकथा लिखने के मूल में कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी हो सकती है और अपनी पद मर्यादा अथवा ख्याति से लाभ उठाने की कुछ व्यावसायिक इच्छा भी।[1]

यही नहीं चन्द्रावती सिंह ने भी आत्मकथा लिखने के उद्देश्य को इसी प्रकार से व्यक्त किया है—

"आधुनिक समाज में व्यक्ति की दो प्रवृत्तियाँ उल्लेखनीय और [illegible] नहीं है—(१) वह आत्मप्रचार चाहता है, अपने को समाज के सामने ला देना

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८८, द्वितीय संस्करण

चाहता है, वह अपने व्यक्तित्व का उभार चाहता है, और अपने विचारों, मनोभावों के प्रति समाज की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है। (२) वह आत्म-अध्ययन और आत्मविश्लेपण कर विश्व और मानव समाज को समझना चाहता है। वह नित्य छानबीन में लगा है और उसमें वह अपनी परीक्षा किया करता है। इन दो प्रवृत्तियों का अनिवार्य परिणाम आत्मजीवनी साहित्य का भविष्य में अधिक प्रसार और उत्थान है।"[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक आत्मकथा लेखक का उद्देश्य आत्मविश्लेपण, आत्मनिरीक्षण एवं आत्मविवेचन के साथ वाह्य विश्व के साथ अपने सम्बन्ध को वर्णन करना है। डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने आरम्भ में ही अपनी आत्मकहानी लिखने के उद्देश्य को प्रकट किया है—

"बहुत दिनों से मेरी यह इच्छा थी कि मैं अपनी कहानी स्वयं लिख डालता तो अच्छा होता, क्योंकि मेरे जीवन से सम्बन्ध रखने वाली मुख्य-मुख्य घटनाओं को जान लेना तो किसी के लिए भी कठिन न होगा, पर हिन्दी और विशेपकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा से सम्बन्ध रखने वाली अनेक घटनाओं का विवरण, जिनका उस समय प्रकाशित होना असम्भव-सा था परन्तु जिनका ज्ञान बना रहना परम आवश्यक है, मेरे साथ ही लुप्त हो जाएगा और ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा मैं भी उन्हें कुछ-कुछ भूलता जाऊँगा। इसलिए मेरी यह इच्छा है कि इस समय इन घटनाओं का वृत्तान्त तथा अपना भी कुछ-कुछ लिख डालूँ जिससे समय पड़ने पर मैं इन बातों से काम ले सकूँ और मेरे पीछे दूसरे लोग उन घटनाओं की वास्तविकता जानकर इस समय के ऐतिहासिक तथ्य का यथार्थ निर्णय कर सकें।"[2]

ऐसे ही राहुल सांकृत्यायन ने भी अपनी जीवन यात्रा लिखने के उद्देश्य को प्राक्कथन में ही व्यक्त किया है—

" 'मेरी जीवन यात्रा' मैंने क्यों लिखी, मैं बराबर इसे महसूस करता रहा कि ऐसे ही रास्तों से गुजरे हुए दूसरे मुसाफिर यदि अपनी जीवन यात्रा को लिख गए होते तो मेरा बहुत लाभ हुआ होता—ज्ञान के ख्याल से ही नहीं, समय के परिमाण में भी। मैं मानता हूँ कि दो जीवन यात्राएँ बिल्कुल एक-सी नहीं हो सकतीं, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि सभी जीवनों को उसी आन्तरिक वाह्य विश्व की तरंगों में तैरना पड़ता है।"[3]

राहुल सांकृत्यायन के कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी आत्मकथा इसलिए लिखी कि शायद आगामी साहित्यिक इससे कुछ लाभ उठा सके, क्योंकि

---

१. मेरी आत्मकहानी, ले० डॉ० श्यामसुन्दरदास, पृ० १
२. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, ले० चन्द्रावती सिंह
३. मेरी जीवन यात्रा, ले० राहुल सांकृत्यायन, पृ० ५

प्रत्येक मनुष्य को जीवन में संघर्षों का सामना करना पड़ता है। उन्हीं संघर्षों के अध्ययन से अन्य व्यक्ति को भी प्रोत्साहना मिल सकती है। अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह है। इसके साथ ही अपने गुण-दोषों के विवेचन से आत्मपरिष्कार एवं आत्मोन्नति चाहना है। अतः आत्मकथा लेखक का प्रमुख उद्देश्य आत्मविश्लेषण एवं आत्म-निरीक्षण ही है।

शैली—शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो इस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। इस पर असामान्य अधिकार के अभाव में लेखक की सफलता सम्भव नहीं। क्योंकि सामान्य रूप से लिखने की यहाँ बात ही नहीं, आत्मकथा शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जिनका होना इसमें आवश्यक है।

सर्वप्रथम शैली में प्रभावोत्पादकता का होना आवश्यक है। लेखक की शैली ऐसी होनी चाहिए जिसका प्रभाव पाठक पर स्थायी रूप से रहे। प्रभावोत्पादकता से ही विषय में रोचकता आती है। मुंशी प्रेमचन्द की आरम्भ की तीन-चार पंक्तियाँ ही अपना स्थायी प्रभाव पाठक पर डाल देती हैं, शेष कथन तो है ही प्रभावपूर्ण शैली में लिखा हुआ—

> "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है जिसमें कहीं-कहीं गढ़े तो हैं पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खड्डों को स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो यहाँ निराशा होगी।"[1]

लेखक की शैली में प्रभावोत्पादकता तभी उत्पन्न हो सकती है यदि वह आत्म-विश्लेषण निःसंकोच एवं स्पष्ट रूप से वर्णन करे। इस प्रकार आत्मकथा की शैली में निःसंकोच आत्मविश्लेषण होना चाहिए। हिन्दी आत्मकथा साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उन्हीं लेखकों की आत्मकथाएँ प्रभावोत्पादक हो सकी हैं जिन्होंने स्पष्ट रूप से आत्मनिरीक्षण किया है।

अन्य महत्वपूर्ण विशेषता शैली में सुसंगठितता एवं लाघवता का होना है। आत्मकथा शैली में यदि लेखक जीवन में घटित अनावश्यक घटनाओं का वर्णन सीमा से अधिक करता है तो वह आत्मकथा रोचक एवं प्रभावपूर्ण नहीं बन सकती। लेखक को आत्मकथा में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह जो कुछ भी संक्षेप में कहना चाहता है वह इस ढंग से कहे कि बात भी स्पष्ट हो जाय और विस्तार भी न हो। महादेवी वर्मा द्वारा लिखी हुई कुछ पंक्तियाँ ही उनके सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश डालती हैं —

> "परिवर्तन का दूसरा नाम जीवन है। जिस प्रकार जीवन के [illegible] में मेरे गुणों का उपहास-सा करती हुई विरह के क्षण-क्षण में [illegible] उनके पढ़ी है उसी प्रकार [illegible] में [illegible]

१. मेरा जीवन, ले० मुंशी प्रेमचन्द, 'हंस' आत्मकथा अंक, सन् १९३२

अपने ही भार से दबकर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञात पूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।"[१]

इस प्रकार आत्मकथा शैली में प्रभावोत्पादकता, लाघवता, सुसंगठितता, स्पष्टता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इनके सम्बद्ध होने से ही आत्मकथा की शैली परिपक्व हो सकती है।

हिन्दी आत्मकथा साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आत्मकथा लिखने की भी अनेक शैलियाँ हैं। कई आत्मकथा लेखक जिन्होंने स्फुट रूप से अपने जीवन के विषय में लिखा है उन्होंने निबन्धात्मक शैली को अपनाया है। महादेवी वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, गुलाबराय, मुंशी प्रेमचन्द, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि लेखकों ने इसी शैली को अपनाया है। हिन्दी साहित्य में कई ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने संस्मरणात्मक शैली में अपने विषय में लिखा है। इसका सफल प्रयास शान्तिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'परिव्राजक की प्रजा' में उपलब्ध होता है। इस पुस्तक में शान्तिप्रिय द्विवेदी ने समस्त आत्मकथा संस्मरणात्मक शैली में लिखी है। ऐतिहासिक शैली का आभास हमें राजनैतिक पुरुषों द्वारा लिखी हुई आत्मकथाओं में प्राप्त होता है। राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखी हुई आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' में डायरी शैली की काफी सहायता ली गई है। शुद्ध साहित्यिक शैली डा० श्यामसुन्दरदास एवं आचार्य चतुरसेन की आत्मकथाओं में लक्षित होती है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। यदि भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं भावानुकूल होगी तभी वह पाठक को प्रभावित कर सकती है। शब्द-चयन भी विषय एवं भावानुकूल होना चाहिए।

विकास

हिन्दी साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आत्मकथा लिखने की प्रथा यद्यपि नवीन है पर इसका थोड़ा-बहुत लिखने का प्रयास आरम्भ से ही चला आ रहा है। हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम आत्मकथा सन् १६४१ ई० में 'अर्द्धकथानक' नाम से बनारसीदास जैन ने लिखी है। एक अच्छी आत्मकथा में जिन प्रमुख गुणों का समावेश होना चाहिए वे सभी इसमें यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से भी कृति का महत्व कम नहीं है। रचना के आरम्भ में ही लेखक उसकी [illegible] के सम्बन्ध में कहता है कि वह 'मध्य देश की बोली बोल' कर अपनी कथा कहे [illegible] केवल कविता की दृष्टि से भी 'अर्द्धकथा' का स्थान ऊँचा है। साहित्यिक [illegible] से मुक्त प्रयासरहित शैली में घटनाओं के सजीव और यथातथ्य [illegible] तक सम्बन्ध है इतनी सुन्दर रचना हमारे हिन्दी साहित्य में कम [illegible] आत्मकथा का महत्व अन्य दृष्टि से और भी अधिक है। वह [illegible]

---

२. जीवन स्मृतियाँ, संपादक क्षेमेन्द्र सुमन, पृ० १५१

की सामाजिक अवस्था तथा धनी और निर्धन प्रजा के सुख दुःख का यथार्थ परिचय देती है। इसका प्रथम संस्करण सन् १६४३ में प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक माताप्रसाद गुप्त हैं।

(क) भारतेन्दु युग

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु के आगमन से पहले केवल 'अर्द्धकथा' ही आत्मकथा प्राप्त होती है। भारतेन्दु युग में भारतेन्दु ने ही 'एक कहानी : कुछ आपबीती कुछ जगबीती' में अपने विषय में लिखने का प्रयास किया था। केवल दो पृष्ठ ही वह लिख पाए हैं इसलिए यह अपूर्ण है। आरम्भ में यह लिखते हैं—

"हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं—आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या किसी का रोना हो पढ़े चलिए जी बहलाने से काम है। अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में ही बड़ा पवित्र दिन है।"[1]

इन पृष्ठों में भारतेन्दु ने अपने जीवन के विषय में कोई विशेष बात नहीं लिखी। केवल आत्मकथा लिखने का प्रयास ही लक्षित होता है।

राधाचरण गोस्वामी—भारतेन्दु युग के एक प्रतिभाशाली तथा प्रगतिशील विचार के लेखक राधाचरण गोस्वामी थे। इन्होंने अपना छोटा-सा जीवन चरित्र लिखा था जो मथुरा प्रेस से प्रकाशित 'राधाचरण गोस्वामी का जीवन चरित्र' नाम से प्रसिद्ध है। यह पुस्तक जीवनी साहित्य के आत्मचरित्र का रूप मात्र है। इस पुस्तक में उस समय के समाज और प्राचीन कवियों का पता लगता है। यह पुस्तक केवल बारह पृष्ठ की है। वह भी बड़ी मनोरंजक है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

"मुझे अंग्रेजी शिक्षा पर बहुत श्रद्धा हुई और मैंने अंग्रेजी पढ़ने की ठान ली। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ उसमें अंग्रेजी पढ़ना तो दूर की बात है, यदि कोई फारसी अंग्रेजी का शब्द भूल से मुख से भी निकल जाय तो बहुत पश्चात्ताप करना पड़े। अस्तु मैंने गुप्त रीति से अंग्रेजी आरम्भ की......।"[2]

राधाचरण गोस्वामी के इस जीवन चरित्र से भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियों के विषय में विशेष रूप से अधिक पता चलता है। गोस्वामीजी ने अपने विषय में कुछ कम ही कहा है।

प्रतापनारायण मिश्र—प्रतापनारायण मिश्र ने भी आत्मचरित्र लिखा

---

१. भारतेन्दु के निबन्ध, संग्रहकर्ता और सम्पादक केसरीनारायण शुक्ल, प्रथम संस्करण, पृ० १६१
२. राधाचरण गोस्वामी का जीवन चरित्र, ले० राधाचरण गोस्वामी, पृ० ३

आरम्भ किया था पर दुर्भाग्य की बात है कि वह उसे अधूरा ही छोड़ गए। मिश्रजी ने अपने लेख की भूमिका में आत्मचरितों की महिमा का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग पर किया था—

"एक घास का तिनका हाथ में लीजिए और उसकी भूत तथा वर्तमान दशा का विचार कर चलिए तो जो-जो बात तुच्छ तिनके पर बीती है, उसका ठीक-ठीक वृत्तान्त तो आप जान ही नहीं सकते, पर तो भी इतना अवश्य सोच सकते हैं कि एक दिन उसकी हरीतिमा सब्जी किसी मैदान की शोभा का कारण रही होगी, कितने बड़े-बड़े रूप गुण बुद्धि विद्यादि विशिष्ट उसके देखने को आते होंगे, कितने ही क्षुद्र कीटों एवं महान् व्यक्तियों ने उस पर विहार किया होगा, कितने ही क्षुधित पशु उसको खा जाने को लालायित रहे होंगे।"

श्री मिश्रजी ने अपने लेख में लिखा था—

"हमारी सभा में तो जितने मनुष्य हैं सब का जीवनचरित लेखनीबद्ध होना चाहिए। हमारे देश में यह लिखने की चाल नहीं है, इससे बड़ी हानि होती है। मैं उनका बड़ा गुण मानूंगा जो अपना वृत्तान्त लिखकर मेरा साथ देंगे।"

अम्बिकादत्त व्यास—सन् १६०१ में अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखा हुआ 'निजवृत्तान्त'[1] प्राप्त होता है। व्यासजी ने ५६ पृष्ठों में अपने जीवन के संवत् १६३५ से लेकर संवत् १६५३ तक का वर्णन किया है। प्रत्येक संवत् के शीर्षक को लिखकर संवत् क्रमानुसार जीवन का वर्णन है। इन्होंने अपने साहित्यिक एवं सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश डाला है। सर्वप्रथम वंश का परिचय देकर अपने विद्याध्ययन का वर्णन कर फिर अपनी साहित्यिक सेवाओं का वर्णन किया है। इसके साथ ही लेखक ने जहाँ-जहाँ नौकरी की है वहाँ का भी वर्णन किया है। इसके अध्ययन से लेखक के विस्तृत अध्ययन का भी पता चलता है। आरम्भ इन्होंने इस ढंग से किया है—

"पंडित हरिप्रसाद प्रभृति ने अपना वृत्तान्त कुछ भी न लिखा तो इस समय के विद्वद्गण को उनके ग्रन्थ में इस अभाव को देख नाक सिकोड़नी ही पड़ती है। परमानन्द पंडित ने इस समय ग्रन्थ बनाया तो भी निज शृंगार सप्तशतिका में अपना कुछ भी चरित्र न लिखा। यह देख हम लोग इस अंश में उनकी भी चूक कहते हैं। ऐसे ही यदि मैं भी अपने ग्रंथ में निज विषय में कुछ न लिखूँ तो मुझे विद्वान् लोग उनकी अपेक्षा भी अधिक दूषित समझेंगे। इस कारण में किंचित् निजवृत्तान्त लिखता हूँ और समझता हूँ कि जैसे लल्लू लाल ने निज ग्रंथ के अन्त में स्व-वृत्तान्त लिखा तो उससे साक्षर समुदाय अधिक प्रसन्न है और कृष्णदत्त का निज विषय में किंचित् लिखना विहारी के भी जीवन का निर्णायक समझते हैं वैसे ही मेरा लेख भी आवश्यक ही समझा जाएगा।"

---

१. विद्याविनोद, अष्टम भाग, बाबू चंडीप्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित पटना 'खंग' विलास प्रेस, बांकीपुर

"मेरे पिता के ग्रंथ साहित्य भाण्डागार में घर-घर पाये जाते हैं और उनका जीवन चरित विहार के (गवर्नमेंट द्वारा स्वीकृत) प्रसिद्ध शिक्षा सम्बन्धी विद्याविनोद नामक पत्र में बाबू चंडीप्रसादसिंह छाप चुके हैं तथा उसी ग्रंथ में उद्धृत कर बाबू साहब प्रसादसिंह ने अलग भी खंग विलास यन्त्रालय (बाँकीपुर) से प्रकाशित किया है तथा इनाम में बाँटने के लिए यहाँ के शिक्षा विभाग ने स्वीकार किया है। इसी के अवलोकन से मेरे जन्म तक वृत्तान्त तथा मेरे पूर्वजों का संक्षिप्त चरित विदित हो सकता है तो भी सूचना मात्र यहाँ लिख देता हूँ।"[1]

इतना विस्तृत उद्धरण देने का मेरा अभिप्राय यह है कि भारतेन्दु युग में लेखकों का मन आत्मचरित लिखने को अवश्य था। परन्तु किसी कारणवश वह अपनी इच्छाओं को पूर्ण न कर सके। केवल थोड़ा-बहुत ही अपने जीवन का वर्णन कर सके हैं जिसको कि आत्मकथा लिखने का थोड़ा-बहुत प्रयास ही कहा जा सकता है। पर आत्मकथा लिखने की प्रवृत्ति अवश्य उनमें थी।

श्रीधर पाठक—सन् १९२७ में श्रीधर पाठक द्वारा लिखी हुई 'स्व जीवनी' प्राप्त होती है। यह दो पृष्ठों की जीवनी श्रीधर पाठक ने लिखी है। इनमें इनके जन्म स्थान एवं तिथि का ही विशेष रूप से पता चलता है। साथ ही उनकी शैली सम्बन्धी विशेषताओं का पता चलता है कि इन्होंने व्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया। इनकी 'स्व जीवनी' का उद्धरण उल्लेखनीय है—

"वर्ष पैंसिठ हुई आज अपनी वयस हर्षपूरित हुई स्व-गृह जन मंडली मन हुआ मुदित अति उदत रवि दरस संग प्रात के समय ज्यों तरग सरसिज खिली।"

"मंडली शब्द पर्यन्त इस पद्य की पंक्ति उत्साह गुनगन विगत संवत में जनवरी मास तारीख तेईस उन्नीस पच्चीस सन् बीच विरचित हुई।"

"बहुत से मित्र अनुरोध अतिकर रहे कीजिए। शीघ्र लिखि स्व निज जीवनी। न अति विस्तृत न अति लघु न अत्युक्तियुत किन्तु सब सत्य [illegible] व्यक्तिगत सकल घटना घटित सरलता से वलित सुभग सुन्द ललित सुघर [illegible] संस्थान से अस्खलित सुनन कल कोकिला काकली-सी सनी।"

"किन्तु मम जीवनी ऐसी वस्तु नहीं जोकि हो जगत के जानने योग्य। अतएव इस ओर मति प्रतिय आती नहीं चित्त में सुगनि [illegible] नहीं। पर सुजन वृन्द या सुहृद जन नम्र की ओर से की गई प्रबल जो प्रार्थना [illegible] विफल [illegible] होती हुई जगत के बीच है प्रायः देखी गई।"

"अतः लिखना उचित जीवनी का हुआ [illegible] अनुसार [illegible] यद्यपि [illegible] कार्य यह [illegible]।"[2]

इस प्रकार भारतेन्दु युग के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस युग के लेखकों

---

1. 'माधुरी' [illegible] (३०३ पृष्ठ में)
2. माधुरी, [illegible] ई० [illegible], [illegible]

ने आत्मचरित लिखने के महत्व को समझ लिया था और शक्ति अनुसार थोड़ा-बहुत लिखने का प्रयास भी किया परन्तु पूर्ण सफलता किसी को नहीं हुई, केवल जन्म स्थान, जन्म तिथि एवं वंश-परिचय से ये लोग आगे नहीं बढ़े।

(ख) द्विवेदी-युग

हिन्दी आत्मकथा साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से पहले आत्मचरित लिखने के महत्व को साहित्य सेवियों ने जान लिया था और कुछ लेखकों ने प्रयास भी किया। द्विवेदीजी ने भी अपने विषय में 'मेरी जीवन रेखा'[१] नाम से पाँच पृष्ठों का चरित लिखा है। इन पाँच पृष्ठों की स्वलिखित जीवनी में द्विवेदीजी ने अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व की सच्ची झाँकी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की है। इन पृष्ठों में द्विवेदीजी ने अपने व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं को बड़ी ईमानदारी और सचाई से वर्णन किया है। कुछ पंक्तियों में ही अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से रखा है। एक आत्मकथा लेखक की शैली में जो गुण होने चाहिए वे इनकी शैली में विद्यमान हैं।

अपने जीवन को इन्होंने निःसंकोच रूप से लिखा है। इनके आत्मविवेचन में स्पष्टवादिता एवं सत्यता दृष्टिगोचर होती है—

> "मैं एक ऐसे देहाती का एकमात्र आत्मज हूँ जिसका मासिक वेतन १० रु० था। अपने गाँव के देहाती मदरसे में थोड़ी-सी उर्दू और घर पर थोड़ी-सी संस्कृत पढ़कर १३ वर्ष की उम्र में २६ मील दूर राय बरेली के जिला स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने गया। आटा दाल घर से पीठ पर लादकर ले जाता था। दो आने फीस देता था—कौटुम्बिक दुरावस्था के कारण में उससे आगे न पढ़ सका।"[२]

यही नहीं इन्होंने निःसंकोच आत्मविश्लेषण किया है। इनके द्वारा लिखे हुए पाँच पृष्ठ ही साहित्यिकों के लिए बहुत लाभप्रद सिद्ध होते हैं। अगर आचार्य जी अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व और विस्तार से लिख देते तो वह हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखता। फिर भी इन्होंने आत्मचरित लिखने का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—आचार्य शुक्ल ने अपने जीवन के कुछ पहलुओं को 'आत्मसंस्मरण'[३] शीर्षक से लिखा है। तीन पृष्ठों के इस आत्मचरित में शुक्लजी ने साहित्यिक जीवन में प्रविष्ट होने से पहले जीवन का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने अपने जीवन की किसी अन्य विशेपता का वर्णन न कर केवल साहित्यिक रुचि का ही वर्णन किया है। किन-किन साहित्यिकों का इनके जीवन पर प्रभाव पड़ा—इसका भी इन्होंने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। संस्मरण रूप में लिखा हुआ यह आत्मचरित

---

१. आचार्य द्विवेदी, सम्पादिका निर्मल तालवार

२. द्विवेदी जी, संपादिका निर्मल तालवार, पृ० ४

३. जीवन स्मृतियाँ, सम्पादक क्षेमेन्द्र सुमन, द्वितीय संस्करण, १९५३, पृ० ४८

सम्बन्धी निबन्ध उल्लेखनीय है। शुक्लजी द्वारा लिखे हुए ये तीन पृष्ठ उनकी आत्मकथा लिखने की प्रवृति के द्योतक हैं।

सन् १९३२ में अनेक साहित्यिक लेखकों ने अपने जीवन के विषय में लिखा है। इन लेखकों में पं०विनोदशंकर व्यास, डा० धनीराम प्रेम, मदगुरुशरण अवस्थी, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पं० गयाप्रसादजी शास्त्री, 'श्रीहरि', महावीरप्रसाद गहमरी एवं राधेश्याम कथावाचक मुख्य हैं। इन सभी लेखकों के आत्मचरित सम्बन्धी लेख 'हंस' आत्मकथा अंक में प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार हिन्दी आत्मकथा साहित्य के विकास में इस अंक ने विशेष सहयोग दिया है। यही नहीं मुंशी प्रेमचन्द ने भी 'मेरा जीवनसार' इसी अंक में प्रकाशित करवाया है।

पं० विनोदशंकर व्यास ने 'मैं' 'नामक शीर्षक में अपने गृहस्थ जीवन तक का वर्णन स्पष्ट रूप से किया है। अपने जीवन की उत्तम घटनाओं का जहाँ लेखक ने वर्णन किया है वहाँ अपनी त्रुटियों का भी स्पष्ट वर्णन किया है। अपने आत्माभिमानी होने के विषय में लिखते हैं—

"मैं बाल्यावस्था से ही आत्मभिमानी हूँ। मुझे याद है एक बार मेरी पढ़ाई के सम्बन्ध में पूछते हुए रुष्ट होकर उन्होंने मेरा कान पकड़ा था। मैं रोता हुआ घर में चला गया। प्रतिदिन का नियम था कि प्रातःकाल उठकर मैं उन्हें प्रमाण करने जाता था। लेकिन उसके बाद ६, ७ दिनों तक मैं उनके सामने नहीं गया। अन्त में कई बार बुलाने पर मैं उनके पास गया।"[1]

इसी प्रकार विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने 'मेरा वह बाल्यकाल' शीर्षक में बचपन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। धनीराम ने 'मेरा साहित्यिक जीवन' में अपने जीवन की उन सभी घटनाओं का वर्णन किया है जो कि प्रत्येक नवयुवक लेखक के मार्ग में अनिवार्य रूप से आती हैं। इसी प्रकार गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि' ने 'मेरी आत्मकथा' में अपने जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है जोकि उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का दिग्दर्शन करवाने में सहायक हैं।

मुंशी प्रेमचन्द—मुंशी प्रेमचन्द ने अपने जीवन के विषय में 'मेरा जीवन सार' शीर्षक से 'हंस' आत्मकथा अंक में सन् १९३२ में ही प्रकाशित करवाया। मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखे हुए अपने विषय में ये कुछ पृष्ठ उनके समस्त जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। जिस ईमानदारी और परिश्रम से इन्होंने अपना समस्त जीवन व्यतीत किया है उसका वर्णन स्पष्ट रूप से लेखक ने किया है। लेखक ने निरपेक्ष भाव से अपने जीवन का विश्लेषण किया है।

सन् १९३५ में आचार्य रामदेवजी द्वारा लिखे हुए 'मेरे जीवन के कुछ पृष्ठ' एवं हीरानन्द शास्त्री की 'आत्मकथा के कुछ पन्ने' प्रकाशित हुए। आचार्य रामदेव ने अपनी जीवन कथा में—अंग्रेजों के प्रति निर्भयता का परिचय, स्कूल में मास्टर होते हुए एक अंग्रेज कप्तान की घटना, ट्रेनिंग कालिज में विद्यार्थी के रूप में [illegible]

१. हंस, आत्मकथा अंक, पृ० ८

झगड़ा करना आदि घटनाओं के वर्णन से अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है। हीरानन्द शास्त्री ने 'दो सन्यासी' शीर्षक में दो घटनाओं का वर्णन किया है जोकि सावित्री और ब्रह्मा के मन्दिरों को देखने के लिए घटी थीं। दलाई लामा और दैवी शक्ति शीर्षक हैं।

सन् १९३९ में विद्यावती प्रेस लहरियासराय से प्रकाशित प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द' द्वारा लिखा हुआ 'आत्मचरित चम्पू' प्राप्त होता है। यह गद्य-पद्य-मयी सचित्र आत्मकथा है। इसके दस अध्याय हैं और सभी के नाम लेखक ने दिए हैं अर्थात् समस्त जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं को लेखक ने शीर्षकों में बाँट दिया है जैसे मेरी जन्मभूमि, वंश परिचय, शिक्षा दीक्षा, प्रवास, कलकता निवास आदि प्रोफेसर साहब ने अपने जीवन को विस्तारपूर्वक लिखा है।

सन् १९३९ में हो देवीदत्त शुक्ल ने मुंशी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का अनुवाद 'एक आत्मकथा' शीर्षक से किया है। अनुवाद करते समय शुक्लजी ने विषयातंर को छोड़कर केवल आत्मकथा सम्बन्धी वातों का ही इसमें संकलन किया है। यही नही महात्मा टाल्स्टाय की आत्मकथा का अनुवाद किया इसी सन् में राजाराम अग्रवाल ने 'मेरी आत्मकहानी' शीर्षक से किया। इसके अतिरिक्त राजाराम ने भी अपनी आत्मकथा 'मेरी कहानी' नाम ने इसी सन् में प्रकाशित की।

सन् १९४० में स्वामी सत्यभक्त की 'आत्मकथा' सत्याश्रम वर्धा (सीपी) से प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में न तो कोई ऐसी घटना है जो लोगों को चकित करे न कोई ऐसी सफलता दिखाई है जो लोगों को प्रभावित करे न जीवन इतनी पवित्रता के शिखर तक पहुँचा है कि लोग उसकी वन्दना करें। यह साधारण पुरुष की साधारण कहानी है। सन् १९४० में ही रामनाथ लाल सुमन और परमेश्वरी दयाल की 'मेरी मुक्ति की कहानी' प्राप्त होती है।

डा० श्यामसुन्दरदास—सन् १९४१ में डा० श्यामसुन्दरदास की 'मेरी आत्मकहानी' प्राप्त होती है। यह भी एक विचारणीय कृति है। डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी खड़ी बोली के उन्नायकों में से हैं, हिन्दी भाषा और साहित्य के महाप्राण हैं और हिन्दी संसार के प्रसिद्ध लेखक हैं। इस दृष्टिकोण से इनका स्थान साहित्य के क्षेत्र में बहुत ऊँचा होने से इनका आत्मचरित्र विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है। श्यामसुन्दरदास उच्च कोटि के निबन्ध लेखक थे इसलिए उनकी जीवनी में भी निबन्ध शैली की नीरसता प्रकट होती है। साहित्यिक और उच्च कोटि की भाषा होने पर भी उसमें माधुर्य नहीं है और जीवनी साहित्य की भाषा यदि माधुर्यपूर्ण नहीं है तो उसका रसात्मक साहित्य की दृष्टि से मूल्य बहुत कम हो जाता है। इस पुस्तक में हिन्दी की सेवाओं और हिन्दी से सम्बन्धित अन्य बातों के विषय में विशेष रूप से लिखा गया है। यह तो कहा जा सकता है कि श्यामसुन्दरदास का जीवन हिन्दी साहित्य से परे और क्या था तो कोई आपत्ति नहीं होगी, परन्तु मनुष्य अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण सेवाओं के अतिरिक्त कुछ और भी है। आत्मचरित जीवन के महत्वपूर्ण

कार्यों का उल्लेखमात्र नहीं है । अतएव इतने बड़े साहित्यिक के आत्मकथन में चरित्र-चित्रण के पूर्ण विकास की कमी खलती है । यदि श्यामसुन्दरदास हिन्दी संसार के संसार के अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति न होते तो उनकी 'आत्मकथा' पर विचार करने की आवश्यकता ही न होती ।

श्रीपद्मलाल पुन्नालाल बख्शी—द्विवेदी युग के प्रसिद्ध आलोचकों में श्री पदमलाल पुन्नालाल बख्शी का नाम भी अग्रगण्य है । इन्होंने अपने जीवन का संक्षिप्त विवरण 'अपनी बात' में किया है । साहित्यिक जीवन के अतिरिक्त बाल्यावस्था एवं यौवनावस्था के विषय में लेखक ने एक झाँकी सी प्रस्तुत की है । जीवन पर पड़े अन्य व्यक्तियों के प्रभाव का वर्णन भी लेखक ने स्पष्ट रूप से किया है । इसके अतिरिक्त लेखक ने अपने विचारों एवं भावों का स्पष्ट चित्रण किया है ।

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—इस युग के आत्मकथा लेखकों में अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी का नाम उल्लेखनीय है । वाजपेयीजी हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में भीष्म पितामह का स्थान रखते हैं । अपने जीवन का महत्वपूर्ण भाग आपने हिन्दी पत्रकारिता और भाषा की समृद्धि में ही लगाया है । इसलिए आप द्वारा लिखी हुई आत्मकथा[1] हिन्दी साहित्य-सेवियों के लिए लाभप्रद है । इसमें वाजपेयीजी ने तत्कालीन साहित्यिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के अल्प वर्णन के पश्चात् अपने साहित्यिक व्यक्तित्व के विषय में लिखा है । आत्मकथा के इन पृष्ठों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन्होंने दैनिक 'भारत मित्र' तथा 'स्वतंत्र' आदि हिन्दी के उल्लेखनीय पत्रों का सम्पादन अत्यन्त सफलतापूर्वक किया । इसके अतिरिक्त अपनी आत्मकथा में इन्होंने अपनी विद्वता, कर्मकुशलता एवं सहज सरलता का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया है ।

बाबू गुलाबराय—बाबू गुलाबराय द्विवेदी युग की शृंखला के सितारे हैं । आपने दर्शनशास्त्र विषयक लेखों और पुस्तकों के प्रणयन द्वारा हिन्दी साहित्य के मन्दिर में प्रवेश किया और धीरे-धीरे एक प्रसिद्ध आलोचक के प्रतिष्ठित आसन पर आ विराजे । इन्होंने अपनी आत्मकथा स्फुट निबन्धों के रूप में लिखी है ।[2] 'मैं और मेरी कृतियाँ : आत्मविश्लेषण'[3] में विशेष रूप से इन्होंने अपने जीवन के दोनों पक्षों का—साहित्यिक एवं व्यक्तिगत का—विश्लेषण किया है । जीवन की घटनाओं का वर्णन ही नहीं किया अपितु आलोचक होने के कारण टीका-टिप्पणी की है । इसके अतिरिक्त 'मेरी असफलताएँ' में लिखे वैयक्तिक निबन्धों से इनकी [illegible] का पाठक को अनुमान हो जाता है । इन वैयक्तिक निबन्धों के अनुशीलन से इनकी स्पष्टवादिता, निष्पक्षता, नम्रता एवं शैली की सरसता दृष्टिगोचर होती है ।

---

१. जीवन-स्मृतियाँ (साहित्यकारों के आत्मकथन), संपादक क्षेमचन्द्र सुमन

२. जीवन स्मृतियाँ, संपादक क्षेमचन्द्र सुमन, १९५२, आत्माराम एण्ड संस

३. मेरे निबन्ध—जीवन और जगत, गुलाबराय

मूलचन्द्र अग्रवाल—सन् १९४४ में मूलचन्द्र अग्रवाल की 'एक पत्रकार की आत्मकथा' प्राप्त होती है। मूलचन्द्र अग्रवाल 'विश्वमित्र' के संचालक रहे हैं। इन्होंने अपनी आत्मकथा का आरम्भ ही अद्भुत ढंग से किया है। पाठक इन पक्तियों को पढ़कर कुछ घबरा-सा जाता है—

> "घड़ाम गढ़ी के कुएँ से अन्धेरी रात्रि के प्रथम प्रहर में आवाज़ उठी और सारे गाँव में प्रतिध्वनित सी हो गई। नर-नारी कुएँ की ओर दौड़ते हुए दिखाई दिए। सबने साश्चर्य देखा कुएँ के घाट पर बँधी हुई मैली पगड़ी रक्खी है और एक जोड़ा ग्रामीण जूता तो गोपाल दद्दा का है।"

आत्मकथा के जितने भी अध्याय हैं लेखक ने उन सभी का नाम रक्खा हुआ है—आत्मोत्सर्ग, निर्धनता बनाम शिक्षा प्रगति, अंग्रेजी शिक्षा की ओर, कालेज की शिक्षा, भाग्यचक्र, अनुभवशून्यता के आधार पर, अन्धकार से प्रकाश और विकास, १९२२ की जेल य त्रा, फिर नया संग्राम, विस्तारपथ पर अधूरी कहानी और अन्त में लेखक ने २५ वर्ष के स्फुट संस्मरण लिखे हैं। जीवन यात्रा के विपिन्न पथिक इससे शान्ति लाभ कर सकते हैं। एक श्रमजीवी पत्रकार पूँजीपति पत्रकार के रूप में दिखायी देने पर आलोचना की सामग्री हो सकता है परन्तु आदर्शवादी पत्रकार के बाद व्यावहारिक हिन्दी पत्रकार की यह दूसरी पुश्त है।[1]

आत्मकथा लेखक की शैली में प्रायः जो गुण होने चाहिए वह इनकी आत्मकथा में स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं। हिन्दी में प्राप्त श्रेष्ठ आत्मकथाओं में इसकी भी गणना की जा सकती है।

इसी युग में महात्मा गांधी एवं जवाहरलाल नेहरू जेसे प्रसिद्ध महापुरुषों की आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं। महात्मा गांधी की मूल गुजराती पुस्तक 'आत्मकथा' का हिन्दी अनुवाद श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा सन् १९२७ में प्रकाशित हो चुका था। इस जीवनी ग्रन्थ ने जीवनी साहित्य को गौरवपूर्ण स्तर प्रदान किया। आत्मकथा के सम्बन्ध में भारतीय संकुचित दृष्टिकोण की परिधि बन्धन तोड़कर विस्तृत और उन्मुक्त हो गई। जीवनी लिखने का एक अत्यन्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो गया था। पंडित नेहरू के अंग्रेजी में लिखे आत्मचरित का हिन्दी अनुवाद १९३६ ई० में प्रकाशित हो गया था। इनके आत्मचरित्र के हिन्दी अनुवाद से हिन्दी आत्मकथा साहित्य को अधिक बल पहुँचा था। इन दोनों महापुरुषों के अतिरिक्त डा० राजेन्द्र-प्रसाद की 'आत्मकथा' सन् १९४७ में प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा से हिन्दी आत्मकथा साहित्य का स्तर और भी अधिक ऊँचा उठ गया। इस प्रकार इन महापुरुषों की आत्मकथाओं में वे सभी गुण प्राप्त होते हैं जोकि एक अच्छे आत्मकथा लेखक में होने चाहिए। इस दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य को यह बहुत प्रभावित कर सके हैं।

सन् १९४७ में भवानीदयाल सन्यासी का आत्मचरित्र 'प्रवासी की आत्मकथा'

---

१. एक पत्रकार की आत्मकथा, ले० मूलचन्द्र अग्रवाल, पृ० ८६

नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ का बड़ा महत्व है क्योंकि इतिहास और आत्मकथा होने के साथ-साथ यह एक सुन्दर साहित्यिक कृति भी है।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की आत्मकथा दो भागों में प्रकाशित हुई है। इन दोनों भागों के हिन्दी अनुवाद भी हुए। प्रथम भाग 'आधे रास्ते' सन् १९४[illegible] ई० और दूसरा भाग 'सीधी चढ़ान' सन् १९४९ में प्रकाशित हुए। 'आधे रास्ते' के हिन्दी अनुवादक श्री पद्मसिंह शर्मा कमलेश हैं और 'सीधी चढ़ान' के अनुवादक श्री मुंजुलावीरदेव हैं। दोनों भागों में मुंशी जी का व्यक्तित्व प्रत्येक पृष्ठ के साथ उभरता आया है। अत्यन्त ऊँची साहित्यिक भाषा में जीवनी ग्रन्थ लिखा है। कहीं आडम्बर का नाम नहीं, छिपाने का प्रयत्न नहीं और पाठक को ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे-जैसे जीवन प्रतिदिन आगे चलता गया है, उसी रूप में जीवनी ग्रन्थ उसे लिखता गया है। जीवन के अनेक पहलू, मन की पीड़ाएँ और व्यथाएँ, आकांक्षाएँ और असफलताएँ घृणा और प्रेम, निराशा की पराकाष्ठा और फिर उससे ऊपर उठने के प्रयत्न, पारिवारिक स्थिति और उसमें अपना स्थान अपने-अपने स्थान पर ठीक ढंग से चित्रित मिलते हैं।

वियोगी हरि—सन् १९४८ में 'मेरा जीवन प्रवाह' वियोगी हरि द्वारा लिखा हुआ प्राप्त होता है। 'मेरा जीवन प्रवाह' जीवन की छोटी बड़ी सभी बातों का चित्रण करता है। मन की तरंगों का, ज्वार और भाटा का उसमें एक चित्र मिलता है। भाषा सुन्दर है और लिखने की शैली अच्छी है, वर्णन अधिक है।

राहुल सांकृत्यायन—राहुल सांकृत्यायन ने 'मेरी जीवन यात्रा' में अपना आत्मचरित्र लिखने का प्रयत्न किया है। इसमें उन्होंने बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। इसमें भाषा की सुन्दरता, विविधता विशेष रूप से आकर्षक है। भावों को सरल तथा रोचक ढंग से व्यक्त करने की उनमें क्षमता है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १९४६ में हुआ। समस्त पुस्तक को चार खंडों में विभाजित किया गया है।

सन् १९४९ ई० में पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी ने 'मेरी जीवनगाथा' प्रकाशित कराई।

इस प्रकार सन् १९२७ से १९५० तक के आत्मकथा साहित्य के [illegible] से ज्ञात होता है कि जहाँ इस युग में साहित्यिक व्यक्तियों के आत्मचरित्र [illegible] सम्बद्ध रूप में प्राप्त होते हैं वहाँ कुछ ऐसे राजनैतिक पुरुषों के आत्मचरित्र भी प्राप्त होते हैं जिनका आत्मकथा साहित्य की प्रगति में विशेष हाथ रहा है। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू एवं डा० राजेन्द्रप्रसाद के आत्मचरित्रों से [illegible] हुई। इस युग तक साहित्यिक व्यक्तियों में केवल डा० श्यामसुन्दरदास [illegible] व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी आत्मकथा विस्तारपूर्वक लिखी यद्यपि [illegible] व्यक्तित्व को ही लक्षित करती है। [illegible] से हिन्दी की [illegible] संस्मरणात्मक शैली में आत्मकथाएँ लिखी गई हैं वे भी [illegible] से साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इस प्रकार हिन्दी का [illegible]

की विशेष रूप से प्रगति हुई। कई अनुवादित आत्मकथाएँ भी प्राप्त होती हैं। राजाराम अग्रवाल एवं पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने महात्मा टाल्सटाय एवं मुंशी जी की आत्मकथाओं का हिन्दी में अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त हरिभाऊ उपाध्याय ने गांधीजी की जीवनी का हिन्दी अनुवाद किया। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ इस युग में मौलिक आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं वहाँ अनुवादित भी। भारतेन्दु युग में तो साहित्यिक लेखकों ने आत्मचरित लिखने के महत्व को ही समझा था जिसका परिणाम यह हुआ कि द्विवेदी युग में इसकी पर्याप्त प्रगति हुई। 'हंस' के आत्मकथा अंक ने भी इस युग में आत्मकथा साहित्य के विकास में विशेष सहयोग दिया है।

(ग) वर्तमान काल

वर्तमान काल में भी अनेक कथालेखकों, आलोचकों एवं कवियों द्वारा लिखी हुई कथाएँ स्फुट एवं सम्बद्ध रूप में पाई जाती हैं।

सन् १९५१ में 'स्वतन्त्रता की खोज में' अर्थात् 'मेरी आत्मकथा' स्वामी सत्यदेव परिव्राजक द्वारा लिखी हुई हिन्दुस्तान प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़ से प्रकाशित हुई। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने देश-विदेश में भ्रमण कर भारतीयता और राष्ट्रीयता का जो प्रचार किया था उसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

कालिदास कपूर – सन् १९५३ में इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग से प्रकाशित कालिदास कपूर की आत्मकथा 'मुदर्रिस की रामकहानी' प्राप्त होती है। यह पुस्तक अध्यापक का जीवन-वृत्त है और मुख्यतः अध्यापक पाठकों को ध्यान में रखकर ही लिखा गया है। इस रामकहानी में कालिदास कपूर ने अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का बड़े गर्व के साथ वर्णन किया है। इनके जीवन में जो भी संकट व बाधाएँ आई हैं वे सभी शिक्षक समुदाय की हो सकती हैं ऐसा इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है –

> "अतएव कुछ ऐसा विश्वास हो रहा है कि मेरी रामकहानी में भारतीय शिक्षक बन्धुओं की कहानी सन्निहित है। यदि वंदनीय नेताओं की आत्मकथाओं से समस्त भारतीय नागरिक प्रभावित होते हैं तो माध्यमिक एवं प्रारम्भिक विद्यालयों के शिक्षक समुदाय को तो मेरे जैसे मुदर्रिस की रामकहानी में आत्म-दर्शन होना ही चाहिए।"[1]

इस आत्मकथा में लेखक की स्पष्टवादिता एवं लेखन शैली में प्रभावोत्पादकता दृष्टिगोचर होती है।

सन् १९५३ में आत्माराम एण्ड संस ने 'जीवन-स्मृतियाँ' पुस्तक प्रकाशित की जिसके सम्पादक क्षेमेन्द्र सुमन हैं। इस पुस्तक में आधुनिक कथालेखक, आलोचक एवं कविजनों के आत्मचरित संकलित हैं। कविगण में सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी

---

१. मुदर्रिस की रामकहानी, ले० कालिदास कपूर, पृ० ३

वर्मा एवं मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा लिखे गए आत्मकथा सम्बन्धी लेख हैं। मैथिली-शरण गुप्त ने अपने साहित्यिक जीवन के विकास के विषय में लिखा है। उनका अर्थात् आत्मकथा सम्बन्धी लेख का शीर्षक 'कविता के पथ पर' है। साहित्यिक जीवन की झांकी ही केवल प्राप्त होती है इसलिए लेख कुछ अपूर्ण-सा प्रतीत होता है।

इसी प्रकार सुमित्रानन्दन पंत ने भी 'मेरा रचनाकाल' शीर्षक में अपने कवि जीवन के विकासक्रम को पाठकों के सम्मुख रक्खा है। इस प्रकार इनके भी साहित्यिक जीवन का पाठक को आभास मिलता है।

महादेवी वर्मा ने भी 'अपने सम्बन्ध में' शीर्षक में अपने कवि जीवन के भाव पक्ष का ही अधिक वर्णन किया है। कविताओं के करुण, दुःख आदि विषयों का ही विस्तारपूर्वक लिखा है। अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से भावुकतामयी शैली में लिखा है। दुःख के विषय में लिखती हैं—

"मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं—एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बांध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतना का क्रन्दन है।"[1]

महादेवी द्वारा लिखे हुए इन पांच पृष्ठों को पढ़ने के पश्चात् इनकी कविताओं के भाव पक्ष को समझने में पाठक को बहुत सहायता मिल सकती है।

कथालेखक एवं आलोचकों में से जैनेन्द्रकुमार, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, श्री रामवृक्षबेनीपुरी, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी एवं डाक्टर रामकुमार वर्मा द्वारा लिखे हुए आत्मकथा सम्बन्धी निबन्ध भी संग्रहीत हैं। जैनेन्द्र ने भी 'अपनी कैफियत' शीर्षक में साहित्यिक व्यक्तित्व के विषय में ही लिखा है। उन्होंने कैसा लिखना शुरू किया और किस प्रकार इनकी लेखन शैली का विकास हुआ इसी का विश्लेषण किया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अपने जीवन का आरम्भ से वर्णन किया है। जन्म, शिक्षा एवं साहित्यिक जीवन को क्रमानुसार 'मेरा निर्माण' में लिखा है। इन्होंने संक्षिप्त रूप से जीवन के समस्त पहलुओं को रखा है। साहित्यिक रचनाओं के विषय पर इन्होंने प्रकाश डाला है। इस प्रकार इन द्वारा लिखे हुए अपने जीवन के विषय में कुछ पन्ने इनके साहित्यानुशीलन में पाठक को बहुत जानकारी मिल सकती है।

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने अपने जीवन की कुछ घटनाओं को जिनसे उनका व्यक्तित्व विशेष रूप से प्रभावित है पाठकों के सम्मुख रखा है। इसका शीर्षक उन्होंने 'मेरे जीवन के कुछ चित्र' रखा है।

इसी प्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी 'मैं कैसे लिखता हूँ' शीर्षक में अपने साहित्यिक जीवन का ही वर्णन किया है।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र सुमन ने इन सभी प्रमुख व्यक्तियों के लिखे हुए आत्मकथा सम्बन्धी लेखों का संकलन किया है। इनके अध्ययन से स्पष्ट है कि इन्होंने जीवन के [illegible]

---

१. जीवन स्मृतियाँ, सम्पादक क्षेमेन्द्र सुमन, पृ० १५[illegible]

समूह का विश्लेषण किया है। व्यक्तिगत जीवन को यह पूर्ण छोड़ गए हैं।

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी अपनी आत्मकथा 'परिव्राजक की प्रजा' संस्मरणात्मक शैली में लिखी है। संस्मरणों में लिखी हुई इस आत्मकथा का प्रकाशन काल १९५२ सन् है। इसका विस्तृत वर्णन मैंने 'संस्मरण' अध्याय में दिया है। फिर भी द्विवेदीजी ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन के दोनों पहलुओं का विश्लेषण किया है। 'बालमकाल' में शैशवावस्था का एवं उत्तरकाल में साहित्यिक जीवन को लिया है।

सन् १९५९ में उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा लिखे यात्रा, डायरी, संस्मरण एवं आत्तकथा सम्बन्धी लेखों का संकलन नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इसमे 'जीवनी' के नोट शीर्षक में अश्क जी ने अपने साहित्यिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है।

सन् १९६२ में अमर शहीद 'बिस्मिल' द्वारा जेल में फांसी के दो दिन पूर्व लिखी हुई आत्मकथा बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित करवाई। यह इसका द्वितीय संस्करण है। इसके प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस है। इस आत्मकथा के चार खण्ड हैं। आत्मचरित, स्वदेश प्रेम, स्वतन्त्र जीवन एवं वृहत संगठन। क्या भाषा और क्या भाव दोनों दृष्टियों से बिस्मिल की आत्मकथा एक अद्भुत ग्रंथ है। बिस्मिल ने अपने पूर्वजों का जो वृत्तान्त आरम्भ में दिया है वह बड़ा आकर्षक है। पुस्तक में स्पष्टवादिता है और अपने संगठन की त्रुटियों का जिक्र है और साथी-संगियों की कड़ी आलोचना भी है।[1] बिस्मिल के इस आत्मचरित के मुकाबले का ग्रंथ केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं, वरन् भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य में भी मुश्किल से मिलेगा।

संतराम बी० ए० सन् १९६३ मे संतराम बी० ए० की आत्मकथा प्राप्त होती है। अपने जीवन के छिहत्तर वर्षों के अनुभवों को लेखक ने इसमें वर्णित किया है। इसीलिए इसका नाम भी इन्होंने 'मेरे जीवन के अनुभव' दिया है। इन्होंने अपने समस्त जीवन को चौदह भागो में विभाजित किया है और फिर क्रमानुसार वर्णन किया है। जीवन के सभी पक्षों का विवेचन इनकी आत्मकथा में लक्षित होता है। आत्मकथा लेखक में जिस ईमानदारी और जिन्दादिली का होना आवश्यक है वह इनमे है जैसा कि इन्होंने स्वयं भी कहा है—

> "अपने जीवन के छिहत्तर वर्षों में मुझे जो सुखद-दुःखद अनुभव प्राप्त हुए हैं इन्हीं को मैंने ईमानदारी के साथ ज्यों का त्यों यहाँ लिखने का यत्न किया है।"[2]

जीवन की किसी भी घटना को लेखक ने छिपाया नहीं है। वर्णन में सत्यता एवं स्पष्टवादिता लक्षित होती है। इसके साथ ही लेखक ने 'साहित्यिक जीवन' शीर्षक में अपनी साहित्यिक सेवाओं का वर्णन किया है। यहाँ तक कि लेखक के व्यक्तित्व पर किन-किन व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा था उसका भी वर्णन इसमें पाया जाता है। अत्यन्त

---

१. सम्पादकीय बनारसीदास चतुर्वेदी।

२. मेरे जीवन के अनुभव, ले० संतराम, पृ० ६।

प्रभावशाली शैली में लेखक ने अपनी आत्मकथा लिखी है। इसीलिए प्राप्त श्रेष्ठ हिन्दी आत्मकथाओं में यह एक कही जा सकती है। क्या भाषा एवं क्या भाव दोनों ही दृष्टियों से यह सफल कही जा सकती है।

आचार्य चतुरसेन—सन् १९६३ में आचार्य चतुरसेन की 'मेरी आत्मकहानी' चतुरसेन साहित्य समिति ज्ञानधाम शाहदरा दिल्ली से प्रकाशित हुई। इसमें आचार्य जी ने अपने जीवन का पूर्ण विस्तृत रूप से वर्णन किया है। इस आत्मकथा में आचार्य जी के व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन का पूर्ण रूप से वर्णन है। आरम्भ में लेखक ने अपने माता-पिता एवं पूर्वजों के विषय में लिखा है। उसके बाद बाल्यावस्था का वर्णन है। विद्यार्थी जीवन का वर्णन लेखक ने स्पष्ट एवं रोचकपूर्ण ढंग से किया है। गृहस्थ जीवन की सभी समस्याओं का लेखक ने नग्न चित्र खींचा है। इसके पश्चात् लेखक ने अपने साहित्यिक जीवन का विकास लिखा है। जीवन में जिन-जिन व्यक्तियों से लेखक का सम्बन्ध रहा है, उन सभी का वर्णन किया है। आत्मकथा को पढ़ने के पश्चात् आचार्य जी की की स्पष्टवादिता का पता चलता है। गुण-कथन में ही वह सिद्धहस्त नहीं थे अपितु त्रुटियों को मानने में भी वह चतुर थे। गुण-दोषों का लेखक ने वर्णन ही नहीं किया अपितु उचित अनुसार विश्लेषण भी किया है। राजनैतिक एवं साहित्यिक विषयों पर भी लेखक ने निःसंकोच रूप से अपने विचार रखे हैं। अपने विषय में एवं अन्य व्यक्ति के विषय जो कुछ भी लेखक ने लिखा है वह निर्भीक स्वभाव का ही परिणाम है। व्यक्तिगत घटनाओं के वर्णन की अपेक्षा लेखक ने जहाँ बाह्य जीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित किया है वह अधिक प्रभावशाली बन पड़ा है। हिन्दी साहित्य में प्राप्त आत्मकथाओं में यह सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा कही जा सकती है। क्या भाषा एवं क्या भाव दोनों दृष्टियों से इसका महत्व कम नहीं है। इसमें केवल एक त्रुटि है कि यह अधिक विस्तृत है। अनावश्यक विस्तार प्रायः रोचक नहीं होता लेकिन फिर भी आचार्य जी की शैली प्रभावोत्पादक है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी आत्मकथा साहित्य प्रगति की ओर अग्रसर है। हिन्दी साहित्य में विस्तृत एवं पूर्ण आत्मकथा केवल आचार्य चतुरसेन की ही प्राप्त होती है और जितनी भी आत्मकथाएँ स्फुट एवं [illegible] रूप में प्राप्त होती हैं उनमें लेखकों के एक ही पक्ष का ज्ञान होता है। साहित्यिक जीवन के अतिरिक्त लेखक का व्यक्तिगत जीवन भी होता है [illegible] है। वही आत्मकथा सफल कही जा सकती है जिसमें जीवन के सभी पक्षों का [illegible] हो। इस दृष्टिकोण से आचार्य चतुरसेन की 'मेरी आत्मकहानी' ही [illegible] है। प्रकाशित आत्मकथाओं में से यही सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा है।

विभाजन

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित एवं प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर आत्मकथा साहित्य का विभाजन निम्न ढंग से हो सकता है —

(क) लेखकों के आधार पर

हिन्दी साहित्य में आत्मकथा लेखक केवल साहित्यिक व्यक्ति ही नहीं हैं प्रत्युत अनेक राजनैतिक एवं धार्मिक व्यक्तियों की आत्मकथाएँ भी प्राप्त होती हैं। यहाँ साहित्यिक व्यक्ति से अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जिन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास में अपनी कृतियों द्वारा विद्वता का परिचय दिया है। ऐसी श्रेणी में कवि, कथालेखक एवं आलोचकगण आते हैं।

कवि—हिन्दी आत्मकथा साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों ने अपनी आत्मकथा स्फुट रूप से निबन्धात्मक शैली में लिखी है। भारतेन्दु युग में स्वयं भारतेन्दु ने लिखने का प्रयास किया था। द्विवेदी युग में वियोगी हरि, मैथिलीशरण गुप्त एवं वर्तमान युग में सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, उदयशंकर भट्ट, निराला, सियारामशरण गुप्त एवं हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखी हुई आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं। इन कवियों ने अपनी आत्मकथाओं में अपने चरित्र का चित्रण पूर्ण ढंग से नहीं किया है। केवल कवि जीवन के विकास क्रम को ही समझाने का प्रयत्न किया है। कवि होने के कारण इनकी शैली भी विषयानुकूल हो गई है। कहीं-कहीं आत्मनिरीक्षण करते समय भावुक-से प्रतीत होते है। पंत की 'मेरा रचनाकाल' में शैली इसी प्रकार की है—

> "पर्वत प्रदेश के निर्मल चंचल सौंदर्य ने मेरे जीवन के चारों ओर अपने नीरव सौदर्य का जाल बुनना शुरू कर दिया था। मेरे मन के भीतर बरफ की उँची चमकीली चोटियाँ रहस्य भरे शिखरों की तरह उठने लगी थीं जिन पर खड़ा हुआ नीला आकाश रेशमी चंदोवे की तरह आँखों के सामने फहराया करता था। कितने ही इन्द्रधनुष मेरी कल्पना के पट पर रंगीन रेखाएँ खींच चुके थे, बिजलियाँ बचपन की आँखों को चकाचौंध कर चुकी थीं।"[1]

इस प्रकार इनका प्रत्येक पृष्ठ जहाँ यह अपनी रचनाओं के विषय में लिखते हैं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित लक्षित होता है।

आत्मकथा शैली का प्रधान गुण संक्षिप्तता एवं लाघवता का होना है तो इन कवियों की आत्मकथा में यह विशेष रूप से पाया जाता है क्योंकि किसी ने भी पूर्ण चरित्र को तो लिखा नहीं, थोड़े शब्दों में अधिक कह देने की प्रवृति ही इनमें विशेष रूप से पायी जाती है। इसीलिए इनके द्वारा लिखे हुए कुछ पृष्ठ ही बहुत उपयोगी हैं। महादेवी में यह प्रवृति विशेष रूप से है—आरम्भ में ही पाठक को इसका अनुभव हो जाता है—

> "अपने सम्बन्ध में क्या कहूँ ? एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधना पूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता

१. जीवन-स्मृतियाँ, सम्पादक क्षेमेद्र सुमन, पृ० १२९

से दूर, कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय किन्तु किसी वर्ग या सम्प्रदाय से न बंधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।[1]

अतः स्पष्ट है कि जीवन के जिस पक्ष को लेकर इन्होंने लिखा है उसमें इनकी पूर्ण ईमानदारी दृष्टिगोचर होती है। इनकी शैली भी परिपक्व एवं उत्कृष्ट है।

कथालेखक—कथालेखकों में से उपेन्द्रनाथ अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, मुंशी प्रेमचन्द एवं आचार्य चतुरसेन की आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं। इन कथालेखकों में आचार्य चतुरसेन के अतिरिक्त किसी ने भी अपूर्ण चरित्र का चित्रण नहीं किया। उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी अपने साहित्यिक जीवन के विषय में 'ज्यादा अपनी और कम परायी' में लिखा है। इसी प्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी 'मैं कैसे लिखता हूँ' में अपने साहित्य जीवन के विषय में लिखा है। इसमें इन्होंने कला पक्ष पर अधिक बल दिया है। मुंशी प्रेमचन्द ने भी व्यक्तिगत जीवन को कम ही लिखा है। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अपनी आत्मकथा संस्मरणों में 'परिव्राजक की प्रजा' नाम से लिखी है। इसमें इन्होंने 'बाल्यकाल' एवं उत्तर काल में जीवन के सभी पक्षों के विषय में लिखा है। इनकी शैली में इनका भावुक मन अधिक लक्षित होता है। कथा लेखकों की शैली में रोचकता अधिक पायी जाती है जैसे कि कहानी तभी उत्कृष्ट होती है यदि वह पाठक का मनोरंजन कर सके। तो इसी प्रकार आत्मकथा में भी यही है। इन लेखकों ने आत्मकथा भी ऐसे ढंग से लिखी है कि वह पाठक का मनोरञ्जन कर सके। मुंशी प्रेमचन्द ने तो व्यक्तिगत घटना का वर्णन करते समय वार्तालाप भी ज्यों का त्यों लिखा है। इसमें और भी रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता आ गयी है—

"एक महीने के बाद मैं फिर मि० रिचर्डसन से मिला और सिफारिशी चिट्ठी दिखलाई। प्रिंसिपल ने मेरी तरफ तीव्र नेत्रों से देखकर पूछा, "इतने दिन से कहां थे?"

"बीमार हो गया था।"

"क्या बीमारी थी?"

मैं इस प्रश्न के लिए तैयार न था। अगर ज्वर बताता हूँ तो शायद साहब झूठा समझें—मैंने कहा—

"पैल्पिटेशन आफ हार्ट सर।[2]"

मेरा यहां कहने का अभिप्राय यह है कि इन कथालेखकों ने भी [illegible] इन्होंने उपन्यास एवं कहानियों के लिखने में [illegible] आत्मकथा में भी [illegible] अनुसार प्रयोग किया है। इससे यह पाठक के सम्मुख और [illegible]

१. जीवन-स्मृतियाँ, सम्पादक, क्षेमचन्द्र 'सुमन', पृ० १४७

२. मेरा जीवन सार, ले० मुंशी प्रेमचन्द, 'हंस' का आत्मकथा अंक, सन् १९३२

से अपने चरित्र को रख सकते हैं। इन कथालेखकों में से केवल आचार्य चतुरसेन ही अपने पूर्ण व्यक्तित्व को स्पष्ट कर सके हैं। इनकी आत्मकहानी में वे सभी विशेषताएँ हैं जोकि एक आत्मकथा लेखक की शैली में होनी चाहिए।

आलोचक—आलोचकों में से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ॰ श्यामसुन्दरदास, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ॰ रामकुमार वर्मा एवं बाबू गुलाबराय द्वारा लिखी हुई आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें केवल डॉ॰ श्यामसुन्दरदास की आत्मकथा ही हमें विस्तृत रूप से प्राप्त होती है बाकी आलोचकों ने स्फुट रूप से ही अपने विषय में लिखा है। आलोचक होने के कारण इनकी आत्मकथाओं में आत्मविश्लेषण, आत्म-निरीक्षण एवं आत्मविवेचन अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। अपने गुण-दोषों का वर्णन करना ही ये अपना ध्येय नहीं समझते प्रत्युत उन पर टीका टिप्पणी भी करते हैं। बाबू गुलाबराय इस विषय में सिद्धहस्त हैं। वह अपने जीवन की छोटी-से-छोटी घटना का वर्णन भी इस ढंग से करते हैं कि उनका व्यक्तित्व पाठक को स्पष्ट हो जाए। उन्होंने जिस ईमानदारी और सचाई से आत्मविश्लेषण किया है वह अभी तक कोई भी आलोचक नहीं कर सका है। एक स्थान पर यह लिखते हैं—

> "मैं तर्कशास्त्र के विद्यार्थियों में अग्रगण्य था। इस विषय के अवैतनिक ट्यूशन करने का मुझे व्यसन-सा हो गया था। कुछ को तो स्नेहवश पढ़ाता था और कुछ को केवल शान जिताने के लिए क्योंकि शान जताने के लिए मेरे पास और कुछ न था। कपड़ों के नाम से पट्टू का कोट था और सामान के नाम पर एक टूटा चीड़ का बक्स। फिर शान किस चीज की दिखाता!"[1]

कहीं-कहीं तो इन आलोचकों ने बड़े गाम्भीर्य से अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण किया है। पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी की शैली में अधिक गम्भीरता है—

> "मैं अपने जीवन को दो भागों में विभक्त कर सकता हूँ। एक कर्म जीवन है और दूसरा भाव जीवन। एक तथ्य का राज्य है और दूसरा कल्पना का। मैंने कभी तथ्य के राज्य में विचरण किया है और कभी कल्पना के राज्य में। दोनों में मैंने सुख-दुःख, आशा-निराशा और उत्थान-पतन का अनुभव किया है। दोनों मेरे लिए समान रूप से सत्य हैं।"[2]

डा॰ श्यामसुन्दरदास की आत्मकहानी तो हिन्दी भाषा तथा साहित्य की उत्पत्ति एवं विकास को समझने के लिए विशेष रूप से सहायक है। इसमें इन्होंने अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को ही विशेष रूप से लिया है।

राजनैतिक एवं धार्मिक पुरुष—हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसी आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं जो राजनैतिक एवं धार्मिक पुरुषों की हैं। राजनैतिक पुरुषों में महात्मा

---

१. मैं और मेरी कृतियाँ, ले॰ गुलाबराय, पृ॰ ९

२. अपनी बात, ले॰ पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, पृ॰ ८९
पुस्तक 'जीवन स्मृतियाँ', सम्पादक क्षेमेन्द्र सुमन

गाँधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं डा० राजेन्द्रप्रसाद प्रमुख हैं। राजनैतिक नेताओं का जीवन भी एक संघर्ष का जीवन रहता है। उत्थान और पतन उनके जीवन के दो समान महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। भाग्य का झकोरा उन्हें किस समय किस पक्ष की ओर से लाकर पटकता है, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। इन लोगों की आत्मकथाओं का सौन्दर्य भाग्य के इसी उत्थान और पतन की कहानी को सचाई से व्यक्त करने में निहित रहता है। इन महापुरुषों द्वारा लिखी हुई सभी आत्मकथाएँ इसी श्रेणी में आती हैं।

कुछ धार्मिक पुरुषों द्वारा लिखी हुई आत्मकथाएँ भी प्राप्त होती हैं। हरिभाऊ उपाध्याय की 'साधना के पथ पर' एवं भवानीदयाल संन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा' इसी श्रेणी में आती है। संसार में बहुत से महान् व्यक्ति हुए हैं जो अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में कुल अधिक उच्छृंखल रहे हैं किन्तु किन्हीं विशेष प्रेरणाओं और परिस्थितियों के फलस्वरूप उनके जीवन की गतिविधि बदल गई और वे उच्चकोटि के धार्मिक व्यक्ति बन गए। इस कोटि के व्यक्तियों द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में हमें आत्मनिवेदन और आत्मविगर्हणा के साथ-साथ उन परिस्थितियों और घटनाओं का मार्मिक चित्रण भी मिलता है, जिन्होंने उनके जीवन की गतिविधि को बदलने में योग दिया और उनके जीवन को सफल जीवन बना दिया। ये सभी आत्मकथाएँ इसी कोटि की हैं।

(ख) शैली के आधार पर

प्रत्येक लेखक का अपनी विषयवस्तु को सजाने का अलग-अलग ढंग होता है। हिन्दी आत्मकथा साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि विभिन्न लेखकों ने विभिन्न शैलियों में अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं।

निबन्धात्मक शैली में लिखी हुई आत्मकथाएँ—हिन्दी साहित्य में निबन्धात्मक शैली में अनेक साहित्यिक लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं। गुलाबराय, महावीरप्रसाद द्विवेदी, मुन्शी प्रेमचन्द एवं डा० श्यामसुन्दरदास आदि लेखकों ने इस शैली को अपनाया है। इस शैली में एक निबन्ध [illegible] अपने विषय में लिखा है। डॉ० श्यामसुन्दरदास की 'मेरी आत्म कहानी' इसी शैली में लिखी गई है। इस शैली की यह विशेषता है कि यदि आत्मकथा के किसी [illegible] को निकाल दिया जाय तो बाकी का भाग स्वतन्त्र [illegible] [illegible] [illegible] एक भाग दूसरे से और दूसरा तीसरे से सम्बद्ध [illegible] [illegible] द्वारा लिखी गई आत्मकथा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] की आत्मकथा के [illegible] [illegible] उन्होंने अलग-अलग निबन्धों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] शैली में लिखी हुई आत्मकथाएँ—[illegible] [illegible]

है जिन्होंने आत्मकथाएँ [illegible] [illegible] [illegible]

द्विवेदी, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि लेखकों ने किया है। द्विवेदीजी की पूर्ण आत्मकथा 'परिव्राजक की प्रजा' इसी शैली में लिखी गई है। इस शैली की यह विशेषता है कि इसमें लेखक उन्हीं घटनाओं का वर्णन करता है जो कि विशेष रूप से पाठक को प्रभावित करती हैं। संतराम बी० ए० ने भी अपनी अपनी आत्मकथा 'मेरे जीवन के अनुभव' इसी शैली में लिखी है।

डायरी शैली में लिखी हुई आत्मकथाएँ—हिन्दी साहित्य में केवल कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की आत्मकथा इस शैली में लिखी गई है। मुंशीजी ने प्रत्येक जीवन की घटना का वर्णन करते समय समय, स्थान और सन् को दिया है। इसके अतिरिक्त राहुल सांस्कृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा' में भी इसका थोड़ा-बहुत प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

आत्मकथात्मक जीवन चरित शैली में लिखी हुई तो केवल एक ही साहित्यिक व्यक्ति आचार्य चतुरसेन की 'मेरी आत्मकहानी' प्राप्त होती है। इसमें आचार्यजी ने ऐतिहासिक शैली का प्रयोग किया है। आदि से अन्त तक सम्बद्ध रूप में इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लिखा है। अपनी जीवनी को अर्थात् जीवन की कुछ घटनाओं का स्पष्ट रूप से पाठकों के सम्मुख रखने के लिए लेखक ने विभिन्न लेखकों से जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह भी अपनी आत्मकथा में दिया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा लेखक विभिन्न शैलियों का प्रयोग कर सकता है।

गाँधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं डा० राजेन्द्रप्रसाद प्रमुख हैं। राजनैतिक नेताओं का जीवन भी एक संघर्ष का जीवन रहता है। उत्थान और पतन उनके जीवन के दो समान महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। भाग्य का झकोरा उन्हें किस समय किस पक्ष की ओर ले जाकर पटकता है, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। इन लोगों की आत्मकथाओं का सौन्दर्य भाग्य के इसी उत्थान और पतन की कहानी को सचाई से व्यक्त करने में निहित रहता है। इन महापुरुषों द्वारा लिखी हुई सभी आत्मकथाएँ इसी श्रेणी में आती हैं।

कुछ धार्मिक पुरुषों द्वारा लिखी हुई आत्मकथाएँ भी प्राप्त होती हैं। हरिभाऊ उपाध्याय की 'साधना के पथ पर' एवं भवानीदयाल सन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा' इसी श्रेणी में आती हैं। संसार में बहुत से महान् व्यक्ति हुए हैं जो अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में कुछ अधिक उच्छृंखल रहे हैं किन्तु किन्हीं विशेष प्रेरणाओं और परिस्थितियों के फलस्वरूप उनके जीवन की गतिविधि सहसा बदल गई और वे उच्चकोटि के धार्मिक व्यक्ति बन गए। इस कोटि के व्यक्तियों द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में हमें आत्मनिवेदन और आत्मविगर्हणा के साथ-साथ उन परिस्थितियों और घटनाओं का मार्मिक चित्रण भी मिलता है, जिन्होंने उनके जीवन की गतिविधि को बदलने में योग दिया और उनके जीवन को सफल जीवन बना दिया। ये सभी आत्मकथाएँ इसी कोटि की हैं।

(ख) शैली के आधार पर

प्रत्येक लेखक का अपनी विषयवस्तु को सजाने का अपना-अपना ढंग होता है। हिन्दी आत्मकथा साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि विभिन्न लेखकों ने विभिन्न शैलियों में अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं।

निबन्धात्मक शैली में लिखी हुई आत्मकथाएँ—हिन्दी साहित्य में निबन्धात्मक शैली में अनेक साहित्यिक लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं। गुलाबराय, महावीरप्रसाद द्विवेदी, मुंशी प्रेमचन्द एवं डा० श्यामसुन्दरदास आदि लेखकों ने इस शैली को अपनाया है। इस शैली में एक निबन्ध की तरह से लेखकों ने अपने विषय में लिखा है। डॉ० श्यामसुन्दरदास की 'मेरी आत्मकहानी' इसी शैली में लिखी गई है। इस शैली की यह विशेषता है कि यदि आत्मकथा के किसी एक भाग को निकाल दिया जाय तो बाकी का भाग स्वतन्त्र रूप से अपना अस्तित्व रखता है। इसका एक भाग दूसरे से और दूसरा तीसरे से सम्बद्ध नहीं होता [illegible] द्वारा लिखी हुई आत्मकथा है। इसका प्रत्येक निबन्ध अपना [illegible] रखता है। ऐसे ही [illegible] साहब की आत्मकथा के [illegible] हैं। इन्होंने पृथक्-पृथक् निबन्धों में भिन्न-भिन्न जीवन के पहलुओं को [illegible] है।

संस्मरणात्मक शैली में लिखी हुई आत्मकथाएँ [illegible] हैं जिन्होंने आत्मकथाएँ संस्मरणों के रूप में लिखी हैं। इसका [illegible]

द्विवेदी, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामवृक्ष वेनीपुरी आदि लेखकों ने किया है। द्विवेदीजी की पूर्ण आत्मकथा 'परिव्राजक की प्रजा' इसी शैली में लिखी गई है। इस शैली की यह विशेषता है कि इसमें लेखक उन्हीं घटनाओं का वर्णन करता है जो कि विशेष रूप से पाठक को प्रभावित करती हैं। संतराम बी० ए० ने भी अपनी अपनी आत्मकथा 'मेरे जीवन के अनुभव' इसी शैली में लिखी है।

डायरी शैली में लिखी हुई आत्मकथाएँ—हिन्दी साहित्य में केवल कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की आत्मकथा इस शैली में लिखी गई है। मुंशीजी ने प्रत्येक जीवन की घटना का वर्णन करते समय समय, स्थान और सन् को दिया है। इसके अतिरिक्त राहुल सांस्यकृत्ययान की 'मेरी जीवन यात्रा' में भी इसका थोड़ा-बहुत प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

आत्मकथात्मक जीवन चरित शैली में लिखी हुई तो केवल एक ही साहित्यिक व्यक्ति आचार्य चतुरसेन की 'मेरी आत्मकहानी' प्राप्त होती है। इसमें आचार्यजी ने ऐतिहासिक शैली का प्रयोग किया है। आदि से अन्त तक सम्वद्ध रूप में इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लिखा है। अपनी जीवनी को अर्थात् जीवन की कुछ घटनाओं का स्पष्ट रूप से पाठकों के सम्मुख रखने के लिए लेखक ने विभिन्न लेखकों से जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह भी अपनी आत्मकथा में दिया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा लेखक विभिन्न शैलियों का प्रयोग कर सकता है।

मनुष्यता सत्य रही है।[1] मानों जो धूलि के रत्न हैं और जिन्हें किसी पारखी ने पहचाना। प्रकाशचन्द्र गुप्ता ने भी 'पुरानी स्मृतियाँ' पुस्तक में उन व्यक्तियों के चित्र बनाए हैं जिनके बीच उनका शैशव खेला है। कन्हैयालाल मिश्र ने भी 'भूले हुए चेहरों' की याद को रेखाओं में बाँधा है।

यह तो हुई विषय की वास्तविकता, इसके पश्चात् वर्ण्य विपय में यथार्थता से अभिप्राय है प्रत्येक बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित करना। कौशल्या अश्क ने अपने पति अश्क के विपय में स्पष्ट रूप से लिखा है

> अश्कजी का स्वभाव ऐसे शान्तिप्रिय व्यक्ति का-सा नहीं जो पहाड़ की चोटी पर पहुँच कर उस पर डेरा डोल ले, वल्कि ऐसा चंचल राही है जिसको कभी पहाड़ी के शिखर पसन्द हैं कभी गहरी घाटियाँ।...उन्होंने अतीव के कड़वे प्याले भी पिये हैं और मीठे भी, वाहुल्य भी देखा है और अभाव भी—और न जाने किन जन्मजात संस्कारों और माता-पिता के किन गुण-दोषों और दूसरी सामाजिक अथवा मानसिक विपमताओं के कारण उनका स्वभाव ऐसी आत्म-विरोधी पराकाष्ठाओं में घड़ी के पेंडुलम की भाँति चलता रहता है।"[2]

इस प्रकार लेखक को पूर्ण ईमानदारी के साथ अपने विपय का वर्णन करना चाहिए। रेखाचित्र का यही गुण है जिससे हम रेखाचित्र को आत्मकथात्मक कहते हैं।

अन्य महत्वपूर्ण गुण जिसका विषय वर्णन में होना उचित है वह है रोचकता। लेखक को अपने विषय का इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे वह पाठक को रुचिकर प्रतीत हो। नीरस निषय को कोई भी व्यक्ति पढ़ने के लिए तैयार नहीं होता।[3] 'स्केच' का साहित्यिक मूल्य और सुन्दरता केवल सामयिक अथवा स्थानीय न हो वरन् प्रत्येक युग में और प्रत्येक जगह उसकी रोचकता बनी रहे और वह नीरस न हो जाए।[4] वैसे तो सभी लेखकों के रेखाचित्रों में यह गुण है पर प्रेमनारायण टंडन के रेखाचित्रों में तो विशेष रूप से यह गुण है। 'कूकी' का वर्णन आरम्भ से ही अत्यन्त रोचकपूर्ण ढंग से किया है—

> "हमारे प्रेस में काम करने वाले महाजन का नाम 'कूकी' है। यह विचित्र नाम उसके माता-पिता का दिया हुआ नहीं है। उन्होंने तो बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उसका नाम रक्खा था भगवतीप्रसाद। उसके सगे-सम्बन्धी जो व्याकरण के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ थे, स्त्रीलिंगवाची 'भगवती' शब्द से ही अपना काम निकालने लगे। इस में भी कम से कम इतनी सच्चाई तो थी कि दिन में आठ-दस वार 'भगवती' का शुभ नाम मुँह से निकलता था और वहुत संभव है, किसी को यह आशा भी हो कि चारों ओर मँडराने वाले यमदूतों से

१. अतीत के चलचित्र
२. दो धारा—लेखक उपेन्द्रनाथ अश्क, कौशल्या अश्क, प्रथम संस्करण, पृ० २७
३. 'स्केच' एक अध्ययन, ले० घनश्यामदास सेठी, अजन्ता, जनवरी, १९५५
४. वही

किसी समय यदि रक्षा करने की आवश्यकता होगी तो इस नाम की [illegible] हमारी अवश्य रक्षा करेगी जैसे अजामिल की सहायता विष्णु के दूतों ने नारायण नाम सुनते ही की थी ।"[1]

स्पष्टता एवं रोचकता के पश्चात् वर्ण्य विषय में संक्षिप्तता का होना आवश्यक है । रेखाचित्रकार की सीमाएँ निश्चित हैं । उसे कम से कम शब्दों में सजीव रूप-विधान और छोटे से छोटे वाक्य से अधिक तीव्र और मर्मस्पर्शी भाव-व्यंजना करनी पड़ती है ।[2] रेखाचित्र की विशेषता विस्तार में नहीं तीव्रता में होती है ।[3] इस प्रकार प्रत्येक लेखक को संक्षिप्त रूप से ही वर्णन करना चाहिए । पद्मसिंह शर्मा ने अकबर के समस्त व्यक्तित्व को अत्यन्त संक्षिप्त रूप से खींचा है—

अकबर साहब मान-मर्यादा और पद-प्रतिष्ठा की दृष्टि से बहुत बड़े आदमी थे । जज के ओहदे से रिटायर हुए थे । अंग्रेजी के विद्वान थे । अंग्रेजी सभ्यता के सब रंग देख चुके थे पर रहन-सहन और आचार-व्यवहार में पक्के स्वदेशी । अपनी संस्कृति के उपासक और प्राचीनता के प्रेमी थे । स्वभाव से सरल और मिलनसार थे ।"[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वही रेखाचित्र उच्चकोटि के माने जायेंगे जिनके विषय वर्णन में स्पष्टवादिता, रोचकता, संक्षिप्तता एवं स्वाभाविकता आदि गुण होते हैं ।

चरित्रोद्घाटन—रेखाचित्र साहित्य का यह दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । रेखाचित्र में लेखक का उद्देश्य न तो किसी अन्य व्यक्ति के चरित्र को चित्रित करना है और न उसका चरित्र विश्लेषण अपितु वह अपनी रेखाओं से उनके चरित्र का केवल उद्घाटन करता है । चरित्रोद्घाटन ही रेखाचित्रकार अपने रेखाचित्र में करता है । जिस भी व्यक्ति का वह रेखाचित्र लिखता है उसके जीवन से सम्बन्धित छोटी-छोटी घटनाओं द्वारा वह उसके चरित्र पर प्रकाश डालता है । इन घटनाओं को लेखक ऐसे ढंग से खींचता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में स्वयं ज्ञान हो जाता है । इसका कारण यह है कि रेखाचित्र में प्रधानता संकेतों की होती है, [illegible] व्यंजना की जाती है । कौशल्या अश्क ने अपने पति [illegible] के स्वभाव एवं व्यक्तित्व के विषय में एक छोटी-सी घटना द्वारा पाठकों के सम्मुख रख दिया है—

"उनके इस [illegible] स्वभाव का एक दिलचस्प प्रमाण मुझे अभी [illegible] फिर मिला । दिल्ली ही की बात है मैंने इन्द्रप्रस्थ [illegible] ली थी । लड़कियों की परीक्षाएँ हो चुकी थीं और [illegible]

1. रेखाचित्र, सं० प्रेमनारायण टंडन, पृ० ११
2. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, गोविन्द त्रिगुणायत
3. हिन्दी साहित्य कोश
4. पद्मपराग—पं० पद्मसिंह शर्मा, पृ० [illegible]

पड़ा था। उन्हीं दिनों नौकर भाग गया। किसी प्रकार रात का खाना पका, कपड़े-बर्तन आदि छोड़ मैं पेपर देखने लगी और रात के दो बजे तक देखती रही—उस दिन कुछ देर से उठी—खुशी से भागी-भागी अन्दर गई तो देखा रसोई घर में बाप-बेटे बैठे-बैठे बर्तन मल रहे हैं और अश्कजी अपने लड़के को बर्तन मलने की कला में निपुण बना रहे हैं।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रभावोत्पादक घटनाओं के चित्रण से भी चरित्र का उद्घाटन रेखाचित्रकार करता है। कई बार ऐसा होता है कि रेखाचित्रकार जब किसी व्यक्ति के बाह्य व्यक्तित्व का परिचय पाठक को देता है तो वह भी उसके चरित्र के विषय में संकेत होता है। गंगाप्रसाद पांडेय ने प्रथम दर्शन से ही मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व के विषय में जान लिया था। उसी के वर्णन से पाठक भी उनके चरित्र विषय में जान सका है—

"प्रथम दर्शन से ही मैंने समझ लिया कि गुप्तजी ज्ञान प्रतिभा चरित्र और वय में बड़े होकर भी गुरु गम्भीर नहीं हो पाए। उनमें शारीरिक शिथिलता-जनित सयानापन नहीं आ सका, उल्टे बालकों-जैसे विनोदी, सरल सहज और निश्छल एवं निर्विकार होते जाते हैं—हास से स्निग्ध कर देते हैं, सारल्य से लुभा लेते हैं, ममत्व से मोह लेते हैं। सवा सोलह आने वे ऐसे हैं। डाक्टरी की उपाधि पाने पर भी वैसे हैं।"[2]

चरित्र का उद्घाटन रेखाचित्रकार कई बार अपनी चित्रात्मक शैली द्वारा भी प्रकट करता है। वह ऐसे सुन्दर ढंग से कुछ ही पंक्तियों में व्यक्ति का चित्र खींचता है कि उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की एक झाँकी-सी प्रस्तुत हो जाती है।

चरित्रोद्घाटन में रेखाचित्रकार केवल वर्णित व्यक्ति के चरित्र को वर्णित करने में ही सतर्क नहीं रहता अपितु उसे अपने व्यक्तित्व का भी ध्यान रखना पड़ता है। इसमें आत्मतत्व और परतत्व का अद्भुत सामंजस्य होता है। महादेवी के रेखा-चित्रों की मर्मस्पर्शता जहाँ जगत की मुर्झाई कलियों तथा 'आँसू लड़ियों' के कारण है वहाँ महादेवी की गीली पलकों में उनकी भावुक करुणा को भी नहीं भूला जा सकता। महत्व दोनों का है—महादेवी की करुणा ही तथाकथित क्षुद्रों की निहित महानता को अनावृत कर सकी है। इसी अर्थ में शब्दचित्र को वैयक्तिक कला कहा जा सकता है वैसे रेखाचित्र कोई लेखक का अपना नहीं होता, किसी और का ही होता है। इसलिए रेखाचित्र में सामान्यतः आत्मतत्व तथा परतत्व का अद्भुत सामंजस्य होता है—यह अन्तर्बाह्य चित्र होता है।[3]

---

१. दो धारा प्रथम संस्करण, १६४६, लेखक उपेन्द्रनाथ अश्क, कौशल्या अश्क, पृ० २५।

२. रेखाचित्र, ले० प्रेमनारायण टंडन, पृ० ८८।

३. रेखाचित्र कला—श्री सत्यपाल चुघ, सम्मेलन पत्रिका कला अंक, वि० २०१५।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लेखक अपने चरित्र [illegible] का चित्र स्पष्ट एवं रमणीय ढंग से वर्णन करता है। चरित्र उद्घाटन के लिए वह मनो-वैज्ञानिकता को भी अपना सकता है। प्रत्येक रेखाचित्र में लेखक के व्यक्तित्व की आभा भी होती है। एक प्रभावशाली घटना के वर्णन से सम्पूर्ण चरित्र का उद्घाटन करना रेखाचित्र साहित्य की अपनी विशेषता है।

देशकाल वातावरण—रेखाचित्र साहित्य का यही एक तत्त्व है जो इसे [illegible] की अन्य विधाओं से पृथक करता है। रेखाचित्र का सम्बन्ध देश से होता है, [illegible] की संगति के लिए व्यंग्य रहता है।[1] क्योंकि वर्ण्य विषय किसी स्थान विशेष में [illegible] रहता है, उसके आस-पास की कुछ परिस्थितियाँ होती हैं। ये पार्श्ववर्ती भाग [illegible] नहीं होते हैं और वर्ण्य विषय के साथ नित्य संपृक्त रहते हैं। उनके बिना [illegible] वस्तु का अस्तित्व गोचर नहीं हो सकता। रेखाचित्रकार उन स्थायी [illegible] वाले अंशों का वर्णन करता है।[2] 'चान्सलर साहब की आमद' रेखाचित्र में [illegible] ने यूनिवर्सिटी कम्पाउण्ड का जो वर्णन किया है वह इसी बात का प्रमाण है कि रेखाचित्रकार का सम्बन्ध देश से ही है—

"यूनिवर्सिटी कम्पाउण्ड में सब जगह मोटरें ही मोटरें दिखाई दे रही थीं। एक से एक नई बिल्कुल लेटेस्ट मॉडल की चमाचम चमकती हुई [illegible] सुबुक मोटरें। सजे हुए फाटक के भीतर घुसते ही रोशनी की [illegible], रंग-बिरंगे कुमकुमों की झालर रास्ते के दोनों तरफ दूर तक चली गई थी। [illegible] सब इन्हीं रंगीन कुमकुमों से जगमग थे—हाल का तो कुछ [illegible]। जो हाल खास इसी काम के लिए बनवाया गया है, विशिष्ट [illegible] स्वागत सत्कार के लिए उसकी शान का क्या कहना। [illegible] दुरुस्त ऐसे कि लखनऊ का इमामबाड़ा याद आ जाए।"[3]

[illegible] निरांकन के लिए पट चाहिए। वैसे ही शब्दचित्रकार का वर्ण्य भी किसी स्थान विशेष पर आधारित होता है। वस्तु या पात्र की गोचरता के लिए [illegible] है। इसके अभाव की शब्दचित्र में गुंजाइश नहीं। वस्तुतः [illegible] के लिए कुछ नैसर्गिक पीठिका [illegible] होता है, शब्दचित्रकार का आधार [illegible] हिन्दी साहित्य में कई ऐसे रेखाचित्रकार हुए हैं जिन्होंने स्थान विशेष के [illegible] रेखाचित्र लिखे हैं। इनमें श्री [illegible] उल्लेखनीय हैं। 'कानपुर' रेखाचित्र में श्री [illegible] वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है—

"[illegible]

[illegible]

---

1. [illegible], पृ० [illegible]
2. वही
3. चान्सलर साहब की आमद [illegible]

दुकानें अधिकतर जूतों और चमड़े की अन्य चीजों की हैं किन्तु हर तरह की पहनने-ओढ़ने की चीजें भी यहाँ प्राप्य हैं······क्लर्क बैठे-बैठे लेजर और जरनल लिखा करते हैं।"[१]

यही नहीं 'लाहौर' रेखाचित्र में संतराम ने शीश महल का वर्णन भी रोचक-पूर्ण शैली में किया है—

"यहाँ सफेद सीमेंट में भिन्न-भिन्न आठ वर्गों के छोटे काँच जड़कर विचित्र चित्रकारी की गई है। इन काँचों के चमकने से एक बड़ा ही उज्जवल और शोभायुक्त दृश्य देख पड़ता है······शाही बुर्ज पर चढ़कर देखने से एक बहुत मनोहर दृश्य देख पड़ता है। नगर की भीड़-भाड़ और चहल-पहल तथा तंग और टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ उसके मन्दिरों और गिरजों के चमकते हुए श्रृंग और मसजिदों के उभरते हुए गुंबद दर्शक के मन को मोह लेते हैं।"[२]

इधर हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे लेखक हुए है जिन्होंने यात्रा सम्बन्धी रेखा-चित्र लिखे हैं। ऐसे लेखकों में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का नाम उल्लेखनीय है। इनके ये रेखाचित्र 'अरे यादावर रहेगा याद' में संग्रहीत हैं। कुणालस्तूप तक्षशिला का वर्णन दृष्टव्य है—

"कुणालस्तूप उसी स्थान पर बनाया गया बताया जाता है जहाँ विमाता तिष्यरक्षिता के दुश्चक्र से कुणाल की आँखें फोड़ दी गई थीं। देव की विडम्बना है कि इसी स्थान से समूची नगरी का और नीचे की उपत्य का और नदी का पूरा दृश्य दीखता है। ··· कुणालस्तूप से लगभग पाँच मील भल्लड़स्तूप है, जिसके साथ में विहार में सौत्रान्तिक कुमारलब्ध ने वास किया था।"[3]

अतः विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्र में देश से अभिप्राय नगर स्थान विशेष से है। इसमें लेखक उस पट को चित्रित करता है जिस पर रेखांकित करना चाहता है, काल तो इसमें व्यंग्य रूप से ही रहता है।

जहाँ तक वातावरण का प्रश्न है वातावरणप्रधान रेखाचित्रों में भी मानव चरित्र के अन्तः रहस्यों की गुत्थियाँ ही सुलझाई जाती हैं। इसमें मनुष्य की किसी एक भावना को ही अनुरंजित और अनुप्राणित करके अनेक घटनाओं द्वारा पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। सारा प्रयत्न उसी अनुभूति को उभारता है। उस भावना को निकाल देने पर उस रेखाचित्र में कुछ भी शेष नहीं रहता है। बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'बन्धुवर नवीनजी' नामक रेखाचित्र में कई घटनाओं द्वारा श्री नवीन की संकटग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करने की मनोवृत्ति का उद्घाटन किया है। नवीन के ड्रायवर और स्वयं लेखक आपसी वार्तालाप द्वारा अनेक भूतकालिक घटनाओं

---

१. माधुरी, १९२५ ई०, पृ० ४९२

२. माधुरी

३. अरे यादावर रहेगा याद, ले० वात्स्यायन, पृ० ४७

का रोचक और मार्मिक वर्णन करते हुए उस भाव को पुष्ट करते चले जाते हैं।

फिर भी कुछ भी हो कहीं-कहीं सांकेतिक रूप में हमें तत्कालीन परिस्थितियों के विषय में वर्णन मिल ही जाता है। आधुनिक समाज की त्रुटियों का दिग्दर्शन [illegible] ने 'हिन्दू नारी' रेखाचित्र में कैसी विद्वता से किया है—

> "फिर भी वह जीना चाहती है। उसके पास पैसा नहीं है उसका सम्मान नहीं है कोई उसकी बात पूछने वाला नहीं है फिर भी वह जीना चाहती है......वह जीना चाहती है अपने उस हिन्दू समाज के लिए जो उसके भरण-पोषण का उसके सुख सन्तोष का, उसकी शांति और मर्यादा का रक्षक होकर भी उसकी रक्षा नहीं करना चाहता—सब-कुछ देखते-सुनते भी जो आँखें मूँद लेने में कानों में तेल डालने में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझता है।"[1]

इसी प्रकार लोगों के 'हिन्दी लेखक' के प्रति क्या विचार हैं उसका [illegible] वर्णन भी इन्होंने किया है—

> "पर इस व्यावसायिक जगत में उनकी पूँजी का क्या मूल्य है? उनके प्राणों के प्राण को, उनके जीवन के सार को, यह व्यावसायिक जगत किन दामों में खरीदना चाहता है? संक्षेप में इसका उत्तर यही है कि भौतिक संघर्ष में व्यस्त सभ्य मानव समाज शरीर के रक्त से लिखी हुई पंक्तियों का मूल्य कौड़ियों में आँकता है। ऐसी दशा में उनकी आर्थिक स्थिति सर्वथा शोचनीय है तो आश्चर्य ही क्या है?"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रेखाचित्रों में देश का ही चित्रण प्रधान रूप से होता है। तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण हमें सांकेतिक रूप से ही प्राप्त होता है।

उद्देश्य—इसमें लेखक की उस सामान्य या विशिष्ट जीवनदृष्टि का विवेचन होता है जो उसकी कृति में कथावस्तु का विन्यास, पात्रों की योजना, वातावरण के प्रयोग आदि में सर्वत्र निहित पाई जाती है। इसे लेखक का जीवन-दर्शन अथवा उसकी जीवनदृष्टि जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना कह सकते हैं। [illegible] कृतियों को छोड़कर जिनकी रचना का उद्देश्य मन-बहलाव या मनोरंजन मात्र होता है, सभी कलाकृतियों में लेखक की कोई विशेष विचारधारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में देखी जा सकती है। बिना इसके साहित्यिक कृतियाँ प्रयोजनहीन और व्यर्थ होती हैं।[3]

जहाँ तक रेखाचित्र साहित्य का प्रश्न है इसके लिखने का उद्देश्य [illegible] से पृथक् है। रेखाचित्रकार का प्रमुख लक्ष्य होता है [illegible] विशेष [illegible] बाह्य और अन्तस्तर दोनों ही के मार्मिक एवं संवेदनशील तत्त्वों को [illegible] प्रस्तुत कर देना।[4]

---

1. रेखाचित्र, डॉ० प्रेमनारायण टंडन, पृ० [illegible]
2. रेखाचित्र, प्रेमनारायण टंडन, पृ० [illegible]
3. [illegible] समीक्षा के सिद्धान्त, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० [illegible]
4. [illegible], डॉ० [illegible], पृ० [illegible]

रेखाचित्र की संक्षिप्त परिधि में जो कुछ वर्णित होता है उसमें जीवन की अभिव्यक्ति हो जाती है। यदि वर्ण्य विषय वस्तु या प्राणी है तो मानव जीवन के साथ उसके सम्बन्ध पर प्रकाश डालना अनिवार्य हो जाता है। रेखाचित्रों में किसी ऐसी वस्तु का चित्र उपस्थित करना उपादेय नहीं जिसके साथ मानव ने अभी तक अपना किसी भी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया। यह सम्बन्ध व्यावहारिक भी हो सकता है, दार्शनिक या साहित्यिक तथा रागात्मक भी। इसी सम्बन्ध की प्रेरणा रेखाचित्र के मूल में निहित रहती है। यदि वर्ण्य विषय कोई व्यक्ति है तो उसका जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध होने से रेखाचित्र में जीवन व्याख्या अनायास ही आ जाती है, लेखक अपनी अनुभूतियों, मानसिक प्रतिक्रियाओं, मान्यताओं, आदर्शों को उसी व्यक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगता है।[1]

चित्रण की कुशलता कला का आदर्श है। जीवनोन्नायक तत्त्वों का उद्बोधन चित्रण का आदर्श रेखाचित्र कला की सार्थकता इसी में है। शब्दचित्र-चित्रण में ऐसा प्रभाव अपेक्षित है कि पाठक के भाव विचार जागृत हुए बिना न रह सकें। यह प्रभावक उद्देश्य चित्र के भीतर से ही आए, बाह्यारोपित न हो—चित्रण की प्रत्यक्ष वास्तविकता से ही अभीप्सित आदर्श का बोध हो जाए। बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्र है। यथातथ्य चित्रण होते हुए भी लेखक का अभीष्ट स्केच के अन्त पर ध्वनित हो उठता है और पाठक विचारोद्बोधन हुए बिना नहीं रहता। इन ग्रामीणों के रेखाचित्र लिखने के उद्देश्य को प्रकट करते हुए लिखते हैं —

> ये मूरतें न इनमें कोई ख़ूबसूरती है, न रंगीनी···उन्हें देखते ही मुँह मोड़ लें, नाक सिकोड़ लें, तो आचरज की कौन सी बात ? किन्तु इन कुरुप बदशक्ल मूरतों में भी एक चीज़ है···शायद उस ओर हमारा ध्यान नहीं गया। वह है जिन्दगी। ये माटी की बनी हैं, माटी पर धरी हैं, इसीलिए जिन्दगी के नजदीक हैं, जिन्दगी से शराबोर हैं। ये देखती हैं, सुनती हैं, खुश होती हैं, नाराज होती हैं, शाप देती हैं, आशीर्वाद देती हैं कला का काम जीवन को छिपाना नहीं। उसे उभाड़ना है। कला वह है जिसे पाकर जिन्दगी निखर उठे, चमक उठे।[2]

संवेदनानुभूति बढ़ाने में महादेवी के रेखाचित्र सर्वाधिक सफल कहे जा सकते हैं। जिस उदास उन्मन लघुता ने उनके संवेदन को दिशा तथा भावना को गति दी, उसी के कुशल चित्रण से वे पाठकों को भी प्रभावित करने में समर्थ हुई हैं। अवश्य ही महादेवी ने यत्र-तत्र विषयान्तर करके भी अपनी प्रतिक्रियाओं के दृष्टिकोण को व्यक्त किया है—और ऐसा करने से रेखाचित्रकार मानों निबन्ध तत्व का उपयोग करता है फिर भी पाठक को मूल संवेदनानुभूति पात्रों के कुशल करुण चित्रण द्वारा ही होती है। संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में आत्मतत्व के सहज सन्निवेश के कारण प्रसंगानुसार व्यक्त हुई लेखक की मानसिक हार्दिक प्रतिक्रियाएँ अनाधिकार चेष्टा

---

१. सिद्धांतालोचन, ले० धर्मचन्द सन्त, पृ० १७८
२. माटी की मूरतें, ले० रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० ३

नहीं लगतीं।

मानवेतर रेखाचित्र भी किसी न किसी सत्प्रेरणा को लेकर लिखे जाते हैं। मानवेतर होते हुए भी वे मानवहिताय होते हैं। प्रकाशचन्द्र गुप्त के लिखे हुए रेखाचित्र प्रायः इसी प्रकार के हैं। इन्होंने अलमोड़ा का बाजार, [illegible] आदि रेखाचित्र लिखे। इन्होंने इन रेखाचित्रों के लिखने के उद्देश्य को लिखा है—

"मेरे पहले संग्रह 'रेखाचित्र' की देहली रेडियो पर आलोचना करते हुए, अज्ञेय ने कहा था कि मैंने मानवता का चित्रण न करके खंडहरों का चित्रण किया था। यह सच था लेकिन मानवता से प्रेरणा पाकर ही मैंने अपने विचार और भाव ऐतिहासिक भग्नावशेषों पर आरोपित किए थे।

बाद में मैंने अलमोड़ा का बाजार आदि स्केच लिखे जिनमें साम्राज्यवादी शोषण के प्रति विद्रोह मेरी प्रेरणा का मुख्य आधार था।"[1]

इसी प्रकार देवेन्द्र सत्यार्थी ने भी अपने उद्देश्य को प्रकट किया है—

"मधुमक्खी को फूलों पर बैठते और मधुसंचय करते देखकर मुझे यह हमेशा ध्यान आता है कि एक लेखक भी अपनी कला के लिए इसी प्रकार मधु जुटा सकता है। मेरा यही दृष्टिकोण मुझे समय-समय पर अनेक व्यक्तियों के निकट ले गया जो अपनी साधना में लगे हुए थे, जिन्होंने किसी प्रकार मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। मैं उनसे मिला, उनकी बातें सुनीं, उनका काम देखा, व्यक्तित्व की रेखाएँ उभरीं। मैंने हमेशा कुछ न कुछ प्राप्त किया, जहाँ भी मुझे जो चीज मिली उसका लेखा-जोखा इन रेखाचित्रों में मिलेगा। कला के हस्ताक्षर मुझे सदैव प्रिय रहे हैं क्योंकि मैं कला को किसी पदार्थ से अलग चीज नहीं समझता। मेरे लिए तो कला एक जीवित वस्तु रही है और मेरे साथ साँस लेती है। मेरे साथ कदम मिलाकर चलती है।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रेखाचित्र एक साहित्यिक रूप है [illegible] व्यक्तित्व, उसका जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से [illegible] अनिवार्यतः अन्तर्निहित एवं समाविष्ट हो जाता है।

भाषा शैली— शैली अनुकूल विषयवस्तु का [illegible] है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण [illegible] है। [illegible]

[illegible] है।

[illegible]

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य [illegible]
2. कला के हस्ताक्षर—देवेन्द्र सत्यार्थी

या दृश्य को अंकित कर देता है। रेखाचित्र की कला बहुत कुछ फोटोग्राफी की कला की भाँति है। जिस प्रकार कैमरामैन अपने कैमरे द्वारा किसी वस्तु, स्थान अथवा व्यक्ति का वास्तविक चित्र ले लेता है उसी प्रकार रेखाचित्रकार भी विश्व की किसी भी वस्तु का—चेतन तथा अचेतन का चित्र अपने शब्दों द्वारा बना लेता है जिसमें उसी प्रकार की वास्तविकता रहती है। 'अफसर' रेखाचित्र में प्रेमनारायण टंडन ने अफसर की जो रेखा खींची है उसमें उनकी चित्रात्मक शैली की विद्वता प्रदर्शनीय है —

"साढ़े पाँच फीट के लगभग ऊँचे कद का आदमी जिसके बदन पर नये कट का बढ़िया सूट दूसरों का तो नहीं पर स्वयं उसे बहुत खिलता जान पड़ता है। पैर में जूते और गले की टाई दोनों सूट के रंग से मैच करने वाले हैं। कोट की ऊपरी जेब में फाउंटेन पैन से दबा एक रेशमी रुमाल आप रखते हैं और दूसरा सफेद पतलून की बायीं जेब में जो प्रति पाँच मिट बाद कभी हाथ कभी मुँह और कभी सिर के बाल पोंछने के लिए निकाला जाता है। बायें हाथ की कलाई पर सोने की चैन से बँधी घड़ी कोट से कुछ इस तरह बाहर निकली रहती है कि मिलने वाले उसके डिजाइन से ही बड़े रोब में आ जाते हैं और समय पूछने का उनमें प्रायः साहस नहीं रहता।"[१]

लेखक की शैली ऐसी होनी चाहिए जिसका प्रभाव पाठक पर स्थायी रूप से रहे। इसलिए प्रभावोत्पादकता का होना आवश्यक है। प्रभावपूर्ण शैली होने से ही विषय में रोचकता आती है। हिन्दी साहित्य में जितने भी रेखाचित्रकार हुए हैं उन सभी ने अपनी शैली में इस गुण को प्रमुख रूप से रखा है। बेनीपुरी के सभी रेखा-चित्रों में यह विशेषता पायी जाती है। ऐसे रेखाचित्रों को पढ़ते हुए पाठक का मन ऊबता नहीं। बलदेव सिंह के चरित्र के चित्रण में यह विशेषता प्रमुख रूप से देखने में आती है—

"टूटे हुए तारे की तरह एक दिन हमने अचानक अपने बीच में आकर उसे धम्म से गिरता हुआ पाया···ज्योतिर्मय प्रकाशपुंज दीप्तिपूर्ण। और उसी तारे की तरह एक क्षण प्रकाश दिखला, हमें चकाचौंध में डाल, वह हमेशा के लिए चलता बना। जैसे वह आया हमें आश्चर्य हुआ, जिस दिन वह गया हम स्तंभित रह गये।"[२]

अन्य महत्वपूर्ण विशेषता शैली में लाघवता का होना है। लेखक को सीमित परिधि में शब्दों से रेखाओं का काम लेकर कोण को सम्पूर्ण बनाना होता है जो विशेष लाघव संक्षिप्तता स्फूर्ति का काम है। बनारसीदास चतुर्वेदी के रेखाचित्रों में इस विशेषता को प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। श्रीराम शर्मा का समस्त व्यक्तित्व इन्होंने कुछ ही पंक्तियों में कह डाला है जोकि शैली की इसी विशेषता को अंकित करता है—

---

१. रेखाचित्र, ले० प्रेमनारायण टंडन, पृ ४९
२. माटी की मूरतें, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० १

"कद मझोला, शरीर सुगठित, चेहरे पर मर्दानगी, आँखों में सात्विकता, बातचीत में जनपदीय शब्दों का प्रयोग, चाल में ढुलना और स्वभाव में आमफहम, श्रीराम जी के इस रूप में एक पौरुषमय अदा है, निराला आकर्षण है जो उनके व्यक्तित्व को विशेषता प्रदान करता है।"[1]

आत्मीयता का शैली में होना आवश्यक है। शैली में आत्मीयता से अभिप्राय है वर्ण्य विषय पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप पड़ना। इस विशेषता से शैली में जान पड़ती है और इसको गद्य की अन्य विधाओं से पृथक करती है।

इस प्रकार रेखाचित्र शैली में चित्रात्मकता, प्रभावोत्पादकता, [illegible], लाघवता एवं आत्मीयता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों से शैली परिपक्व हो जाती है।

रेखाचित्र लिखने की कई शैलियां हैं जैसा कि रेखाचित्र साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है। हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने निबन्धात्मक शैली में अपने रेखाचित्र लिखे हैं। ऐसे लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी एवं रामवृक्ष बेनीपुरी अग्रणीय हैं। संस्मरणात्मक शैली में भी लिखे हुए रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। महादेवी जी के रेखाचित्र इसी शैली में लिखे गए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लेखक भी हैं जिन्होंने प्रतीकात्मक शैली में लिखा है। बेनीपुरी लिखित 'गेहूँ और गुलाब' ग्रंथ में संगृहीत रेखाचित्र इसी शैली के हैं।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है भाषा ही भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। यदि भाषा, शुद्ध परिमार्जित एवं भावानुकूल होगी तभी वह पाठक को प्रभावित कर सकती है। चित्र की प्रकृति के अनुरूप ग्रामीण शब्दों और मुहावरों का भी आश्रय लिया जाता है। रेखाचित्रकार की तूलिका में स्थानीय रंग भरा जाना आवश्यक है। बेनीपुरी ने 'माटी की मूरतें' पुस्तक में ग्राम्य जीवन के चित्रों में ग्रामीण शब्दों का [illegible] प्रयोग किया है। कोमलकान्त पदावली लिखने वाली महादेवी ने भी रेखाचित्रों में उसका स्वाभाविक संगत आश्रय लिया है।

रेखाचित्रों की भाषा पात्रानुकूल होना चाहिए। इसी से रेखाचित्रों में स्वाभाविकता आती है। महादेवी की भक्तिन की भाषा इसका प्रमाण है—

"हम कुल [illegible] नहीं, [illegible]

पर [illegible] सुनी।"[2]

[illegible] प्रभावों से [illegible] किया जाता है। महादेवी [illegible] भाषा में [illegible] है। [illegible] के जीवन में [illegible] है यथा—

1. रेखाचित्र, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, पृष्ठ [illegible]
2. स्मृति(?) की रेखाएँ—महादेवी, पृ॰ [illegible]

"मेरी किसी पुस्तक प्रकाशित होने पर उसके मुख पर प्रसन्नता की छाया वैसे ही उद्‌भासित हो उठती है जैसे स्विच दबाने से बल्ब में छिपा आलोक।"[1]

रेखाचित्र में यथार्थ के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों से ध्वनि चित्र रंगों का उल्लेख कर वर्ण चित्र अंकित किए जाते हैं। मिलते-जुलते शब्दों से प्रभाववर्द्धन किया जाता है। एक ही वाक्य को एक छोटे-से चित्र में अनेक बार दुहरा कर स्थिति के प्रभाव को मानस खंड पर मुद्रित करने का संकल्प होता है। रेखाचित्र में विराम चिह्न मात्र स्पष्टीकरण के लिए नहीं आते, वे भी बोलने लगते है। हास्य-व्यंग्य शैली को मनोरंजक तथा तीखा बनाते हैं।

रेखाचित्र में शब्द-विन्यास तथा वाक्य-विन्यास विशिष्टता होती है। एक शब्द का एक वाक्य तथा अपने में चित्र हो सकता है। एक पंक्ति का ही प्रघटन हो सकता है। पूर्ण वाक्य के स्थान पर वाक्य-खंड से ही काम चला लिया जाता है और 'है' 'था' आदि सहकारी क्रियाओं की बेजा मुदाखलत भी बरदाश्त नहीं की जाती। इन्हीं साधनों से तो शब्द-रेखाएँ बनती हैं। बेनीपुरी के छोटे-छोटे वाक्य सहकारी क्रियाओं के बिना कार्य करते हैं—

"सिर के मुंडे हुए छोटे-छोटे बालों के रंग से चेहरे का रंग प्रतियोगिता करता हुआ। बालों ने चारों ओर से जिस पर मुदाखलत बेजा कर रखी है वह छोटा-सा ललाट चिपटा-सा। ललाट की कालिमा में पतली भौओं की रेखा सोई सोई-सी। छोटी-छोटी आँखें—जिनका पीला रंग राजेन्द्र बाबू की आँखों की याद दिलाता है।"[2]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रेखाचित्रकार की भाषा विषय एवं भावानुकूल होनी चाहिए। शब्द-चयन भी विषयानुसार होना चाहिए।

विकास

रेखाचित्र साहित्य गद्य की नवीनतम विधा है। गद्य की इस विधा का विकास अधिकतर हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं द्वारा ही हुआ है। सन् १९२४ से पहले हमें रेखाचित्र प्राप्त नहीं होते इसलिए इसके पश्चात् ही इनका आविर्भाव हुआ है। 'विशाल भारत', 'माधुरी', 'हंस' एवं 'सरस्वती' जैसी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं ने इसके विकास में विशेष रूप से सहयोग दिया है। इस प्रकार प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के आधार पर मैंने यह विकास लिखा है।

पद्मसिंह शर्मा

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम रेखाचित्र लिखने का श्रेय आचार्य पद्मसिंह

---

१. गेहूँ और गुलाब का, 'नयुनिया', ले० बेनीपुरी, पृ० २८
२. स्मृति की रेखाएं—महादेवी, पृ० १५

गे है। इनके रेखाचित्र 'पद्मपराग' में संग्रहीत हैं जिसका प्रकाशन काल सन् १९[illegible] है। इस पुस्तक में पद्मसिंह शर्मा द्वारा लिखे हुए नौ रेखाचित्र हैं पर सबसे [illegible] महाकवि अकबर विषयक रेखाचित्र है। यह रेखाचित्र महाकवि अकबर विषयक [illegible] चित्रण का सर्वोत्तम दृष्टान्त माना जा सकता है। एक स्थान पर वह उनकी कदामत-पसन्दी (अपनी प्राचीन संस्कृति में आस्था) के विषय में लिखते हैं—

> "मुझे उनकी कदामतपसन्दी बहुत पसन्द थी। इस पर अक्सर बातें होती थीं और बहुत मजे की बातें होती थीं। अब याद आती है तो दिल मसोस कर रह जाता हूँ। एक बार की मुलाकात में मुझसे पूछा—'तुमने अपने लड़के को क्या तालीम दिलाई है?' मैंने कहा—'संस्कृत पढ़ाई है।' सुनकर बहुत ही खुश हुए और उठकर मेरी पीठ ठोकी।"[1]

इनके रेखाचित्रों में यद्यपि कला का वह स्तर नहीं दिखाई पड़ता जो आज के रेखाचित्रों में मिलता है किन्तु यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि इन्होंने जो शिलान्यास किया था आज के कलाकारों ने उसी पर रेखाचित्र का भव्य भवन खड़ा करने का प्रयास किया है।

इनके पश्चात् सन् १९२५ में हमें कुछ ऐसे रेखाचित्र प्राप्त होते हैं जिनमें नगरों का चित्रण है। संतराम बी० ए० द्वारा लिखा गया[2] 'लाहौर' नामक रेखाचित्र एवं श्री रामाज्ञा द्विवेदी समीर के[3] हिन्दू विश्वविद्यालय एवं[4] 'कानपुर' रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। संतराम बी० ए० ने 'लाहौर' रेखाचित्र में लाहौर के कतिपय प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन अत्यन्त रोचकपूर्ण ढंग से किया है। इसके पश्चात् श्री रामाज्ञा द्विवेदीजी ने कानपुर और हिन्दू विश्वविद्यालय का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया है। इनके पढ़ने से लेखक की परिपक्व शैली का आभास पाठक को हो जाता है।

सन् १९२९ में शीतला सहाय द्वारा लिखित[5] 'द्वारिकापुरी' रेखाचित्र प्राप्त होता है जिसमें लेखक ने द्वारिकापुरी की महत्ता को प्रकट करते हुए [illegible] का वर्णन किया है।

सन् १९३० में ईश्वरनन्द शर्मा द्वारा लिखा हुआ[6] 'काश्मीर में एक मास' एवं मोहनलाल महतो वियोगी के 'स्वर्गीय मित्र' नाम से रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। [illegible] बच्चों के महाप्रयाण पर इन्होंने जो कुछ लिखा था [illegible] है। जगह-जगह भावुकता में इतने लीन हो गए हैं—

---

१. पद्मपराग, प्रथम संस्करण, ले० पद्मसिंह शर्मा, पृ० [illegible]
२. माधुरी
३. माधुरी
४. माधुरी
५. चाँद
६. चाँद

"मुझे इस मायामय दुनिया में आने की क्या आवश्यकता थी यह मैं आज तक नहीं समझ सका हूँ। केवल शाप, केवल आह, केवल जलन, केवल टीस। उफ ! कितने गिनाऊँ देव। हाँ इस दुनियाँ ने मुझे जी भर कर कोसा, पूरी शक्ति लगाकर सताया। तुम्हें भी मेरे कारण कष्ट उठाना पड़ा।"[1]

इस प्रकार ११२ पृष्ठों की पुस्तक में लेखक के हृदयपटल पर अंकित वेदना ही दृष्टिगोचर होती है।

सन् १६३१ में श्री प्रेमनारायण अग्रवाल द्वारा लिखित[2] 'मैथिलीशरण गुप्त' एवं श्री रामनाथ सुमन द्वारा[3] 'सरोजनी नायडू' रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। इन रेखाचित्रों में लेखकों ने इनके समस्त जीवन की एक झाँकी-सी प्रस्तुत की है।

श्रीराम शर्मा

आचार्य पद्मसिंह शर्मा के बाद हिन्दी साहित्य के प्रमुख रेखाचित्रकारों में श्रीराम शर्मा का नाम आता है। इन्होंने उस समय रेखाचित्र विधा को अपनाने की चेष्टा की थी जबकि हिन्दी साहित्य के अधिकांश लेखक इस विधा के नाम से भी परिचित न थे। सन् १६३४ में इनके लिखे हुए[4] एक सड़क का दृश्य एवं थर्डक्लास[5] नामक रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। वैसे इनके रेखाचित्र 'बोलती प्रतिमा' नाम से भी प्रकाशित हुए हैं। इनकी बोलती प्रतिमा की प्रतिमाएँ देहाती हैं। सीधे-सादे और आडम्बर से शून्य जमींदार और साहूकार के अत्याचारों से पीड़ित जो जमीन खोदते हैं और फसल काटते हैं धान उपजाकर भूखों मरते हैं दूसरों को पानी पिलाने वाले वे प्यासे हैं, दूसरों को जीवित रखने वाले वे बिना दवा पानी के यूँ ही मर जाते हैं।

बोलती प्रतिमा का चन्दा चमार और तोता विक्रमसिंह संकटप्रसाद और रत्ना की अम्मा पुस्तक से अधिक हमारे अड़ोस-पड़ोस में बसने वाले प्राणी हैं। पुस्तक हमें उन्हें अधिक निकट से देखने की एक दृष्टि प्रदान करती है। उन पर होने वाले अत्याचार से लेखक हमें अवगत कराता है और उनके उद्धरण की प्रेरणा देता है।

मैले-कुचैले कपड़ों वाला और हजारों मवेशियों को जीवनदान देने वाला हकीम पीताम्बर पाठकों पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। कहाँ आज के बिना फीस लिए एक कदम न चलने वाले ज्ञान के भंडार डाक्टर जो स्वयं आश्वस्त नहीं हैं कि वे रोगी को चंगा ही कर देंगे और कहाँ काली रातों और बरसते पानी में यहाँ और वहाँ दौड़ता-भागता मवेशियों की चिकित्सा करता हकीम पीताम्बर। 'हरनामदास' हमारे सामने अलिफ लैला का एक अध्याय ही खोल देता है।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रीराम शर्मा हिन्दी में वास्तविकतावादी लेखक हैं।

---

१. धुंधले चित्र—मोहनलाल महतो वियोगी, पृ० ३
२. माधुरी
३. माधुरी
४. विशाल भारत
५. विशाल भारत

अपने अड़ोस-पड़ोस में जो कुछ देखते हैं उसको ज्यों का त्यों कागज पर उतारकर रख देते हैं। इनकी एक और पुस्तक 'वे जीते कैसे हैं?' १९५७ में प्रकाशित हुई है। इसमें भी कुछ रेखाचित्रों का संग्रह है। इस पुस्तक में संगृहीत सभी रेखाचित्र भावपूर्ण हैं।

सन् १९३५ में डॉक्टर बाबूराम सक्सेना द्वारा लिखित[1] 'वर्धा में तीन दिन' नामक रेखाचित्र प्राप्त होता है जिसमें लेखक ने वर्धा के सुन्दर-सुन्दर स्थानों का वर्णन किया है। सत्याश्रम, कन्याश्रम एवं बजाज का बंगला का विशेष वर्णन है।

सन् १९३८ में 'हंस' के रेखाचित्र अंक ने रेखाचित्र साहित्य के विकास में विशेष सहयोग दिया है। इस अंक में हमें अनेक हिन्दी के अच्छे लेखकों द्वारा लिखे हुए रेखाचित्र प्राप्त होते हैं। रामनाथ सुमन द्वारा लिखे हुए दो रेखाचित्र 'विष्णु पराड़कर : हिन्दी पत्रकारिता के प्रकाशस्तम्भ' एवं 'सम्पूर्णानंदः एक बहुमुखी व्यक्तित्व', बनारसीदास चतुर्वेदी एवं श्रीराम शर्मा द्वारा लिखा हुआ 'पालीवाल जी', जैनेन्द्र द्वारा लिखा हुआ 'मैथिलीशरण गुप्त' एवं प्रकाशचन्द्र गुप्त द्वारा लिखा हुआ 'बच्चन' नामक रेखाचित्र प्रकाशित हुए। इन सभी रेखाचित्रों में लेखकों की कलाकुशलता का पता चलता है। प्रत्येक लेखक ने बड़ी समझदारी से व्यक्तित्व को सींचा है। प्रत्येक रेखाचित्र पर लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव है। गुप्तजी तो इस कला में हैं ही सिद्धहस्त। बच्चन का वस्तु ही सुन्दर परिचय पाठक को कराते हैं जिसमें उनकी शैली की परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है—

"बच्चन के रूखे बिखरे बाल, कृशगात किसी पोर तक नापने में मुश्किल शरीर, मस्ती भरा भाव भरी आँखें कुछ शीशियाँ सेन मूँछें में पान लगाई मुख का पूरा भाव उनकी सम्पूर्ण आकृति मानों 'मधुशाला का साकार रूप हो।'"[2]

सन् १९३९ में लोचनप्रसाद पाण्डेय द्वारा लिखित[3] 'भोपुर के दर्शन' एवं भुवनेश्वर प्रसाद द्वारा लिखित[4] दो स्केच प्रकाशित हुए। भुवनेश्वर प्रसाद के स्केचों में एक डॉक्टर और विलास का चित्रण है।

प्रकाशचन्द्र गुप्त

हिन्दी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकारों में प्रकाशचन्द्र गुप्त का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी 'रेखाचित्र' पुस्तक सन् १९४० में एवं 'पुरानी स्मृतियाँ' सन् [illegible] में प्रकाशित हुईं। सबसे पहले इन्होंने देहली और आगरे के पुराने खंडहरों के रेखाचित्र बनाए। 'हंस' में 'देहली दरवाजा' शीर्षक स्केच सबसे पहले प्रकाशित हुआ था।

---

१. सुधा
२. हंस, पृ० ५८७
३. विशाल भारत
४. हंस

इनका सबसे महत्वपूर्ण प्रयास 'शेरशाह की सड़क' था जिसमें इन्होंने भारतीय इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालने की कोशिश की। फिर इन्होंने वैज्ञानिक दृष्टि प्राप्त कर औद्योगिक क्रान्ति के विकास को समझा और 'राजा की मण्डी', 'लेटरबक्स के प्रति', 'पेट्रोलपम्प' आदि स्केच लिखे। 'रेखाचित्र' संग्रह में अधिकतर खंडहरों का ही चित्रण है। मानवता से प्रेरणा पाकर ही इन्होंने अपने विचार और भाव ऐतिहासिक भग्नावशेषों पर आरोपित किए थे। बाद में इन्होंने 'अलमोड़ा का बाजार', रानीखेत की रात', 'चीड़ का वन' आदि रेखाचित्र लिखे जिनमें प्रकृति-चित्रण का प्रयास है।

मानवता को रेखाचित्रों में व्यक्त करने का सबसे पहला प्रयास 'पुरानी स्मृतियाँ' शीर्षकमाला है। इन स्केचों में उन व्यक्तियों के चित्र बनाए है जिनके बीच इनका शैशव बीता था।

सन् १९४० में ही सद्‌गुरुशरण अवस्थी का 'पल्हड : एक स्केच'[1] प्राप्त होता है। 'पल्हड़' जिसे कि असाधारण परिस्थिति के कारण इस नाम पुकारते थे, लेखक ने उसका शारीरिक वर्णन सुन्दर किया है—

"पल्हड़का शरीर न छोटा था और न लम्बा। रंग गेहुँआ था अँधियारी को पकड़े हुए। पतली पिंडुरी और दुबली जंघा वाले थे। ऊपर का भाग अधिक मांसल था। एक विचित्र विषमता सर्वत्र दिखलाई देती थी। कहीं-कहीं मांसपेशियाँ बिल्कुल लटक आई थीं। कई दिशाओं की ओर शरीर कुछ मसका हुआ-सा दिखाई देता था।"[2]

सन् १९४३ में 'श्री अलफ्रेड नार्वल मिचल आई० सी० एस०'[3] रेखाचित्र पं० सुन्दरलाल त्रिपाठी का प्राप्त होता है। इस रेखाचित्र में त्रिपाठीजी ने इनके समस्त व्यक्तित्व का चित्र जीती-जागती भाषा में खींचा है। शब्द-चयन में लेखक की कला-कुशलता दृष्टिगोचर होती है। शैली भी विषयानुकूल है।

रामवृक्ष बेनीपुरी

प्रतीकात्मक एवं रूपकात्मक रेखाचित्र लिखने वालों में बेनीपुरी का नाम अग्रगण्य है। सन् १९४८ में 'माटी की मूरतें', 'लालतारा', 'गेहूँ और गुलाब' नामक पुस्तकें प्राप्त होती हैं। ग्रामीण जीवन का समस्त चित्रण इनकी पुस्तक 'माटी की मूरतें' में प्राप्त होता है। इस पुस्तक का प्रकाशन काल सन् १९४८ है। इसमें सबसे पहले बुधिया से हमारा परिचय होता है जिसकी तीन झाँकियाँ हमें मिलती हैं। नन्ही-सी-छोकरी बुधिया, सलोनी-सी, रूपगर्विता, युवती बुधिया और अंत में अधेड़

---

१. माधुरी।
२. माधुरी, पृ० १०५
३, माधुरी, सितम्बर

बुधिया जो कई बच्चों की माँ बन चुकी है, इसी क्रिया में जिसकी देह बरबाद हो चुकी है।

बलदेव सिंह सामंतशाही युग के अवशेष हैं, दर्प की मात्रा उनमें कम नहीं, मगर अपनी आन पर वे मिटने को सदा तैयार रहते हैं, बात के धनी। मंगर भी एक व्यक्ति नहीं 'टाइप' है। सरजू भैया का परिचय देते हुए स्वयं उनके बारे में कुछ कहना जरूरी नहीं, इतना कहना काफी है कि दुनिया बहुत खराब है। 'भौजी' में [illegible] की गृहस्थी का चित्र है।

'गेहूँ और गुलाब' पुस्तक बेनीपुरीजी की श्रेष्ठ रेखाचित्र सम्बन्धी पुस्तक है। इसमें बेनीपुरीजी की निबन्धावली भावनाप्रधान जान पड़ती है। '[illegible] वाद' और 'बचपन' शीर्षक रेखाचित्र डायरी के पन्ने से जान पड़ते हैं। 'पुरुष और परमेश्वर' शीर्षक रेखाचित्र में लेखक ने एक अति महत्वपूर्ण धार्मिक समस्या पर कलम उठाई है। 'नींव की ईंट' और 'निहारिन' निःसंदेह बड़े ही मार्मिक और मन को छूने वाले रेखाचित्र हैं।

सब चित्र बहुत स्वाभाविक हैं बनावटी नहीं। इन पुस्तकों में बेनीपुरीजी की शैली में भी अधिक गाम्भीर्य मिलता है। भावनाओं को उभाड़ने के लिए [illegible], अत्यधिक चटकीली मटकीली-भड़कीली-शब्दावली और टेढ़े उद्गार शैली का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ है जिसके फलस्वरूप पुस्तकों में हल्कापन नहीं आने पाया।

सन् १९४८ में 'दो धारा' पुस्तक कौशल्या अश्क एवं उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा लिखी हुई प्राप्त होती है। इसमें दोनों द्वारा लिखे हुए रेखाचित्र [illegible] हैं जिनका विषय अश्कजी एवं कौशल्या अश्क हैं प्रकाशित हुए। इन दोनों रेखाचित्रों में एक-दूसरे के व्यक्तित्व का चित्रण है।

देवेन्द्र सत्यार्थी

से करते हैं। 'प्रेमचन्द : एक चित्र' का आरम्भ कितना सुन्दर एवं रोचकपूर्ण ढंग से किया है—

"मूंछें घनी और बड़ी-बड़ी, सिर पर गांधी टोपी-सी दोनों तरफ और गर्दन पर निकले हुए बेतरतीब से बाल आंखों में अनुभव की चमक—इन तीनों चीजों का विशेष प्रभाव पड़ा, जब अक्टूबर १९३१ में लखनऊ में प्रेमचन्द से भेंट हुई।"[1]

१९५० सन् में 'वाह कैलाशजी'[2] रेखाचित्र राजेन्द्रलाल हांडा द्वारा लिखा हुआ प्राप्त होता है। इस रेखाचित्र में राजेन्द्रलाल हांडा ने अपने मित्र कैलाश की एक रेखा पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की है।

महादेवी वर्मा

संस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखने वालों में महादेवीजी का नाम अग्रगण्य है। इनके समस्त रेखाचित्रों का संग्रह 'स्मृति की रेखाएँ' (१९४३ ई०), 'अतीत के चलचित्र' (१९४१ ई०) एवं 'शृंखला की कड़ियां' (१९५० ई०) नाम से प्रकाशित है। 'स्मृति की रेखाएँ' पुस्तक के नायक ख्यातनामा साहित्यिक और कलाकार, राजनीतिज्ञ और समाजसेवी नहीं हैं। उनके नायक हमारे गर्वस्फीत समाज से एक प्रकार से निर्वासित निम्न वर्ग के लोग किसान और मजूर हैं। वे सामान्य जन हैं। वे ही वास्तविक भारतीय जनता हैं। उनके चरित्र उदात्त हैं। उनमें मनुष्यता, परदुखकातरता, सौहार्द, करुणा, स्नेह और परस्पर सहयोग की भावना होती है। पुस्तक में सात रेखाचित्र हैं इन सातों में दो सबसे प्रभावशाली हैं—बिबिया धोबिन और चीनी कपड़ा बेचने वाला। गुंगिया और ठाकुरी बाबा के चरित्र भी बहुत मार्मिक हैं।

'अतीत के चलचित्र' में भी मेहनतकश और मध्यमवर्ग के लोगों के चित्र हैं। पहला चित्र रामा का है। नौकर भला, स्नेहपूर्ण, ममत्वशील बच्चों के लिए न जाने वह कितने रूप धरता है। दूसरा चित्र उन्नीसवर्षीया भाभी का है। विधवा है पर वैधव्य का भार ढोने के लिए अभी उसके कंधे बहुत कमजोर हैं। हिन्दू सामाजिक रूढ़ियों और कुसंस्कारों के पूर्ण प्रतिफलन का एक चित्र। वह एक फूल है जिसे कुम्हलाने पर मजबूर किया जा रहा है। इस प्रकार महादेवी के सभी पात्र अधिक यथार्थ हैं। इसके अलावा 'अतीत के चलचित्र' में एक ऐसी ताजगी है जो पाठक में भी ताजगी भर देती है, आशा का संचार करती है और जीवन के साथ उसके सम्बन्ध को गहरा बनाती है। "महादेवी की गद्य शैली बहुत चुभती हुई है। उसमें पच्चीकारी तो नहीं है लेकिन एक धीर प्रवाह है जो लेख की गम्भीरता को बढ़ाता है मगर उसे बोझिल नहीं बनाता। जब वे अपने पात्रों की रूपरेखा या उनके आस-पास के वातावरण का चित्र खींचने लगती हैं तब उनकी शैली का रंग खुलता है। तब उसमें एक तरह की कठोरता भी

---

१. कला के हस्ताक्षर, ले० देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ९

२. आजकल, अक्टूबर

जाता है। ये सभी रेखाचित्र इनकी कला-कुशलता के प्रतीक हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन काल अप्रैल, १६५१ है।

सत्यवती मल्लिक द्वारा लिखे हुए रेखाचित्रों का संग्रह भी 'अमिट रेखाएं' नाम से १६५१ सन् में ही प्रकाशित हुआ। सत्यवती ने अपने इन रेखाचित्रों में या तो चरित्रों के प्रति अतिरंजित दृष्टि अपना ली है या उनमें इतनी भावुकता भर दी है कि वह नाटकीय हो गए हैं रंगविहीन वस्तुपरकता उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर सकी है।[1]

सन् १६५० में 'राजपथ'[2] एवं 'भाराभाई'[3] स्केच चंद्रप्रकाश वर्मा एवं गयाराय द्वारा लिखित प्राप्त होते हैं। चन्द्रप्रकाश वर्मा ने राजपथ का सुन्दर रेखाचित्र लिखा है। उसका एक उद्धरण उल्लेखनीय है :—

> "और तुम पुजारिणी मंदिर जा रही हो। तुम्हें ज्ञात है कैसा अज्ञात आकर्षण तुमने इस राजपथ को दे दिया है। तुम्हारा निर्माल्य तुम्हारे हृदय सौंदर्य की प्रतिच्छवि है। तुम्हारी गति में विश्वास है। तुम्हारे संकेतों में संध्या की सी सौम्यता है। तुम्हारी सघन श्याम केश राशि से सद्यः स्नान के उज्जवल जल विन्दु चू रहे हैं और तुम्हारे अंगों की आर्द्रता में अपूर्व समर्पण की सरसता झलक उठी है।"[4]

इसी प्रकार गयाराय ने भाराभाई का जिसका नाम खमारी सिंह है चित्रात्मक शैली में सुन्दर चित्र खींचा है। इसी सन् १६५० में ही श्री वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा लिखा हुआ एक रेखाचित्र 'नया वर्ष : एक भावचित्र'[5] नाम से प्रकाशित हुआ। यह रेखाचित्र वर्माजी की कला-कुशलता का प्रतीक है।

बनारसीदास चतुर्वेदी

वनारसीदास चतुर्वेदी की गणना हिन्दी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकारों में की जाती है। इनके रेखाचित्रों का संग्रह 'रेखाचित्र' नाम से १६५२ सन् में प्रकाशित हुआ। इसमें ४० रेखाचित्रों का संग्रह है। वनारसीदासजी ने जीवन को निकट से देखा है है इसलिए उनके रेखाचित्र सजीव हैं, वे चलते-फिरते दिखाई देते हैं और बोलते-से सुनाई पड़ते है। रेखचित्रों के क्षे में इनका महत्वपूर्ण कार्य है। इनके रेखाचित्रों का आरम्भ वहुत ही रोचक एवं मनोरंजक होता है। श्रीराम शर्मा का परिचय पाठक से करवाते हैं

---

१. हंस
२. विशाल भारत, अक्टूबर,
३. विशाल भारत, जून
४. विशाल भारत, अक्टूबर, पृ० २२०
५. सम्मेलन पत्रिका

नामक संग्रह में संगृहीत है। इनका प्रकाशन काल १९५४ सन् है। इन्होंने अपने रेखाचित्रों के विषय में लिखा है—

> "इन रचनाओं के सम्बन्ध में क्या कहूँ सिवाय इसके कि यह मेरा संचित रक्त है जो आज पाठकों को भेंट कर रहा हूँ। अपने फक्कड़ जीवन में इसके सिवाय मैंने और कुछ भी तो संचय नहीं किया।"[1]

इनके रेखाचित्रों में कलागत आत्मपरकता होते हुए भी एक ऐसी तटस्थता बनी रहती है कि उनमें चित्रणीय संस्मरणीय ही प्रमुख हुआ है। स्वयं लेखक ने उन लोगों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को स्फीत करना चाहा है। उनकी शैली की आत्मीयता एवं सहजता पाठक के लिए प्रीतिकर एवं हृदयग्राहिणी होती है। 'मैं और मेरा घर' में इनकी शैली की सहजता द्रष्टव्य है—

> "मैं जब लिखते-लिखते खिड़की से बाहर दाहिने हाथ की तरफ झांकता हूँ तो एक ऊँचा मकान दिखाई देता है। कई मंजिलें हैं जिनमें छोटे-बड़े कमरे हैं, बरामदे हैं, स्नानगृह हैं, शौचालय है। इन कमरों में पुरुष हैं, स्त्रियाँ हैं, बालक हैं, हमेशा यहाँ रौनक रहती है। यह एक होटल है।"[2]

सभी रेखाचित्रों में इनकी शैली की सहजता पाई जाती है।

सन् १९५६ में नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी द्वारा लिखा हुआ 'निराला : एक महामानव' रेखाचित्र प्राप्त होता है। जिसमें त्रिपाठीजी ने निराला के व्यक्तित्व की एक झांकी-सी चित्रित की है। सन् १९५६ में ही शलभ द्वारा लिखा हुआ एक रेखाचित्र 'सरस्वती तेरी छाया में' प्राप्त होता है।

१९५७ सन् में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने 'मास्टर श्यामलाल गुप्ता'[3] रेखाचित्र लिखा। इसमें सक्सेना ने मास्टरजी के जीवन की कुछ प्रमुख-प्रमुख [illegible] को रेखांकित किया है। हर्षदेव मालवीय[4] का 'रामकच्छा' रेखाचित्र भी इसी सन् में प्रकाशित हुआ।

१९५८ सन् में हमें अमृतराय द्वारा लिखे हुए दो [illegible] हैं। उनके उन रेखाचित्रों का नाम[5] 'चान्सलर की आमद' एवं 'गिल्ली [illegible]' है[6]

प्रेमनारायण टंडन

प्रेमनारायण टंडन के रेखाचित्रों का संग्रह 'रेखाचित्र [illegible]' [illegible] सन् में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सात रेखाचित्र हैं [illegible]

---

१. 'जिन्दगी मुसकराई', ले० कन्हैयालाल मिश्र [illegible]
२. वही, पृ० २२
३. कल्पना
४. आजकल
५. आजकल, जून अंक,
६. आजकल, अक्तूबर।

"एकाएक बड़े जोरों का हो-हल्ला हुआ। सभी लोग एक ओर दौड़े जा रहे हैं और वहाँ लाठियों की सटासट जारी है। यह सटासट खेल की नहीं है, कई सिरों से खून के फव्वारे छूट रहे हैं, और यह बीच में कौन है, बलदेवसिंह। पुराने हँसमुख रसीले बलदेवसिंह नहीं। बलदेवसिंह, साक्षात् भीम बने हुए।"[1]

संस्मरणात्मक शैली में लिखे हुए रेखाचित्र—बहुत से रेखाचित्र संस्मरणात्मक शैली में लिखे जाते हैं जिन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र कहते हैं। इनमें किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति का स्मृतिमूलक वर्णन किया जाता है। इस प्रकार के रेखाचित्र भी अधिकतर वस्तु वर्णनात्मक ही होते हैं। किन्तु उनका चित्रण भी कलाकार तटस्थ भाव से नहीं कर सकता। वे उसकी अनुभूति और भावनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के पात्र और उनकी जीवन गाथाओं का सम्बन्ध स्वयं लेखक से होने के कारण उसकी आत्मानुभूति का स्वर भी साथ-साथ गुंजित हो उठता है। वह अपने पात्रों तथा उनकी सुख-दुःख की घटनाओं से [illegible] का अनुभव करता चलता है। उनके प्रति उसका प्रेम, करुणा, घृणा आदि [illegible] में भी अभिव्यक्त होते चलते हैं। इसी से ऐसे रेखाचित्रों में पाठक को रमाए रखने की अद्भुत शक्ति होती है और पाठक भी लेखक की प्रतिक्रियाओं के साथ तादात्म्य स्थापित करता चलता है।

घटना या वस्तुपरक संस्मरणात्मक रेखाचित्र रिपोर्ताज या [illegible] से अधिक साम्य रखते हैं। रिपोर्ताज और इस कोटि के रेखाचित्रों में [illegible] होता है कि रिपोर्ताज में लेखक का दृष्टिकोण ऐतिहासिक [illegible] होता है [illegible] घटनापरक संस्मरणात्मक रेखाचित्रकार [illegible] होता है [illegible]। हिन्दी साहित्य में महादेवी के रेखाचित्र इसी [illegible] हैं। [illegible] एवं 'अतीत के चलचित्र' पुस्तकें इसी प्रकार की हैं। [illegible] इन्होंने दस संस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखे हैं। [illegible] का पाठक को आभास हो जाता है। [illegible] पाठक इनकी शैली से प्रभावित हो जाते हैं—

"रामा हमारे यहाँ [illegible]
बहन। बचपन में जिस प्रकार [illegible]
जिसके नीचे दोपहर के सन्नाटे [illegible]
के स्प्रिंगदार विशाल पलंग [illegible]
जैसे लगते थे और माँ के [illegible]
भाग अपने मुँह में अन्तर्धान [illegible]
के मनोयोग से घंटी [illegible]

---

१. रेखाचित्र, ले० राम[illegible]

एवं व्यंग्य चित्र आदि। संवेदनात्मक चित्रों में लेखक किसी यथार्थ संवेदना को काल्पनिक चित्र में बाँधने का प्रयास करता है। जीवन में कलाकार अनेक संवेदनाओं से प्रभावित होता है। इनमें से कुछ संवेदनाएँ शाश्वत सत्य खंडों के रूप में उपस्थित होती हैं और कुछ वैयक्तिक अनुभूतियों का रूप धारण कर सामने आती हैं। रेखाचित्रकार दोनों प्रकार की संवेदनाओं को केन्द्रबिन्दु बनाकर कल्पना के सहारे शब्द-रेखाओं में भावना का रंग भरकर सामने रख देता है। इस प्रकार के रेखाचित्र राहुलजी ने अधिक लिखे हैं।

व्यंग्यात्मक रेखाचित्रों की रचना अधिक हुई है। समाज की विभिन्न रूढ़ियों और पाखण्डों का मजाक उड़ाने के लिए व्यंग्यात्मक रेखाचित्रों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार के रेखाचित्र कृष्णचन्द्र ने लिखे हैं। इनके ये रेखाचित्र 'फूल और पत्थर' शीर्षक पुस्तक में संगृहीत हैं। 'अखबारी ज्योतिषी', 'देशभक्त', 'मेरा दोस्त' आदि इनके नाम हैं।

6 संस्मरण

जब लेखक अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप में वर्णन करता है उसे 'संस्मरण' कहते हैं। इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है।

तत्व

है बच्चे खिलाना, मार खाना, कुछ न कहना और सब कुछ सहना। यह कितना अद्भुत है कि इस दमघोट्ट वातावरण में उन्होंने अपने स्नेही बाबा से ग्यारहवें वर्ष में पैर रखते न रखते कर्मकाँड की कामचलाऊ शिक्षा पा ली और इससे भी अद्भुत है यह कि इस नरक कुंड में पलकर जो बालक निकला उसके रोम-रोम में व्याप्त मिला मानव का प्रेम, सभी तरह के भेदभावों के ऊपर जीवन के कण-कण में छाई ममता और ईश्वर विश्वास। ओह, ऐसा कि सन्तों को भी ईर्ष्या हो। यह थे मेरे स्वर्गीय पिताजी—श्री पंडित रमादत्त मिश्र।"[१]

वर्ण्य विषय में स्पष्टता का होना भी आवश्यक है। यदि लेखक पूर्ण ईमानदारी के साथ अपने विषय का वर्णन करता है तभी उसमें स्पष्टता का गुण हो सकता है। लेखक में यह गुण तभी हो सकता है यदि उसका उस व्यक्ति से घनिष्ठ सम्पर्क रहा हो। किसी भी व्यक्ति का संस्मरण तभी सच्चा उतर सकता है जबकि लेखक का संस्मरण-नायक से निकट सम्पर्क रहा हो और उसको उसने हर पहलुओं से देखा और समझा हो। ऐसा न होने से परिणाम यह होता है कि मनुष्य कुछ है और उसका चित्रण उसके बिल्कुल विपरीत होता है। यह संस्मरण-नायक के साथ घोर अन्याय है।[२]

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'होमवती' की कहानियों के विषय में कितना स्पष्ट चित्रण किया है —

"वे छोटी-छोटी सीधी-साधी घरेलू कहानियाँ लिखने में दक्ष थीं। उनकी इधर की कहानियों की पार्श्वभूमि भी चाहे घरेलू थी पर उनमें काफी तीव्रता आ गयी थी। साम्प्रदायिक दंगों, देश के विभाजन और उससे पैदा होने वाली समस्याओं, कांग्रेसी सरकार बनने के बाद कांग्रेसी नेताओं के जीवन के झूठ रिश्वत, ढोल के पोल का अतीव सुन्दर चित्रण उन्होंने कुछ कहानियों में किया था फिर अपने इर्द-गिर्द रहने वालों गरीबों की मनोदशा का वर्णन अनायास उनकी कुछ कहानियों में आ गया था।"[३]

यही नहीं अपने स्वभाव का भी इन्होंने स्पष्ट वर्णन किया है—

"मेरे दिमाग की नसें न जानें कितनी नाजुक हैं कि ज़रा-सी बात मुझे खा जाती है और मेरा चैन आराम हराम हो जाता है। माना लोगों ने मुझे इस कमजोरी पर विजय पाने के कई नुस्खे बताए हैं, मुझे वह कंठस्थ भी हैं और मैं सदा उन्हें काम में लाने के मंसूबे बाँधता रहता हूँ पर जब समय आता है वे सब धरे के धरे रह जाते हैं।"[४]

---

१. दीप जले शंख बजे—कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पृ० ७९
२. बालकृष्ण भट्ट (संस्मरणों में जीवन)—ब्रजमोहन व्यास
३. रेखाएँ और चित्र : उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० १७८
४. वही, पृ० १८४

अन्य व्यक्ति के जीवन का संस्मरणों के रूप में चित्रण कर सकता है। हिन्दी संस्मरण साहित्य में बहुत कम लेखक हैं जिन्होंने अपने जीवन को आत्मकथात्मक रूप में संस्मरण शैली में रखा है। फुटकर संस्मरण तो इस शैली में अनेक साहित्यिक लेखकों के प्राप्त होते हैं परन्तु सम्पूर्ण जीवन की झांकी संस्मरणों के रूप में केवल शान्तिप्रिय द्विवेदी की ही प्राप्त होती है। इनकी पुस्तक 'परिव्राजक की प्रजा' आत्मकथा है। इनमें द्विवेदीजी ने संस्मरणों के रूप में अपने जीवन की एक झांकी प्रस्तुत की है। चरित्र-चित्रण से मेरा यहां अभिप्राय है कि लेखक चाहे अपने जीवन का चित्रण करता हो या किसी अन्य व्यक्ति का, उसको पूर्ण रूप से जीवन का वर्णन करना चाहिए। उसके जीवन में घटित सभी घटनाओं का, अच्छी-बुरी सभी का, स्पष्ट एवं नग्न रूप से वर्णन करना चाहिए। शान्तिप्रिय द्विवेदीजी ने अपनी आत्मकथा को दो भागों में विभाजित किया है—बाल्यकाल एवं उत्तरकाल। इनमें वर्णित संस्मरणों में द्विवेदीजी की स्पष्टवादिता एवं भावुकता का पता चलता है। इसमें दो ही व्यक्ति मुख्य हैं—एक शान्तिप्रिय द्विवेदी और उनकी बड़ी बहन। जीवन में घटित सभी घटनाओं का वर्णन अत्यन्त मार्मिकता से शान्तिप्रिय द्विवेदी ने चित्रण किया है जो कि उनकी चरित्र-चित्रण शैली की प्रतिभा का द्योतक है। अपने स्वभाव एवं व्यक्तित्व के विषय में लिखते हैं—

> "पिता का तापस संस्कार, बहिन का करुण कोमल अभिजात्य और मेरे श्रुतिमन्द श्रवणों का नीरव एकान्त, यह सब कुछ स्वतः एक ऐसा 'सेन्सर' बन गया कि मैं बाहरी दुनिया का कुछ भी गुन सुन नहीं सका। अगाध जल में तैरने वाली मछली की तरह मेरी आत्मा को जीवन की उथली सतह से सन्तोष नहीं मिलता था।"[1]

इसके अतिरिक्त हिन्दी संस्मरण साहित्य में कुछ ऐसे संस्मरण लेखक हुए हैं जिन्होंने प्रसिद्ध साहित्यिक व्यक्तियों के संस्मरण कुछ पृष्ठों में ही लिखे हैं। इन संस्मरणों में उन्होंने उनके समस्त चरित्र का विश्लेषण कर दिया है। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अश्क, बच्चन, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, शिवपूजन सहाय, शान्तिप्रिय द्विवेदी आदि ऐसे ही लेखक हैं। ऐसे संस्मरण कुछ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं और अधिकतर अभिनन्दन ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के संस्मरणों में लेखक एक ही व्यक्ति के चरित्र पर पूर्ण रूप से संक्षिप्तता रखते हुए पाठक के सम्मुख उसके जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत कर देता है। किसी एक प्रभावशाली संस्मरण का वर्णन करते हुए विद्वत्तापूर्ण शैली द्वारा उसके समस्त व्यक्तित्व की झलक प्रत्यक्ष आ जाती है।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने पंडित रूपनारायण पाण्डेय के व्यक्तित्व का विश्लेषण कुछ ही पंक्तियों में कर डाला है—

---

१. परिव्राजक की प्रजा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६१

पर खड़ा होकर चारों ओर उज्जवल जीवनानुभूति की स्वर्णिम किरणें बिखेर रहा था और स्वर्णधूलि उड़ा रहा था।"[१]

कहीं-कहीं लेखक चरित्र का वर्णन करते समय अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का हो जाता है। ऐसे समय में लेखक को चरित्र नायक की प्रत्येक वस्तु में कुछ छिपी हुई बात का आभास होता है। बच्चन द्वारा लिखा हुआ प्रेमचन्द सम्बन्धी संस्मरण इसी भावना का द्योतक है। प्रेमचन्द के व्यक्तित्व वर्णन में बच्चन ने इसी प्रतिभा का परिचय दिया है—

"प्रेमचन्दजी नंगे सिर, खद्दर का कुर्ता पहने खड़े हैं। उनके चेहरे पर पड़ी हुई प्रत्येक पंक्ति संघर्षमय जीवन का इतिहास-सा बता रही है। उनकी आंखों की चमक में उनका उच्चादर्श झलक रहा है। उनके चेहरे की मुस्कराहट में उनका भोलापन फूटा पड़ता है। नम्रता, सरलता और निरभिमान उनके रूप में रसा बसा-सा प्रतीत होता है।"[२]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लेखक अपने चरित्र नायक का चित्रण स्पष्ट एवं रमणीय ढंग से करता है। प्रत्येक पृष्ठ पर लेखक के व्यक्तित्व की आभा होती है। अपने चरित्र नायक का चित्रण वह मनोवैज्ञानिक ढंग से भी कर सकता है। अधिकतर संस्मरणों में व्यक्ति के चरित्र का चित्रण वर्णनात्मक शैली में ही किया जाता है। इसके साथ ही वह अपने चरित्र का विश्लेषण भी स्पष्ट रूप से करता है। एक प्रभावशाली घटना के वर्णन में सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत करना ही संस्मरण साहित्य की विशेषता है।

देशकाल वातावरण—वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है और विषयवस्तु का विकास होता है। संस्मरण साहित्य को वास्तविकता का भान देने की कसौटियों में वातावरण मुख्य उपकरण है। संस्मरण लेखक भी देश और काल की जंजीर में जकड़े रहते हैं। देश और काल की पृष्ठभूमि के बिना पात्रों का एवं लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। घटनाक्रम को समझने में उलझन होती है। देश और काल में वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे, स्वयं साध्य न बन जाय। जहाँ वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है वहाँ उससे जी ऊबने लग जाता है।

हिन्दी संस्मरण साहित्य में केवल यशपाल ही ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने अपने संस्मरणों में तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन खूब किया है। उन्होंने तो अपने संस्मरण लिखे ही तत्कालीन इतिहास को जनता के सम्मुख रखने के लिए हैं। सुखदेव, राजगुरु एवं भगतसिंह सम्बन्धी सभी संस्मरण इनके व्यक्तिगत अनुभवों पर आधरित हैं जैसा कि इन्होंने 'परिचय' में स्पष्ट किया है—

---

१. सुमित्रानन्दन पंत स्मृति चित्र—प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, पृ० १४३

२. नये पुराने झरोखे, ले० बच्चन, प्रथम संस्करण, १९६२, पृ० ८०

उसकी जगह एक निर्भीक तड़प ने ले ली थी—एक अंधाधुंध छलांग ने जो अपनी मंजिल से अनभिज्ञ थी।"

"लोग नारे लगाते थे, जलूस निकालते थे और सैकड़ों की तादाद में धड़ाधड कैद हो रहे थे। गिरफ्तार होना एक दिलचस्प शुगल बन गया था। सुबह कैद हुए, शाम को छोड़ दिए गए। मामला चला, चन्द महीनों की कैद हुई, वापस आये, एक नारा लगाया, फिर कैद हो गए।"[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्मरण साहित्य को लिखते समय लेखक का उद्देश्य अपने समय की परिस्थितियों का चित्रण करना नहीं है। इन परिस्थितियों का चित्रण तो अनायास ही हो जाता है। किसी भी संस्मरण की वास्तविकता व सचाई का प्रमाण देने के लिए लेखक उस समय की परिस्थितियों का थोड़ा आभास पाठक को अवश्य देना चाहता है। प्रत्येक कलाकार अपने समय से प्रभावित होता है, इस प्रकार उसके साहित्य में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन होना स्वाभाविक ही होता है।

कहीं-कहीं संस्मरणों में हम किसी विशेप स्थान या नगर का वर्णन देखते हैं। ऐसे संस्मरण तभी सफल हो सकते हैं यदि लेखक ने उस स्थान या नगर को देखा हो। हिन्दी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन के संस्मरण इस श्रेणी में आते हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'यात्रा के पन्ने' में तिव्वत यात्रा सम्बन्धी अनेक संस्मरण लिखे हैं जिनमें अनेक नगरों एवं स्थलों का चित्रण है। हरिवंशराय वच्चन के कुछ संस्मरण इसी प्रकार के हैं। काश्मीर यात्रा संस्मरण इनका एक उच्चकोटि का संस्मरण है। इसमें इन्होंने काश्मीर के सभी मुख्य स्थानों का आकर्पक एव रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है।

उद्देश्य—इसमें लेखक की उस सामान्य या विशिष्ट जीवन दृष्टि का विवेचन होता है जो उसकी कृति में कथावस्तु का विन्यास, पात्रों की योजना, वातावरण के प्रयोग आदि में सर्वत्र निहित पायी जाती है। इसे लेखक का जीवन दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि, जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना कह सकते हैं। उन कृतियों को छोड़कर जिनकी रचना का उद्देश्य मन वहलाव या मनोरंजन मात्र होता है, सभी कलाकृतियों में लेखक की कोई विशेप विचारधारा प्रकट या निहित रूप में देखी जा सकती है। विना इसके साहित्यिक कृतित्व प्रयोजनहीन और व्यर्थ होता है।

जहाँ तक संस्मरण साहित्य का प्रश्न है इसके लेखक का उद्देश्य अन्य लेखकों से पृथक् है। इसमें लेखक अपने समग्र के इतिहास को लिखना चाहता है परन्तु इतिहासकार के वस्तुपरक रूप से वह विलकुल अलग है। संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ-संवेदनाएँ भी रहती हैं। इस दृष्टि से शैली में वह निवन्धकार के

---

१. मंटो मेरा दुश्मन—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० १६६

के लिए कुछ चावलों को निकालकर परख लिया जाता है। इस कहानी के रूप में मैं अपने पाठकों के सम्मुख अपने आपको और अपने साथियों को कुछ चावलों के रूप में प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ क्योंकि मैं अपने समाज की हांडी की अवस्था परखी जाने के लिए उत्सुक हूँ।"[1]

इसी प्रकार किशोरीदास वाजपेयी ने भी अपने व्यक्तिगत संस्मरण लिखकर पाठकों को यह शिक्षा दी है कि जीवन में असफलता के कारण और सफलता की कुंजी क्या है ? यही बात अर्थात् संस्मरण लिखने के उद्देश्य को वाजपेयीजी ने 'निवेदन' में स्पष्ट कर दिया—

"साहित्य क्षेत्र में 'सफलता' चाहने वालों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। असफलता के कारण और सफलता की कुंजी दोनों इस पुस्तक में हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस छोटी-सी पुस्तक से हिन्दी जगत का उपकार होगा।"[2]

इसी तरह शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी अपने बहन सम्बन्धी संस्मरण लिखने के उद्देश्य को स्पष्ट किया है—

"पथचिन्ह में मैंने अपनी स्वर्गीया बहिन को भारत माता की आत्मा के रूप में स्मरण किया है। उसी के व्यक्तित्व को केन्द्रबिन्दु बना कर अपने जीवन और युग की समस्या को स्पर्श किया है। इस प्रकार यह पुस्तक व्यष्टि से समष्टि की ओर है।"[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरण लेखक का उद्देश्य जहाँ स्वान्तः सुखाय रचना करना है वहाँ प्रभावशाली अतीत की स्मृतियों का चित्रण करना भी है जिससे उसे समय-समय पर उत्साह व प्रेरणा मिलती रहे। प्रत्येक व्यक्ति की यह आकांक्षा होती है कि उसको जीवन में जो अनुभव हुए हैं वह दूसरे को बतलाए ताकि वे उनसे लाभ प्राप्त कर सकें। इसी उद्देश्य को लेकर प्रसिद्ध व्यक्ति अपने अनुभवों को संस्मरणों का रूप देकर पाठकों के सामने रखते हैं। ऐसा करने से उनको आत्म-संतोष प्राप्त होता है, यही संस्मरण लिखने का उद्देश्य है।

भाषा शैली—शैली अंग्रेजी 'स्टाइल' का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है। शैली भी एक प्रकार का स्पृहणीय गुण है इसीलिए अच्छे लेखक ही अच्छे शैलीकार होते हैं। शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। संस्मरण शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जिनका होना नितान्त

---

१. सिंहावलोकन, भाग १
२. साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण, किशोरीदास वाजपेयी, प्रथम संस्करण, निवेदन (ग)
३. पथचिन्ह, शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५

होती है। इस प्रकार उसकी रचना भी आत्मकथा के निकट होगी। हिन्दी साहित्य में शान्तिप्रिय द्विवेदी एवं किशोरीदास वाजपेयी के संस्मरण इसी शैली के हैं।

कई संस्मरण लेखकों ने अपने संस्मरण निबन्धात्मक शैली में लिखे हैं। ऐसी रचनाओं को निबन्धात्मक संस्मरण कहा जा सकता है। 'मेरी असफलताएँ' गुलाबराय के संस्मरणात्मक निबन्धों का संग्रह है।

कुछ संस्मरण हमें पत्रात्मक शैली में भी प्राप्त होते हैं। जैनेन्द्र और प्रेमचन्द सम्बन्धी कई संस्मरण पत्रात्मक शैली में लिखे गए हैं।

डायरी शैली में लिखे हुए संस्मरण हिन्दी संस्मरण साहित्य में राहुल सांकृत्यायन के प्राप्त होते है। इनकी पुस्तक 'यात्रा के पन्ने' में इसी शैली में लिखे हुए संस्मरणों का संकलन है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। यदि भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं भावानुकूल होगी तभी वह पाठक को प्रभावित कर सकती है। स्वाभाविक एवं प्रसादगुण का भाषा में होना नितान्त आवश्यक है। यशपाल का कितनी स्वाभाविकता से अश्क ने वर्णन किया है वह उनकी भाषा के प्रसादगुण का ही प्रतीक है—

> "मैंने देखा—बढ़िया सूट पहने मँझले कद और साँवले रंग का एक युवक सफाई से कटे-छटे छोटे बाल, चौड़े खुले-खुले अंग, मोटे ओंठ, घनी भवें और पिचके हुए कल्ले। किसी क्रान्तिकारी के बदले मुझे यशपाल किसी बिगड़े हुए ईसाई युवक से लगे।"[1]

भावानुकूल भाषा का प्रयोग शैली को उत्कृष्ट बनाता है। शान्तिप्रिय द्विवेदी जी इस विषय में अपना हिन्दी संस्मरण साहित्य में प्रमुख स्थान रखते हैं। कहीं-कहीं तो इतना भावुक हो गए हैं कि उसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है—

> "छुटपन में ही वह विधवा हो गई थी। उस अबोध वय में उसने जाना ही नहीं कि उसके भाग्य क्षितिज में क्या पट परिवर्तन हो गया। जन्मकाल से माँ का जो अंचल उसके मस्तक पर फैला हुआ था, सयानी होने पर उसने वही अंचल अपने मस्तक पर ज्यों का त्यों पाया मानों शैशव ही उसके जीवन में अक्षुण्ण हो गया।"[2]

कहीं-कहीं अलंकारिक भाषा का प्रयोग खटकने लगता है जैसे कि जैनेन्द्र ने गुप्तजी का विश्लेषण अलंकारित भाषा में किया है—

> "मानव स्वभाव का विकास दोहरा होता है, दो दिशाओं में होता है। एक ओर उपमा व्यक्तित्व की दी जाती है कि पर्वत की नाईं अचल, वज्र की

---

१. (यशपाल) रेखाएँ और चित्र, ले० उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ४७

२. पथचिह्न, ले० शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८

जैसाकि 'निवेदन' से स्पष्ट है इन संस्मरणों के लेखक बालमुकुन्द गुप्त ही हैं। इन्होंने अपना नाम बदलकर या कल्पित नाम से ये संस्मरण लिखे हैं—श्यामनारायणजी हरिऔधजी से कहते हैं—

"मैं तो इस लेखक को जानता हूँ। इन लेखों को मुकुन्दजी ने लिखा है। आप उन्हें लिखने के लिए मना करते हैं और डाँटते रहते हैं अतः उन्होंने इस कल्पित नाम से ही लिखकर इन लेखों को भेजा था मुझे भली-भाँति ज्ञात है।"

इससे मेरा निजी अनुमान है कि ये 'मुकुन्दजी' बालमुकुन्द गुप्त ही हैं। इस पुस्तक में हरिऔधजी सम्बन्धी पन्द्रह छोटे-छोटे संस्मरण लिखे हुए हैं जिनमें उनकी प्रकृति एवं जीवन सम्बन्धी कुछ विशेषताओं पर मुकुन्दजी ने प्रकाश डाला है। ये सभी संस्मरण उनके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हैं। संस्मरणों में कहीं-कहीं अन्य व्यक्तियों का परिचय लेखक ने जहाँ पाठक को करवाया है उसमें लेखक की शैली एवं विद्वत्ता दर्शनीय है। मौलवी साहब के वर्णन में उनकी भाषा एवं शैली की प्रभावोत्पादकता देखने योग्य है—

"बड़े रंगीन तबीयत के आदमी थे। ठिगना कद था, ठुमक-ठुमककर चलते थे। यदि कोई आदावअर्ज कर देता तो पचासों बार घूम-घूमकर देखने लगते और मन में फूले न समाते। उनकी आँखों पर सुनहली कमानी का चश्मा हमेशा चढ़ा रहता।"[1]

डॉ० श्यामसुन्दरदास

गुप्तजी के पश्चात् संस्मरण लेखकों में डॉ० श्यामसुन्दरदास आते हैं। इन्होंने[2] 'लाला भगवानदीन' विषयक संस्मरण लिखा। डाक्टर साहब ने लालाजी के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी अपने संस्मरण में संक्षिप्त रूप से लिखी है। प्रत्येक कृति लेखक के व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। यह संस्मरण भी डॉक्टर साहब के व्यक्तित्व से प्रभावित है। आलोचक होने के नाते संस्मरण में भी यह लालाजी के व्यक्तित्व की आलोचना किए बिना नहीं रह सके—

"कविवर दीन का स्वभाव बड़ा ही सरल तथा आकर्षक था। वह जब अपने शिष्यों से वार्तालाप करते थे तो जान पड़ता था मानो वह उनके मित्र तथा बराबरी के हों। सदैव हँसना-हँसाना उनके स्वभाव का सबसे बड़ा गुण था। उनके स्वभाव का तीसरा गुण स्पष्टवादिता थी।"[3]

श्री रामदास गौड़

सन् १९२८ में श्री रामदास गौड़ संस्मरण लेखक हुए हैं। इन्होंने 'पं० श्रीधर

---

१. हरिऔध के संस्मरण, पृ० २१
२. साहित्यिकों के संस्मरण, सम्पादक ज्योतिलाल भार्गव
३. वही, पृ० ८६

शीर्षक में अपने जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाओं एवं अनुभवों का वर्णन किया है। ये संस्मरण उनकी इतिहास लेखक शैली के प्रतीक हैं।

सन् १६३० में श्रीनिवास शास्त्री के संस्मरण 'मेरी जीवन स्मृतियां'[1] नाम से प्राप्त होते हैं। इन संस्मरणों में शास्त्रीजी ने अपने जीवन की प्रमुख-प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है जिनका उनके जीवन पर अमिट प्रभाव है। इसके साथ-साथ जो भी महान् व्यक्ति उनके सम्पर्क में आए उनका भी इन संस्मरणों में उन्होंने उल्लेख किया है। शास्त्रीजी के ये संस्मरण संक्षिप्त होते हुए भी स्वाभाविक हैं।

सन् १६३१ में हिन्दी संस्मरण साहित्य के प्रसिद्ध लेखक बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'श्रीधर पाठक के संस्मरण'[2] प्राप्त होते हैं। पाठकजी विषयक लिखे हुए संस्मरण में निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है—

> "पाठकजी की कविता के अतिरिक्त जिन बातों का मुझ पर अधिक प्रभाव पड़ा, वे थीं उनकी सुरुचि, सुप्रबन्ध शक्ति और सौन्दर्य प्रेम। उनकी पद्म-कोट नामक कोठी उक्त तीनों चीजों के सम्मिश्रण का परिणाम थी।"
>
> "साहित्य गोष्ठी के विषय में भी पाठकजी ने कई बार कहा। उनका विचार यह था कि प्रत्येक मास में कहीं प्रकृति की गोद में वृक्षों के नीचे अथवा नदी तट पर साहित्यिक सज्जन इकट्ठे हुआ करें। प्रत्येक व्यक्ति अपना भोजन भी वहां साथ लेता जाय और वहां साहित्य सम्बन्धी चर्चा हुआ करे।"[3]

श्री सुरेन्द्र शर्मा के शहीद श्री गणेशजी के संस्मरण भी इसी वर्ष में प्राप्त होते हैं। इन संस्मरणों में सुरेन्द्र शर्मा ने गणेशजी के जीवन सम्बन्धी घटनाओं का संस्मरणात्मक रूप में रोचकपूर्ण शैली में वर्णन किया है।

सन् १६३२ में पं० मंगलदेव शर्मा के संस्मरण हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इन्होंने पद्मसिंह शर्मा एवं मुंशी प्रेमचन्द विषयक अपने संस्मरण लिखे हैं। इनके पद्मसिंह शर्मा के सम्बन्ध में 'मेरे कतिपय संस्मरण' 'माधुरी' में प्रकाशित हुए। इनमें शर्माजी ने पद्मसिंह शर्मा के जीवन की प्रमुख घटनाओं का संस्मरणात्मक रूप में वर्णन किया है। 'मुंशी प्रेमचन्द' संस्मरण में से निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है—

> "समष्टि से पूर्व व्यष्टि का संस्कार नितांत आवश्यक है। राष्ट्र निर्माण की गहन समस्या वर्षों के बजाय महीनों में हल हो सकती है यदि व्यक्ति का चरित्र निर्माण हो जाय, और प्रेमचन्द के प्रत्येक वाक्य में हमें व्यक्ति को ऊँचा उठाने वाले सामग्री मिलती है। प्रेमचन्द के प्रत्येक शब्द पर राष्ट्रोत्थान की कसकपूर्ण अनुभूति की छाप है। उनके कलाम में कौम के लिए दर्द और सोजिश है।"

---

१. विशाल भारत

२. विशाल भारत

३. विशाल भारत

द्विवेदी जी के 'संस्मरण' एवं सूर्यनारायण दीक्षित द्वारा[1] द्विवेदी जी के कुछ संस्मरण हैं। इन संस्मरणों में द्विवेदी जी के जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनके साहित्यिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह

सन् १६४० के लगभग हिन्दी के सर्वप्रसिद्ध संस्मरण लेखक राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह के कुछ संस्मरण हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में प्राप्त होते हैं। वे कला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं और जीवन को ऊँचा उठाने वाले हैं। उनकी संस्मरणात्मक रचनाओं में 'सावनीसमां', 'टूटा तारा' और 'सूरदास, तीन प्रमुख हैं।

'सावनीसमां' में राजा साहब की बस्ती का ४०, ४५ वर्ष पूर्व का ही चित्र है जो 'लालू बाबा' द्वारा प्रस्तुत किया गया था। रंगीन तबीयत वाले इस वृद्ध ने राजा साहब और उनके साथियों को यह कहानी सुनाई थी। इस कहानी के नायक थे गोपाल बाबू। इस कहानी को राजा साहब ने एक नया रूप दिया है और यह लालू बाबा की ओर से ही लिखा गया है। इसका रचनाकाल सन् १६३८ है। सन् १६३८ से ४०-४५ वर्ष पूर्व राजा साहब की बस्ती का क्या स्वरूप था, कैसे शौकीन आदमी थे, खास-खास त्यौहारों पर लोक जीवन में कैसी मस्ती की घटनाएँ छा जाती थीं—ये सब बातें बड़ी ही मजेदार भाषा में लिखी गई हैं। 'सावनीसमां' का अर्थ है सावन के दृश्य या सावन के नजारे। गोपाल बाबू के जाने से सावन सूना हो गया। यह कसक पुस्तक के पन्ने-पन्ने पर अंकित है। राजा साहब लिखते हैं—

> "आज की मेरी मानस दृष्टि पर यह सावनी चकल्लस की पार्टी चक्कर काटती है। उस विलुप्त गौरव की धुंधली स्मृति गोधूलि की क्लान आभा की तरह स्निग्ध भी है। करुणा भी।"[2]

राजा साहब ने गोपाल बाबू के इस संस्मरण में केवल तत्कालीन समाज का चित्रांकन ही नहीं किया वरन् अपनी संस्मरण लेखन कला के उत्कृष्ट रूप का परिचय भी दिया है। इस संस्मरण का सबसे बड़ा आकर्षण चित्रांकन शैली, उर्दू मिश्रित भाषा और छोटे-छोटे वाक्यों में गागर में सागर भरने का गुण है। चाहे उत्सव की तैयारी का वर्णन हो चाहे नारी के सौंदर्य का, चाहे प्राकृतिक वातावरण का अंकन हो चाहे व्यक्तित्व के अन्तर्द्वन्द्व का—राजा साहब एक चित्र सा खड़ा कर देते हैं सूक्तियाँ तो बराबर चलती हैं।

'टूटा तारा' राजा साहब के कलात्मक संस्मरणों की दूसरी पुस्तक है। राजा साहब स्वयं और हम भी उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं। इस कृति में राजा साहब ने मौलवी मुरादबख्श और देवी बाबू के संस्मरण लिखे हैं। दोनों ही सामान्य व्यक्ति

---

१. सरस्वती

२. पृष्ठ २

वास्तव में 'सूरदास' में अन्धों के रोमांस का चित्रण है। राजा साहब ने यह प्रयत्न किया है कि जिन्हें हम नीच, घृणित और तुच्छ समझते हैं उनकी चारित्रिक दृढ़ता का परिचय पा सकें। उच्च, प्रतिष्ठित और महान् कहलाने वालों में भी सूरदास और धनिया जैसे संयम दुर्लभ हैं।

सामूहिक रूप से ये तीनों संस्मरणात्मक पुस्तकें अपनी विशेषता रखती हैं। 'सावनीसमाँ' में सामन्ती विलासों की ओर संकेत है, 'टूटा तारा' में दो सामाजिक दृष्टि से नगण्य परन्तु हृदय की दृष्टि से धनी और आन के पक्के व्यक्तियों की जीवन झाँकी है और 'सूरदास' में अंधों के प्रेम का प्रदर्शन है। इन संस्मरणों के आधारभूत व्यक्तियों में से प्रत्येक अपनी करुण छाप छोड़ता है और पाठक उनके प्रति सहानुभूति से भर उठता है। स्वयं लेखक की अन्तर्दृष्टि और संवेदना के प्रति भी आकृष्ट हुए विना नहीं रहा जाता। उसके व्यक्तित्व की अनेक ज्ञातव्य बातें इनमें पिरोई हुई हैं। वह इतना आत्मीयता से इन व्यक्तियों के अन्तः वाह्य जीवन को चित्रित करता है कि शब्द-शब्द सजीव होकर लघुता के प्रति उसके अन्तर की सहानुभूति का जय-जयकार करता है। जीवन और जगत को समझने के असंख्य सूत्र इन संस्मरणों में विखरे पड़े हैं। सब से बडी बात यह है कि ये कथा शैली में लिखे गए हैं। इनमें यथास्थान मार्मिक संवादों से नाटकीय प्रभाव उत्पन्न किया गया है। साथ ही औपन्यासिक अन्तर्द्वन्द के भी स्थान-स्थान पर दर्शन होते हैं। इनकी जान इनकी भाषा शैली है। 'सावनीसमाँ' और 'टूटा तारा' की भाषा शैली तो वेजोड़ है।[1]

राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह के पश्चात् गुलाबराय के निबन्ध शैली में लिखे हुए संस्मरण 'मेरी असफलताएँ' पुस्तक में संग्रहीत हैं। अपने जीवन की कुछ घटनाओं को संस्मरणात्मक रूप में प्रकट करने का इन्होंने सफल प्रयास किया है।

महादेवी वर्मा

महादेवी हिन्दी साहित्य की कलापूर्ण कलाकर्त्री हैं। कवियित्री हैं, आलोचिका भी हैं और सफल संस्मरण लेखिका भी। अतीत के चलचित्र (१९४१ ई०), स्मृति की रेखाएँ (१९४३ ई०) एवं शृंखला की कड़ियाँ (१९५० ई०) महादेवी जी के तीन संस्मरणात्मक गद्य संग्रह हैं। सामाजिक वैषम्य एवं नारी हृदय की करुणा, वेदना, व्यथा का इनमें मर्मस्पर्शी वौद्धिक विश्लेषण है। काव्य जगत की भावुक प्रणयिनी कवियित्री अपने संस्मरणों में धरती की वेटी वन कर माँ बहन के रूप में अवतरित हुई है। आत्मनिवेदिता कवियित्री ने स्वात्मपीड़न से उन्मुक्त होकर युग सापेक्ष्य गतिवान रूप स्वीकार लिया है और उसका आत्मरुद्ध कलाकार अपने संस्मरण साहित्य में युगों-युगों से पीड़ित तिरस्कृत मानवता की वकालत के लिए तनकर खड़ा हो गया है।

---

१. राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ० कमलेश

समाज के परम उपेक्षित तत्व ही उनके संस्मरणों की कड़ियाँ हैं जिन पर उनकी कोमल करुण स्मृतियों का वितान तना है। इन परम उपेक्षित प्राणियों के साथ उन्होंने आत्मिक निकटता प्राप्त की है। निम्न से निम्न और छोटे से छोटे व्यक्तित्व में भी अपने को लय करके उनके कलाकार ने उन अभिशप्त प्राणियों के [illegible] संजोया है। इन परम उपेक्षित प्राणियों में भी महादेवीजी का कलाकार [illegible] हिन्दू नारी पर अधिक केन्द्रित रहा है। फलस्वरूप 'सबिया', विधवा [illegible] और बिट्टो उनके संस्मरणों की अमर थाती बन गई हैं। संस्मरणों की भाषा शैली अद्वितीय है। संस्मरणों में स्वाभाविकता होने से पाठकों को आनन्द का अनुभव होता है।

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के 'गुरुदेव के संस्मरण'[1] सन् १९४२ में एवं कैलाशनाथ काटजू के 'मेरे माता जी'[2] सन् १९४४ में प्राप्त होते हैं। किशोरीदास वाजपेयी के[3] 'पुरुषोत्तमदास टंडन' (कुछ संस्मरण) भी सन् १९४४ में ही प्रकाशित हुए। इधर सन् १९४५ में डॉ० सत्यप्रकाश के 'राजनैतिक जीवन सम्बन्धी संस्मरण'[4] भी प्राप्त होते हैं। इन सभी लेखकों ने जो भी संस्मरण लिखे हैं वे सब व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं।

सन् १९४९ में पंडित रामनारायण मिश्र द्वारा लिखित 'हिन्दी प्रचार सम्बन्धी कुछ संस्मरण'[5], उमाशंकर शुक्ल के 'अखिल भारतीय नई तालीम सम्मेलन संस्मरण'[6] एवं पद्मसिंह शर्मा द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्मरण' प्राप्त होते हैं। पंडित रामनारायण मिश्र के संस्मरणों में भट्टजी के जीवन के अनेक [illegible] को लिया है—क्या गार्हस्थिक, क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, क्या साहित्यिक और क्या धार्मिक सभी के विषय में अपने संस्मरणों में वर्णन किया है। इसके साथ [illegible] स्वभाव एवं व्यक्तित्व आदि पर भी प्रकाश डाला है। इसी वर्ष गंगाप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'प्रेमचन्द'[7] (संस्मरण) भी प्रकाशित हुआ। इसमें मिश्र जी ने प्रेमचन्द के जीवन की कुछ घटनाओं पर प्रकाश डाला है। राहुल सांकृत्यायन [illegible] यात्रा के संस्मरण भी इसी सन् में प्रकाशित हुए। इसमें राहुल जी ने [illegible] आठ अगस्त तक की तिब्बत यात्रा के संस्मरणों को लिया है। जो भी [illegible]

---

१. किताब महल
२. किताब महल
३. मातृभूमि
४. सरस्वती
५. सरस्वती
६. किताब महल
७. [illegible]
८. [illegible]

भवन् एवं प्राकृतिक दृश्य लेखक ने देखे उन्हीं का वर्णन इनमें है।

सन् १९५० में बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखे दो महान् पुरुषों पर संस्मरण प्रकाशित हुए। 'एण्ड्रूस के संस्मरण'[1] एवं 'स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्याय: एक संस्मरण' प्राप्त होते हैं। यही नहीं श्री झावरमल्ल शर्मा एवं श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ।

बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ

गुप्त स्मारक ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध विविध संस्मरणों तथा श्रद्धांजलियों का संकलित अंश है जिसमें तीन श्रद्धासमर्पण और सैंतीस संस्मरण तथा श्रद्धांजलियाँ हैं। सर्वप्रथम माधुरी सम्पादक पं० रूपनारायण पांडेय का श्रद्धासमर्पण है। पांडेयजी ने गुप्तजी का स्थान उन विवेकशील राष्ट्रभक्त तथा देश के सपूतों में प्रधान माना है जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के सुयोग्य बनाया है। पांडेयजी के श्रद्धासमर्पण में गुप्तजी का सही चित्र अंकित हुआ है तथा उनकी काव्यगत विशेषताओं पर सम्यक् प्रकाश पड़ा है। इसके पश्चात् अयोध्यासिंह उपाध्याय की संस्मरणात्मक तीन पंक्तियाँ हैं जिनमें उपाध्यायजी ने गुप्तजी की भारत मित्रकालीन हिन्दी सेवा को सगर्व स्वीकार किया है किन्तु गुप्तजी की हिन्दी की सेवा की यह स्वीकृति शब्द-दारिद्रय की सूचक है। तत्पश्चात् श्री गिरिधर शर्मा का एक संस्कृत श्लोक है जो गुप्तजी की विशेषताओं का उल्लेख करता है।

गुप्तजी विषयक सर्वोत्तम संस्मरण 'जमाना' सम्पादक श्री दयानारायण निगम का है जिसका हिन्दी अनुवाद 'बहुत सी खूबियाँ थीं मरने वाले में' शीर्षक से पंडित हरिशंकर शर्मा ने 'विशाल भारत' सितम्बर सन् १९२२ ई० में प्रकाशित कराया था।[3] यही इस ग्रन्थ में सम्मिलित है, प्रस्तुत संस्मरण अति भावात्मक तथा आत्मीयता से ओतप्रोत है। आलोच्य संस्मरण गुप्त जी के साहित्य का अध्ययन करने में पथ-प्रदर्शक का काम करता है।

शेष संस्मरणों में से अमृतलाल चक्रवर्ती का 'तेजस्वी गुप्तजी' 'बाबू गोपाल-राम गहमरी का 'गुप्तजी का शुभानुस्मरण', महावीरप्रसाद का 'सहकारी का अनुभव', अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी का 'गुप्तजी की स्मृति में', पं गिरिधर शर्मा का 'लेखनी का प्रभाव', सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का 'गौरवान्वित गुप्तजी', बाबू रामचन्द्र वर्मा का 'मेरे आदर्श', पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का 'गुप्तजी का व्यंग्य और हास्य', श्री रामधारी सिंह दिनकर का 'गुप्तजी कवि के रूप में', पं० किशोरीदास वाजपेयी का 'समालोचक प्रतिभा और कर्तव्य निष्ठा', पं० श्री रामशर्मा का 'पत्रकार पुगंव गुप्तजी', आदि संस्मरण इस दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट हैं कि इनके द्वारा गुप्तजी की पत्रकारिता

---

१. आजकल

.२ विशाल भारत

.३ जमाना, लाला बालमुकुन्द गुप्त, अक्तूबर-नवम्बर, १९०७, पृ० २०७

सन् १९५१ में हिन्दी संस्मरण साहित्य के दो प्रसिद्ध लेखक—शान्तिप्रिय द्विवेदी एवं राहुल सांकृत्यायन की कृतियाँ प्राप्त होती हैं।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

शान्तिप्रिय द्विवेदीजी हिन्दी के प्रसिद्ध संस्मरण लेखक हैं। इनके संस्मरण हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनकी दो संस्मरणात्मक रचनाएँ प्राप्त होती हैं—परिव्राजक की प्रजा एवं पथचिन्ह।

'परिव्राजक की प्रजा' में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने छोटे-छोटे अनेक संस्मरणों के रूप में अपनी आत्मकथा लिखी है। शान्तिप्रिय के पिता सन्यासी हो गए थे। ग्रन्थ में इन्हीं सन्यासी (परिव्राजक) पिता की सन्तान (प्रजा) की जीवनगाथा वर्णित है। इस ग्रन्थ में दो ही व्यक्ति प्रमुख हैं—एक शान्तिप्रिय दूसरी उनकी बड़ी बहन। बड़ी बहन करुणा की सजल मूर्ति है। वह बाल विधवा अपने छोटे-से जीवन में माता-पिता, छोटी बहन और दो कोमल भाइयों की मृत्यु का आघात झेलती है और बच्चों के समान शान्तिप्रिय का लालन-पालन करती है। शान्तिप्रिय ने उन्हें धार्मिक, सुरुचि-पूर्ण, आचार-विचार का ध्यान रखने वाली और परिश्रमी चित्रित किया है। उनकी तुलना मीरा और स्वर्ण की कल्पलता से की है। इस बहन के प्रति शान्तिप्रिय की अत्यधिक श्रद्धा है अत: वर्णन प्राय: अतिशयोक्तिपूर्ण और अतिरंजित हो गए हैं। अपने को बधिर और कृशकाय बतलाया है। इस कृशता की तुलना उन्होंने मृगशावक, शशक कुड्मल और ओस बिन्दु से की है। ये उपमान उनके लिए कहाँ तक उपयुक्त हैं यह तो वे ही लोग बता सकेंगे जिन्होंने इनके भी दर्शन किये हैं।

इस आत्मकथा में शान्तिप्रिय ने अपने साहित्यिक और सांसारिक जीवन के विकास के साथ अपनी बड़ी बहन के प्रति हृदय की समस्त श्रद्धा उँडेलते हुए अपने अभावों का खुला वर्णन किया है। यद्यपि लेखक के अकर्मण्य होने और विषम परिस्थि तियों में संघर्ष से पलायन करने के कारण इस कृति से पाठकों को कोई सामाजिक प्रेरणा नहीं मिलती फिर भी इसके कुछ स्थल बड़े मर्मस्पर्शी और पठनीय बन पड़े हैं।

वर्णन की दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़ा महत्त्वपूर्ण है। शान्तिप्रिय को कवि हृदय मिला है और उसका प्रभाव उनकी गद्य शैली पर भी पड़ा है। विभिन्न प्रसंगों के बीच सरयू तट और सरोवर खेत और अमराईयाँ, शरद चाँदनी और पत्र पर कनेर नींबू नीम और बेर जिस किसी भी वस्तु को इन्होंने बाह्य वस्तु वर्णन के रूप में ग्रहण किया है उसे चमका दिया है। काशी तो बहुत ही सजीव इनके संस्मरणों में पाई गई है।

इन संस्मरणों में अनेक व्यक्तियों की चर्चा हुई है। राजनैतिक क्षेत्र में जिन महापुरुषों की चर्चा है उनकी झाँकियाँ ही इस ग्रन्थ में मिलती हैं। नाम तो इन्होंने बहुत से व्यक्तियों के लिए है जैसे—महात्मा गांधी, नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, सरोजिनी नायडू, गणेशशंकर विद्यार्थी, चन्द्रशेखर आजाद आदि पर इसे राजनीतिक महापुरुषों का सम्पर्क नहीं कह सकते। धर्म के क्षेत्रों में थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्य समाज और

सहकारी श्री ब्रजमोहन वर्मा 'एक्टो घोरचा' तैयार कराते और टोस्ट तो उसके साथ होता ही। स्वामीजी का धूम्रपान भी साथ-साथ चलता ही था।"[1]

राहुल सांकृत्यायन

सन् १६५१ में राहुलजी की 'यात्रा के पन्ने' पुस्तक प्रकाशित हुई। डायरी शैली में लिखी गई यह सर्वप्रथम संस्मरणात्मक पुस्तक है। इस पुस्तक में लेखक ने तिब्बत यात्रा का वर्णन किया है। यह चार भागों में विभाजित की गई है—तिब्बत में, अज्ञात तिब्बत प्रवास पत्र एवं राजस्थान विहार। प्रत्येक स्थान व घटना का वर्णन तिथि अनुसार किया गया है। निम्नलिखित उद्धरण से यह स्पष्ट है—

"२६ जुलाई को भोजन करके ७ बजे चले। शलू से शिगर्चे जाने में तीन छोटी-छोटी नदियाँ पड़ती हैं। पानी नहीं बरसा था इसलिए हमें उनके पार करने में कोई दिक्कत नहीं हुई और दोपहर को शिगर्चे पहुँच गए।"[2]

किशोरीदास वाजपेयी

सन् १६५३ में किशोरीदास वाजपेयी की पुस्तक 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण' प्रकाशित हुई। समस्त पुस्तक के चार भाग हैं। जीवन में जो भी अनुभव उन्हें हुए उन सभी का वर्णन इसमें है। जीवन में असफलता के कारण और सफलता की कुंजी दानों ही इस पुस्तक में हैं। प्रत्येक घटना का वर्णन शीर्षक देकर किया है। भाषा तथा शैली की अनेक समस्याओं पर भी वाजपेयीजी ने अपने विचार प्रकट किए हैं। भाषा की स्वाभाविकता एवं शैली की प्रभावोत्पादकता पठनीय है।

जैनेन्द्र

हिन्दी संस्मरण साहित्य में जैनेन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी संस्मरणों पर लिखी पुस्तक 'ये और वे' नाम से सन् १६५४ में प्रकाशित हुई। इसमें बारह संस्मरणों का संकलन है। इस पुस्तक में प्रेमचन्द का भी संस्मरण है। उनके जीवन के कुछ संस्मरण के अंश निम्नलिखित हैं—

"उनका जीवन एक आदर्श गृहस्थ का जीवन था। बुद्धि द्वारा उन्होंने स्वतन्त्र और निर्बाध चिन्तन के जीवन व्यवसाय को अपनाया सही पर कर्म में वह अत्यन्त मर्यादाशील रहे। आर्टिस्ट के संकुचित पश्चिमी अर्थों में उन्होंने आर्टिस्ट बनने की स्पर्द्धा नहीं की। यही मर्यादाशील प्रामाणिकता उनके साहित्य की धुरी है। उनके साहित्य में जीवन की आलोचना तीव्र है, चहुँमुखी है किन्तु एक सर्व-सम्मत आधारशिला है जिसको उन्होंने मजबूती से पकड़े रक्खा और जिस पर उन्होंने एक भी चोट नहीं लगने दी।"

---

१. संस्मरण, प्रथम संस्करण, पृ० संख्या १७६-१७६

२. पृ० ७६

"मानवीय भावनाओं का परनिमित स्नेह का दैन्य प्रेमचन्दजी में था जिसको कलाकार समझा और जानना चाहता है, उसमें इसकी सम्भावना रहती है। कलाकार इतना आत्मग्रस्त हो जाता है कि औरों के प्रति उपेक्षावृत्ति धारण कर ले। प्रेमचन्दजी आत्मग्रस्त न थे बल्कि वह परव्यस्त थे।"[1]

इसी पुस्तक में मैथिलीशरण गुप्त का भी संस्मरण है उनके जीवन के संस्मरण के कुछ अंश निम्नलिखित हैं—

'अपने से बड़ों को बड़ा मानते हैं और वह हो सकता है कि इसमें अपने से छोटों को भी बड़ा मान बैठें। लेकिन जिनको अपने से छोटा मानना होता है, उनसे प्रत्याशा रखते हैं कि छोटों की तरह बड़ों का मान रखकर वे चलें। मान की अवज्ञा उन्हें नापसन्द है और वय की वृद्धता के कारण मूढ़ भी उनके लिए आदरणीय हो सकता है। विद्या बुद्धि नहीं, गुण भी उतना नहीं जितना सामाजिकता के लिहाज से मनुष्य मनुष्य के प्रति अपने व्यवहार में वह भेद रखते हैं। राजा और रंक उनके लिए समान नहीं है। राजा को 'हुजूर' कहेंगे, रंक को 'तू' भी कह देंगे। लेकिन दबेंगे राजा से नहीं, दबाएँगे रंक को भी नहीं।"[2]

उन्होंने बहुत ही कलापूर्ण ढंग से संस्मरण लिखे हैं।

घनश्यामदास बिड़ला

सन् १९५५ में घनश्यामदास बिड़ला के 'गांधीजी की छत्रछाया में' नामक संस्मरण प्रकाशित हुए। इन संस्मरणों से तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है। साथ में बिड़ला का गांधीजी के साथ कैसा सम्बन्ध था, गांधीजी उन्हें कैसा व्यक्ति समझते थे, इन सब बातों का आभास इन संस्मरणों में मिलता है। बिड़लाजी ने अपने जीवन की समस्त घटनाओं की वास्तविकता दिखाने के लिए कुछ पत्र भी दिए हैं—

"इन पृष्ठों में यह भी देखने को मिलेगा कि किस प्रकार भारी झंझटों के कामों से घिरे रहने पर भी गांधीजी मित्रों से सम्बन्ध रखने वाली छोटी-छोटी बातों में व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी रखते थे—और [illegible] बातों [illegible] के कार्यकलाप में रम गया है।"[3]

यशपाल

हिन्दी संस्मरण साहित्य के प्रसिद्ध लेखकों में यशपाल का नाम भी अग्रगण्य है। इनके संस्मरणों के तीन भाग 'सिंहावलोकन' नाम से १९५२ एवं १९५५ सन् में प्रकाशित हुए। इनके संस्मरणों में सशस्त्र क्रांति की कहानी है। इनमें राजगुरु, सुखदेव एवं भगतसिंह सम्बन्धी संस्मरण विशेष रूप से पाए जाते हैं। इनके संस्मरणों में तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक परिस्थितियों का पूर्ण रूप से ज्ञान होता है। इन संस्मरणों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि किन-किन कठिनाइयों का सामना करने से हमें यह स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुई है। प्रथम भाग में यशपाल ने अपने जीवन से सम्बन्धित अधिक संस्मरणों का उल्लेख किया है। संस्मरणों में लेखक की निर्भीकता एवं स्पष्ट-वादिता का ज्ञान पाठक को मिल जाता है। भाषा शैली सशक्त होने से संस्मरण अधिक प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। चारों ओर क्रान्तिकारी वातावरण होने से भी संस्मरणों में रोचकता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क

सन् १९५५ में अश्कजी की पुस्तक 'रेखाएँ और चित्र' प्रकाशित हुई। इसमें रेखाचित्र, 'संस्मरण' और हास्य रस के निबन्धों का संग्रह है। संस्मरण केवल दो ही हैं, यशपाल और होमवतीजी। इनकी एक और पुस्तक 'मंटो मेरा दुश्मन' सन् १९५६ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उस महान् लेखक के साथ अश्क द्वारा विताए गए दिनों की दर्दीली और दिलचस्प कहानी है। अश्क ने बड़े ही निकट से उसे पहचाना था, उससे अजहद प्यार किया था और बेहद नफरत की थी। उन्हीं बातों और घट-नाओं को एकत्रित करके इस अनूठे संस्मरण में सँजो दिया गया है। निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय हैं—

> "मंटो जब गाली देने पर माफी माँग लेता था इतना मादा उसमें था, तब फिर क्या कारण है कि हम में बराबर खिचाव रहा और हम लड़ते रहें? मैंने स्वयं इस बात पर गौर किया है और मैं हमेशा इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जिन्दगी की बिसात पर हमें एक-दूसरे के सामने रख दिया गया और हम लड़ने पर मजबूर रहे। अगर कहीं बराबर मिलकर बैठे भी तो एक-दूसरे से लड़ते हुए, एक-दूसरे के पैतरे को काटकर शिकश्त देने वाले मोहरों की तरह।"[१]

> "मंटो जिस तरह पीटना जानता था—लेकिन पिटना नहीं, पढ़ाना जानता था लेकिन पढ़ना नहीं, उसी तरह मजाक करता था पर मज़ाक बर्दाश्त करने की शक्ति उसमें नहीं थी, उसे बड़ी जल्दी गुस्सा आता था।"[२]

इस प्रकार सभी संस्मरणों में लेखक की कला-कुशलता निखर उठी है।

---

१. पृ० ७२
२. पृ० ६२

शिवरानी देवी

सन् १९५६ में 'प्रेमचन्द : घर में' शिवरानी देवी द्वारा लिखित पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में शिवरानी देवी ने प्रेमचन्द के संपूर्ण जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत की है। इस पुस्तक में घरेलू संस्मरण मिलते हैं पर इन संस्मरणों का साहित्यिक मूल्य इस दृष्टि से है कि उस महान् साहित्यिक के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। मानवता की दृष्टि से वह व्यक्ति कितना महान् कितना विशाल था। यही बात इस पुस्तक से स्पष्ट होती है। इसमें लिखित सभी संस्मरण लेखिका ने पूर्ण ईमानदारी और सचाई से लिखे हैं। सभी संस्मरण स्वाभाविक एवं आकर्षक शैली में लिखे गए हैं। भाषा अत्यन्त सजीव और सशक्त है। स्वाभाविकता लाने के लिए लेखिका ने कहीं-कहीं वार्तालाप का भी सहारा लिया है।

सन् १९५७ में राजनैतिक महापुरुषों के संस्मरण प्राप्त हैं। हरिभाऊ उपाध्याय के 'साधना के पथ पर', 'स्मरणांजलि' जिसके सम्पादक मंडल काका साहब कालेलकर, हरिभाऊ उपाध्याय, श्रीमन्नरायण आदि के हैं, प्रकाशित हुए। यही नहीं श्री कृष्णदत्त भट्ट के संस्मरण भी 'नक्षत्रों की छाया में' संकलित हैं। इन सभी राजनैतिक पुरुषों के संस्मरण व्यक्तिगत घटनाओं पर आधारित हैं, सभी में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन है।

स्मृति ग्रंथ

सन् १९५९ में स्मृति ग्रन्थों द्वारा हिन्दी संस्मरण साहित्य का विकास हुआ। पंत, प्रेमचन्द, पांडेय एवं मैथिलीशरण गुप्त आदि प्रसिद्ध साहित्यिकों पर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हुए। इनमें प्रसिद्ध-प्रसिद्ध साहित्यिक लेखकों द्वारा लिखे हुए संस्मरण पाए जाते हैं। 'प्रेमचन्द स्मृति ग्रन्थ' का प्रकाशन हंस प्रकाशन, इलाहाबाद से हुआ। इस ग्रन्थ में अमृतराय, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, बेनीपुरी, बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखे हुए संस्मरणों में प्रेमचन्द के जीवन और व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। इन्होंने प्रेमचन्द के स्वभाव, वेशभूषा, घर रहने का ढंग, भोजन आदि जीवन के सभी पहलुओं को लिया है।

अमृतलाल नागर, गणेशदत्त सारस्वत एवं शिवपूजन सहाय द्वारा लिखे रूपनारायण पांडेय सम्बन्धी संस्मरण प्राप्त होते हैं। गणेशदत्त सारस्वत द्वारा लिखे संस्मरण का उद्धरण उल्लेखनीय है—

"शान्ति और उदारता को मैंने उनमें स्पष्ट देखा, विद्या तथा ज्ञान की सजीव मूर्ति का दर्शन कर मुझे परमानंद अनुभव हुआ, विनय एवं नम्रता के गुणों से परिपूर्ण पाया। उनके सामने एक लक्ष्य था—वह था साहित्य सेवा। सचमुच पहले-पहल के मिलन में मैंने उन्हें गतिमान जागरूक साहित्य देवता के रूप में देखा था।"[1]

पांडेयजी के संस्मरणों में उनका कवि रूप, आलोचक, सम्पादक एवं अनुवादक रूप पूर्ण रूप से वर्णित है। इनके साथ ही उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं का भी वर्णन है।

इन स्मृति ग्रन्थों के अतिरिक्त इसी सन् में हमें 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ' प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में वृन्दावनलाल वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, उदयनारायण तिवारी, पद्मनारायण आचार्य एवं श्रीमती सावित्रीदेवी वर्मा के लिखे हुए संस्मरण संग्रहीत हैं। द्विवेदीजी द्वारा लिखे हुए संस्मरण का उद्धरण उल्लेखनीय है—

"गुप्तजी के काव्य सद्गृहस्थ के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। वे वस्तुतः सद्गृहस्थों को ही ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। उनका प्रधान उद्देश्य युवकों में महान आदर्श और उत्तम चरित्र की प्रतिष्ठा करना है। इसलिए मेरे बाल्य-काल में गाँव में पढे-लिखे सात्विक विचार के लोग गुप्तजी की कविताओं को बड़े ही आदर्श और प्रेम की दृष्टि से देखते थे।"[2]

'शिवपूजन रचनावली चौथाखंड' भी सन् १६५६ में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में शिवपूजन सहाय द्वारा लिखे विद्वानों सम्बन्धी संस्मरण संग्रहीत हैं। पंडित विनोदशंकर व्यास, निराला, बदरीनाथ भट्ट, श्यामसुन्दरदास, माधव शुक्ल, मुंशी प्रेमचन्द, श्री पारसनाथ सिह एवं श्रद्धेय विद्यार्थीजी पर लिखे हुए इनके संस्मरण इस पुस्तक में प्राप्त होते हैं। ये संस्मरण अत्यन्त रोचक एवं प्रभावपूर्ण हैं। भाषा भी विषयानुकूल है। शिवपूजन सहाय के संस्मरण लेखन की यह सब से बडी विशेषता है कि वह संस्मरण लिखने के पश्चात् अन्तिम कुछ पंक्तियों में उसके जीवन का सारांश एवं उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का परिचय देते हैं जो कि उनकी भाषा की सजीवता एवं समास शैली का द्योतक है। कहीं भी वर्णन में कृत्रिमता नहीं आने पाई—

"बस इसी एक वाक्य में शुक्लजी का उज्जवल चरित्र और आदर्श

१. पृ० ४८
२. पृ० ९८

जीवन चमक रहा है। वे सच्चे वीर पुरुष थे। उनके अंग-प्रत्यंग से, उनके प्रत्येक शब्द से पुरुषत्व प्रकट होता था। मैंने पौरुष को साकार और सजीव उसी पुरुष सिंह में देखा। हिन्दी संसार में अब वैसी मूर्ति नहीं दीख पड़ती। उनकी सहृदयता, भद्रता और सभ्यता भूलती ही नहीं। उनके गुणों का कहाँ तक बखान करूँ। अनेक प्रसंग हैं। उनका उल्लेख करके सोई व्यथा को जगाना नहीं रुचता।"[1]

भाषा शैली ही इनके संस्मरणों को सजीवता प्रदान करती है। इसी विशेषता के कारण इनमें स्वाभाविकता एवं रोचकता है।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के संस्मरणों का संग्रह 'दीप जले शंख बजे' के नाम से सन् १९५८ में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में मिश्रजी द्वारा लिखे हुए पच्चीस संस्मरण हैं। ये संस्मरण लिखते समय मिश्रजी ने यह नहीं सोचा कि अमुक व्यक्ति जनता में प्रसिद्ध है कि नहीं,, उनके सम्पर्क में जो व्यक्ति आए और जिनमें उन्होंने मानवीय गुणों का समावेश पाया उन्हीं का वर्णन किया है। मुहम्मद गनी सौदागर, डाक्टर टिचरप्रसाद, भुल्हड़मिश्र, मुन्शिया गुन्देन, मीरू गनीका, सोना दीवान, गंगा [illegible], पं० रामेश्वरदयाल आदि पच्चीस संस्मरण प्राप्त होते हैं। मिश्रजी की शैली की यह विशेषता है कि जिस भी व्यक्ति का यह संस्मरण लिखते हैं उसमें कथाशैली की तरह वह घटनाओं का उल्लेख कर उनमें उसकी मानवीयता दिखाकर अन्तिम पाँच-छः पंक्तियों में सारांश देते हैं। उनमें उस व्यक्ति के समस्त गुणों का निचोड़ [illegible] होता है। 'शेष' के व्यक्तित्व का उन्होंने इसी प्रकार से वर्णन किया है—

> "शेष कभी वाहवाही के कोल्हू पर नहीं घूमे, जीवन को उन्होंने कभी एकाकी होकर नहीं देखा। उनकी आँखें देखतीं, हृदय अनुभव करता और मस्तिष्क सोचता। बस यह दर्शन, अनुभूति और चिन्तन ही उनकी [illegible] के उद्गम थे। उनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में उनका दर्शन है, [illegible] में अनुभूति और दार्शनिक रचनाओं में चिन्तन। [illegible] महसूस करते थे। उनका [illegible] एक साहित्यिक साधक थे......

ऋणी हूँ' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें तिलक, बापू, मोतीलाल नेहरू, लाजपत राय, मदनमोहन मालवीय, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, डाक्टर अन्सारी एवं मुंशी प्रेमचन्द सम्बन्धी संस्मरण हैं। इन संस्मरणों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं है। लेखक ने जिसे जैसा देखा बड़े ही स्वभाविक रूप में उसे वैसा ही चित्रित कर दिया है। इसलिए इन रचनाओं में बड़ी ही सहजता तथा स्वाभाविकता है। अपने संस्मरणों के लिए लेखक ने किसी विशेष दल, धर्म अथवा क्षेत्र के व्यक्तियों को नहीं चुना, उनकी व्यापक सहृदयता ने जिस किसी व्यक्ति में गुणों का दर्शन किया उसी पर उन्होंने लेखनी चलाई। राजनीतिज्ञ, साहित्यकार, समाजसेवी—सभी इसमें आ गए हैं।

सन् १९६० में ब्रजमोहन व्यास द्वारा लिखित बालकृष्ण भट्ट का संस्मरणों में जीवन प्रकाशित हुआ। व्यासजी के इन अनूठे संस्मरणों में भट्टजी के आद्यंत जीवन पर नया प्रकाश पड़ता है—त्याग और तपस्या से परिपूर्ण इनका ज्वलंत चित्र मूर्तिमान हो जाता है। उनके व्यक्तित्व के विषय में लिखते हैं—

"भट्टजी एक सरलचित्त धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। ईश्वरभक्त थे। परन्तु रूढ़ि से, केवल इसलिए कि वह परम्पागत हैं, उन्हें कुढ़न होती थी। प्रतिदिन सूर्योदय के बहुत पहले उठ, स्नानादिक से निवृत्त होकर सूर्य के निकलते ही उन्हें अर्घ्य देते और सन्ध्योपासन करते थे।"[1]

"भट्टजी को दूध का बड़ा शौक था। उन्होंने एक गाय पाल रक्खी थी। कुड़मुड़ा कर उसके सब नखरे बर्दाशत करते थे। जब भी हरी घास वाली मिलती थी, गाय के लिए अवश्य लेते थे। एक दिन 'हस्ब-मामूल' अपने तख्त पर बैठे थे कि एक घास वाली सामने गली में जाती दिखलाई पड़ी। जोर से पुकारा 'ओ घासवाली। कितने की घास देवे ?' बोली 'बाबा, तीन पैसा की'। 'बाबा' का सम्बोधन सुनते ही कुढ़ गये।"[2]

इस प्रकार कितने ही संस्मरण पुस्तक में भरे पड़े हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्रण होता है। भट्टजी के मकान का वर्णन भी इन्होंने किया है—

"मकान के दो विभाग थे। एक मर्दाना, दूसरा जनाना। मर्दाने में केवल एक कमरा १२×८ का था हालांकि उसे कमरा कहना कमरे की ही नहीं, कमरे में रहने वालों की भी तौहीन करना है। कमरे के बगल में एक छोटी-सी कोठरी थी जिसमें भट्टजी विश्राम करते थे और अपनी पुस्तकें, कपड़ा-लत्ता रखते थे। कमरे में गली की तरफ तीन छज्जेदार दरवाजे, सामने एक प्रवेश द्वार, प्रवेश द्वार के सामने एक छोटा-सा चबूतरा। इसी चबूतरे को काटकर एक सीढ़ी बनाई गई थी। कमरे के भीतर सामने दीवार में एक खुली अलमारी

१. पृ० ४०
२. पृ० ४२

थी जिस पर श्रीमद्भागवत् की एक पत्रेदार पोथी वेष्ठन में बँधी रखी थी। अलमारी के ऊपर भट्टजी का, पूजा में ध्यानमग्न एक छोटा-सा एनलार्जमेंट टँगा था।"[1]

इस तरह कितने ही ऐसे रोचक प्रसंगों का वर्णन इन्होंने संस्मरणों में किया है। भाषा की स्वाभाविकता एवं शैली की सजीवता प्रकट हो उठी है। यही व्यासजी के संस्मरणों की विशेषता है।

पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र'

उग्रजी के आत्मकथात्मक शैली में लिखे हुए संस्मरणों का संग्रह 'अपनी खबर' नाम से १९६० सन् में प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक ने प्रारम्भिक २१ वर्षों का संस्मरणात्मक रूप में चित्रण किया है। संस्मरण अत्यन्त स्वाभाविक एवं रोचक हैं। अपने जीवन में घटित घटनाओं का ईमानदारी और सचाई से वर्णन करना ही उग्र की संस्मरण कला की विशेषता है। इनकी शैली की यह विशेषता है कि जहाँ कहीं भी किसी घटना या स्थान का वर्णन होता है वहाँ वर्णन के पश्चात् अपना नाम देकर कह देते हैं कि यह (मेरी) राय है—जन्मभूमि के वर्णन में भी इसी शैली का प्रयोग है—

> "रामचन्द्र भगवान सरयू नदी के किनारे पैदा हुए थे, मैं पैदा हुआ गंगा सुरसरि के किनारे। मुझे सरयू उतनी अच्छी नहीं लगती जितनी नर, नाग, विबुध वन्दनी गंगा। रामचन्द्र भगवान् अयोध्या नगरी में पैदा हुए थे, जो पवित्र तीर्थ मानी जाती है। मैं चुनार में पैदा हुआ, जो काशी के [illegible] और गंगातट पर होकर भी त्रिशंकु की छाया में होने से तीर्थ नहीं है। [illegible] तीर्थ का पुण्य हरण करने वाला भी है। फिर भी, चुनार मुझे [illegible] और साकेत से भी अधिक प्रिय है। यह अपनी जन्मभूमि चुनार के बारे में [illegible] बेचनशर्मा 'उग्र' की राय है।"[2]

यही नहीं जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आए उन सभी का [illegible] चलती भाषा में उन्होंने किया है।

१९६० सन् में ही मनमोहन गुप्त के संस्मरण [illegible] नाम से प्रकाशित हुए। इस पुस्तक में उन्होंने [illegible] शैली लिखी है। इसका उद्देश्य क्रान्तिकारी आन्दोलन [illegible] किन्तु एक क्रान्तिकारी की दृष्टि से उस समय की देश की परिस्थिति [illegible] है। इसमें कहीं भावनात्मक [illegible] है। [illegible] रोचक है। उन्होंने इन संस्मरणों में [illegible] किया है, [illegible] भाषा में [illegible] किया है।

---

१. पृ० ९४
२. पृ० ४८

सन् १९६१ में 'अश्क: एक रंगीन व्यक्तित्व' संस्मरण जिनका संकलन कौशल्या अश्क द्वारा हुआ नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुए। ये संस्मरण अश्कजी के व्यक्तित्व को विभिन्न कोणों से जांचते-परखते हैं। इन संस्मरणों में कितनी ही शैलियां हैं, कुछ स्मृति चित्रों के से हैं, कुछ रेखाचित्रों के से, कुछ निवन्धों के से और कुछ वड़ी ही सुन्दरता से गढ़े हुए कूजों ऐसे—अत्यन्त कलापूर्ण। फिर इनके लेखकों में भी समय, स्थान और क्षेत्र का वड़ा अन्तर है—एक ओर आचार्य शिवपूजन सहाय और पंतजी हैं तो दूसरी ओर शेखर जोशी और शानी : एक ओर कृष्णचन्द्र और राजेन्द्रसिंह वेदी है तो दूसरी ओर वलवन्तसिंह हुनर—और ये लेखक जीवन्त हिन्दी-उर्दू साहित्य के एक विशाल और महत्वपूर्ण क्षेत्र को घेरे हुए हैं। इन संस्मरणों और स्मृति रेखांकनों में अश्कजी के व्यक्तित्व और विचारों की स्पष्ट रेखाएँ भी उभर कर पाठकों के सामने आती हैं।

सन् १९६१ में ही रामवृक्ष वेनीपुरी की पुस्तक का द्वितीय सस्मरण 'मील के पत्थर' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें वेनीपुरीजी के हृदयस्पर्शी रेखाचित्र और संस्मरण संग्रहीत हैं।

सन् १९६२ में हरिवंशराय वच्चन की पुस्तक 'नये पुराने झरोखे' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, गिरिधर शर्मा, प्रेमचन्द एवं काश्मीर यात्रा पर लिखे हुए संस्मरण हैं। इन संस्मरणों में लेखक का कवि हृदय भी जागरूक हो गया है। भापा भी विपयानुकूल है।

सन् १९६३ में 'साहित्यिकों के संस्मरण' पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसके सम्पादक ज्योतिलाल भार्गव हैं। इसमें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित संस्मरणों का संकलन है। ये संस्मरण हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं। शिवपूजन सहाय, पं० हरिशंकर शर्मा, रमाशंकर शुक्ल, वेंकटेश्वरनारायण तिवारी, दिनकर, वियोगी हरि जैसे विद्वानों के लिखे हुए संस्मरण हैं। एक और पुस्तक जिसके सम्पादक क्षेमेन्द्र सुमन हैं 'जैसा हमने देखा' नाम से अभी प्रकाशित हुई है। इसका प्रकाशन काल भी सन् १९६३ ही है। इसमें लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय, कृष्णानन्दन गुप्त, रामकृष्णदास, महादेवी वर्मा, डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश, डा० भगवतशरण उपाध्याय, विष्णु प्रभाकर, डा० सुधीन्द्र, हरिभाऊ उपाध्याय, द्वारिकाप्रसाद शर्मा, विनोदशंकर व्यास एवं लक्ष्मीनारा-यण सिंह, 'सुधांशु' द्वारा लिखे विभिन्न साहित्यिकों के विषय में संस्मरण हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी संस्मरण साहित्य प्रगति की ओर अग्रसर है। इसकी आशातीत उन्नति हुई है। इसके विकास में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का वहुत सहयोग रहा है। मुझे पूर्ण आशा है कि गद्य की यह विधा भविष्य में और भी विकसित होगी।

विभाजन

हिन्दी संस्मरण साहित्य गद्य की नवीनतम विधा है फिर भी इसकी प्रगति

ने ही रोने गाने को विवश किया था। उन्होंने अपनी कविता के सम्बन्ध में जो कहा था वह कोई विनम्रता प्रदर्शन नहीं था, वह बिल्कुल सत्य था—उनकी हर कविता के पीछे एक इतिहास है, एक घटना है, चलते फिरते व्यक्ति हैं, भावों का ऊहा-पोह है। और है एक भावुक हृदय, जिसे सबसे लपटते, झपटते, उलझते और मरते खपते हुए गुनगुनाते भी जाना है। नवीनजी ने अपनी कविताएँ विवक से नहीं लिखीं उन्होंने अपने प्रभु, स्वेद रक्त में अपनी लेखनी डुबाकर लिखा है जिसमें जग का बहुत सा गर्द गुबार भी आकर पड़ गया है।"[1]

कथालेखक—कई कथालेखकों ने भी हिन्दी संस्मरण' साहित्य के विकास में योग दिया है। इन कथालेखकों में उपेन्द्रनाथ अश्क, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, यशपाल एवं वृन्दावनलाल वर्मा प्रमुख हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने तो कथालेखकों जैसी वर्णनात्मक शैली में ही अपने संस्मरण लिखे हैं। 'होमवतीजी के संस्मरण, में कथा। लेखकों जैसी शैली में सुन्दर वार्तालाप प्रस्तुत किया है—

"बातें करते-करते हम एक किसान की झोंपड़ी के पास से गुजरे। वह झोंपड़ी पगडंडी के तनिक नीचे, खेतों के इस छोर पर बनी थी। किसान मटर या सेम की छीमियाँ टोकरे में भर रहा था। होमवतीजी ने तनिक रुक कर उससे भाव पूछा, "क्यों भइये कैसे दी है?" वहीं टोकरी पर झुके-झुके बिना हमारी ओर देखे उसने पत्थर सा उत्तर फेंका 'ग्यारह आने'।

मैंने कहा, "सब्जी तरकारी की तो आपको मौज है।" "अरे कहाँ, देख तो लिये इनके तेवर।" वे बोलीं, "ये लोग मंडी में इकट्ठी बेचते हैं, सेर दो सेर के झमेले में नहीं पड़ते। मंडी में इससे सस्ती मिलती हैं।"[2]

जैनेन्द्र के सभी संस्मरणों का सग्रह 'ये आँखें' नामक पुस्तक में है। महात्मा भगवानदीन पर लिखे संस्मरणों का उद्धरण उल्लेखनीय है—

"उनका जीवन स्फूर्ति से और कर्म से भरा रहा है। आडम्बर और आकांक्षा जैसी वस्तु उनमें नहीं है। परिणाम यह है कि ऊँची-नीची नाना परिस्थितियों में रहकर भी वह अपनेपन से दूर नहीं गये हैं। सदा प्रतिशत सहज और सरल बने रहे हैं। दुनियादारी एक क्षण भी उन पर ठहर नहीं सकी है, उनसे एकदम अलग उतरी दिखाई देती है।"[3]

सभी कथालेखकों ने अपने संस्मरण प्रभावोत्पादक शैली में लिखे हैं। सभी लेखकों के संस्मरणों पर उनके अपने-अपने व्यक्तित्व का प्रभाव है। भाषा शैली सजीव होने से ही संस्मरण रोचक बन पड़े हैं।

आलोचक—जहाँ कवि और कथालेखकों ने संस्मरण लिखे हैं वहाँ

१. नये पुराने झरोखे, पृ० २४, २५
२. रेखाएँ और चित्र, अश्क, पृ० १८१
३. पृ० १३५

आलोचकगण भी पीछे नहीं रहे। डा० श्यामसुन्दरदास, नन्ददुलारे वाजपेयी, शिवदानसिंह चौहान एवं डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' आदि आलोचकों के लिखे हुए संस्मरण भी प्राप्त होते हैं। गुलाबराय के सभी संस्मरण 'मेरी असफलताएँ' पुस्तक में संकलित हैं। इस पुस्तक में लेखक ने अपने जीवन की घटनाओं का [illegible] चित्रण किया है। ये सभी घटनाएँ संस्मरणात्मक रूप में लिखी गई हैं। जीवन की [illegible] का विशद रूप से वर्णन करने का भी उनका प्रयत्न सराहनीय है। भाषा [illegible] और रोचक है। उनके बाल्य जीवन के वर्णन का एक उद्धरण निम्नलिखित है --

"हम लोग एक ब्राह्मणी बुढ़िया के घर के दूसरे भाग में रहते थे। उसका नाम था दिवारी की माँ। अपेक्षाकृत अभावों की दुनिया में पला था। न तो मेरी महत्वाकांक्षाएँ ही बढ़ी हुई थीं और न सुविधाओं का नितान्त अभाव था। 'चहिए अमिय जग जुरै न छाछी' की तो बात न थी फिर भी उन [illegible] में से न था जो कि गर्व से कह सकें कि मेरा जन्म सम्पन्न घराने में हुआ था। मेरे यहाँ चाँदी का चम्मच तो क्या पीतल का भी न होगा। यदि मुझे ऊपरी दूध भी मिल गया तो सिपी से जो मोती की भी [illegible] है। [illegible] गरीबी के कारण कभी-कभी रसना का संयम करना पड़ता था। दिवारी [illegible] कचालू की चाट बेचा करता था। मुझे याद है मैं एक बार चाट [illegible] था। दिवारी को पड़ोसी धर्म और मैत्री धर्म का उपदेश दिया था, [illegible] खाया करो' ऐसी ममता भरी शिक्षा भी उसे दी थी। जब [illegible] सती मन जैसे' बेकार गए तब माता से पैसे के लिए [illegible] कहीं अपनी रुचि की तृप्ति कर सका था। [illegible] समीप ही नहीं, सारे बाल सफेदप्राय हो जाने पर भी [illegible] बाल क्रीड़ाओं में अंधे बन कर चलने और [illegible] इस बात का उल्लेख अपनी माताजी से बारम्बार सुनने से [illegible] उभार में आ गई थी।"[1]

लेखक की प्रत्येक कृति पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव [illegible] [illegible] होने के कारण शिवदानसिंह चौहान [illegible] न रह सके। उनके लिखे संस्मरण का एक उद्धरण [illegible] --

"पंतजी का व्यक्तित्व [illegible] आने वाले व्यक्ति को उनमें [illegible] [illegible] में होती है। [illegible] का कोई आडम्बर [illegible] है और [illegible] उनको वे केवल अपना [illegible] दिखाते हैं। ऐसा कुछ नहीं है। [illegible]

---

1. मेरी असफलताएँ, गुलाबराय, [illegible]

कोमल। लेकिन यह सरलता और सहजता या तो हमें अबोध शिशुओं की क्रियाओं में मिलती है या एक मनीषी व्यक्ति के चिन्तन और आचरण में, जो जीवन के गरल को पचाकर समदर्शी बन गया है, जिसे बोलचाल के मुहावरे में पहुँचा हुआ आदमी कहते हैं, जिसे राग, द्वेष और प्रभाव छूते तो हैं लेकिन जो उनमें बह नहीं जाता, जिसका विवेक और जिसकी भावनाएँ और संवेदन जीवन के कर्दम में कमल की तरह निर्लिप्त रहकर दूसरों को केवल सुरभि और सौन्दर्य का ही वरदान देते हैं। यह सरलता और शिशुता पंत के व्यक्तित्व में है।"[1]

राजनैतिक पुरुष—हिन्दी संस्मरण साहित्य की उन्नति में केवल साहित्यिक पुरुषों ने ही सहयोग नहीं दिया अपितु राजनीतिज्ञों ने भी पूर्ण सहायता दी है। हिन्दी साहित्य में घनश्यामदास बिड़ला, कृष्णदत्त भट्ट, हरिभाऊ उपाध्याय, डा० राजेन्द्रप्रसाद एवं कैलाशनाथ काटजू जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों के द्वारा लिखे हुए संस्मरण प्राप्त होते हैं। घनश्यामदास बिड़ला की संस्मरणों की दो पुस्तकें 'कुछ देखा, कुछ सुना' एवं 'गांधीजी की छत्र छाया में' प्राप्त होती हैं। बिड़ला ने जहाँ अपने राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित संस्मरणों का संग्रह 'गांधीजी की छत्रछाया' में किया है वहाँ अन्य राजनैतिक पुरुषों के विषय में लिखे हुए चौदह संस्मरणों का संग्रह 'कुछ देखा कुछ सुना' में है। घनश्यामदास बिड़ला संस्मरण लिखने में इतने सिद्धहस्त हैं कि उन्होंने व्यक्ति विशेष के समस्त व्यक्तित्व को कुछ ही पंक्तियों में कह डाला है—

"कुछ-कुछ पकपके बाल, कद की नाटी और बदन की अत्यन्त हल्की, जीर्णकाय मणीबेन यदि मुँह पर सफेद पट्टी बाँध लेती तो वह जैन साध्वी में भी खप सकती थी। व्यवस्था-प्रिय मणीबेन हर चीज को अपने कमरे में व्यवस्थित रखती थी और सरदार की भी व्यवस्था करती थी। बाप बेटी समय के इतने पाबन्द थे, मेजबान की सुविधा-असुविधा का उन्हें इतना ख्याल रहता था कि उसे संकोच में डाल देते।"[2]

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के 'गुरुदेव के संस्मरण' एवं कैलाशनाथ काटजू के 'मेरे भ्राताजी' संस्मरण हमें प्राप्त होते हैं। इन सभी संस्मरणों में इन राजनैतिक पुरुषों की जिन्दादिली टपकती है।

(ख) विषयवस्तु के अनुसार

हिन्दी संस्मरण साहित्य के विकास से स्पष्ट है कि जहाँ हमें हिन्दी साहित्य लेखकों के जीवन सम्बन्धी संस्मरण प्राप्त होते हैं वहाँ कुछ राजनीतिज्ञों को भी कुछ लेखकों ने अपने संस्मरणों का विषय बनाया है। इसके साथ ही कुछ लेखकों ने यात्रा सम्बन्धी संस्मरण भी लिखे हैं। वास्तव में तथ्य यह है कि जो भी व्यक्ति जिससे प्रभावित

१. पंत स्मृति चित्र पृ० १४६
२. कुछ देखा कुछ सुना—घनश्यामदास बिड़ला, प्रथम संस्करण, पृ० १२६

के अनुभव पर आधारित हैं। एक घटना से ही उनके व्यक्तित्व का आभास हो जाता है—

"एक बार कई दिन मैं भट्टजी से पढ़ने नहीं गया। मैं जानता था कि इस पर वे भुन्नाये होंगे क्योंकि संस्कृत में मैं कुछ तेज हो गया था और मुझे पढ़ाने में उन्हें आनन्द होता था। उस दिन जैसे ही मैंने सीढ़ी पर कदम रक्खा तो देखा कि भट्टजी अपने पुत्र महादेव पर बिगड़ रहे हैं। उस दिन महादेवजी को कालिक (शूल) का बड़े जोर का दौरा हुआ था। पहिले तो दर्द थोड़ा था, पर महादेवजी ने बहुत-सा दही मीठा खा लिया था। महादेवजी बड़े चटोरे थे। दही खाने से दर्द असह्य हो गया और वे चारपाई पर छटपटाने लगे। उनकी चारपाई के पास एक तख्त था जिस पर भट्टजी सदा बैठते थे। उनके कराहने पर भट्टजी भमक उठे, उसी समय मैं वहाँ पहुँचा था। गुस्सा कराहने पर नहीं था बल्कि दही खाने पर। कड़ककर बोले—'जब दर्द शुरू होय गवा रहा तो फिर दही काहे खायेव ?'···भट्टजी ने पीठ फेरी तो मैं सामने पड़ गया। 'धोबी से न जीते तो गदहे का कान उमेठे' मुझी पर उबल पड़े। उस समय भट्टजी का वक्षस्थल वाक्-युद्ध के परिश्रम से लाल और नेत्र रक्तवर्ण थे। बड़ी रुखाई से बोले 'कहाँ चलेव सरकार ?' इस प्रश्न में मेरे कई दिन न आने का गुबार भरा हुआ था। मैंने बड़ी विनम्रता से कहा कि पढ़ने आये हैं। मेरा कहना था कि बड़े तीव्र स्वर में बोले, 'तुम क्या पढ़ोगे जी ? बेवकूफ बनाते आते हो। इम्तहान लेत हो कि एका कुछ आवत जात है कि नाहीं।"[१]

राजनैतिक पुरुषों के संस्मरण—प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कोई-न-कोई ऐसा व्यक्ति सम्पर्क में आता है जिसका प्रभाव स्थायी रूप से उस पर रहता है। यदि वह इतना योग्य हो कि अपने विचारों को अन्य व्यक्तियों के सम्मुख रख सके तो वह रखता है। जब वह उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्ता को अपने जीवन में घटित घटनाओं के आधार पर व्यक्त करता है तो वह संस्मरण की कोटि में आ जाती हैं। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व अन्य पुरुष को प्रभावित कर सकता है यह कोई आवश्यक नहीं कि किसी लेखक या कवि का ही व्यक्तित्व लोगों को प्रभावित करता है। कोई भी देशभक्त किसी भी लेखक से प्रभावित हो सकता है ऐसे ही कोई भी लेखक राजनैतिक पुरुष से प्रभावित हो सकता है। इस प्रकार हिन्दी संस्मरण साहित्य में जहाँ साहित्यिक लोगों के जीवन सम्बन्धी संस्मरण मिलते हैं वहाँ राजनैतिक पुरुषों के भी जीवन सम्बन्धी संस्मरण प्राप्त होते हैं। हिन्दी साहित्य में यशपाल के सुखदेव, राजगुरु एवं भगतसिंह सम्बन्धी संस्मरण 'सिंहावलोकन' नाम से पाए जाते हैं—इनके तीन भाग हैं। इसी प्रकार इन्द्रविद्यावाचस्पति के राजनीतिज्ञों पर लिखे हुए संस्मरण 'मैं इनका ऋणी हूँ' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। हरिभाऊ उपाध्याय के 'साधना के

---

१. बालकृष्ण भट्ट, ब्रजमोहन व्यास, पृ० ३८, ३९

पथ पर' एवं घनश्यामदास बिड़ला के 'कुछ देखा कुछ सुना' संस्मरण भी इसी प्रकार के हैं। 'स्मरणांजलि' में अनेक महापुरुषों एवं साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा लिखे हुए जमनालाल बजाज पर संस्मरण संगृहीत हैं। कन्हैयालाल मा० मुंशी का जमनालाल बजाज पर लिखा हुआ संस्मरण अत्यन्त सजीव एवं प्रभावोत्पादक है। अन्तिम पाँच-सात पंक्तियों में उनके समस्त व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत की है—

"व्यापार-बुद्धि और नीति, लक्ष्मी और सरस्वती की तरह, साथ नहीं रहती, परन्तु जमनालालजी इसके अपवाद थे। उनकी व्यवहार बुद्धि पर जीती-जागती जोत की तरह नैतिक बल हमेशा पहरा देता था। छोटी-बड़ी हर बात में वह उस्ताद व्यापारी नैतिक अपूर्वता की खोज में रहता था।

वे व्यापारी थे, देशभक्त त्यागी दानवीर थे सोलह आने थे पर इन सब में भी संस्मरणीय उनकी निधि थी व्यावहारिकता और नीति का सुमेल। सत्यनारायण की कथा के 'साधु वणिक' शब्द को उन्होंने साकार कर दिया था।"[1]

घनश्यामदास बिड़ला का 'महादेव देसाई' पर लिखा हुआ संस्मरण भी रोचक है। उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्रण उन्होंने अपने संस्मरण में किया है—

"गांधीजी के अनन्य उपासक होते हुए भी महादेव भाई के अपने स्वतंत्र विचार थे। गांधीजी के विचारों का विरोध करने की उनमें क्षमता थी। गांधीजी से भिड़ जाने की उनमें शक्ति थी और गांधीजी पर उसका कुछ असर पड़ता था। वह कभी-कभी बापू की कड़ी आलोचना करते थे, पर सदा नम्रतापूर्वक। लेकिन जहाँ गांधीजी ने एक अन्तिम निर्णय किया कि महादेव भाई अडिग निश्चय के साथ गांधीजी की 'योजना में कूद पड़े'। [illegible] उन्हें पसन्द नहीं था।

जैसी बात भी हो सकती है। हाँ, कुछ कटु अनुभवों ने अधिक सावधान तो बना दिया है फिर भी लोगों की आलोचनाओं व निंदाओं के बीच अविचल रहने की प्रवृत्ति अडिग है। क्षणिक प्रभाव हुआ भी तो वह परमात्मा का आश्रय लेते ही नष्ट हो जाता है।"[1]

इस प्रकार राजनैतिक पुरुषों के संस्मरण भी अत्यन्त रोचक एवं प्रभावशाली बन पड़े हैं।

यात्रा सम्बन्धी संस्मरण—हिन्दी संस्मरण साहित्य के विकास से स्पष्ट है कि कुछ लेखकों ने अपने संस्मरणों का विषय अपनी यात्रा को लिया है। वे जिस स्थान व जिस जगह भ्रमण करते रहे उन सभी का वर्णन उन्होंने संस्मरणात्मक रूप में किया है। राहुलजी के यात्रा सम्बन्धी संस्मरण 'यात्रा के पन्ने' पुस्तक में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त बच्चन ने अपनी काश्मीर यात्रा का एवं गुलाबराय ने कसौली यात्रा का संस्मरणात्मक रूप में वर्णन किया है।

हरिवंशराय बच्चन ने झील के किनारे का वर्णन अत्यन्त रोचकपूर्ण ढंग से किया है—

"सुबह होते ही झील की सतह पर काश्मीर का जीवन देखिए। एक शिकारा आ रहा है, तरह-तरह के फूलों से लदा है। एक फल बेचने वाले का, एक मेवे बेचने वाले का, किसी में लकड़ी का सामान, किसी में शाल दुशाले, किसी में पेपरमेशी की चीजें, किसी में सुई, कढ़ाई के बारीक काम। श्रीनगर में कोई चीज़ खरीदना बहुत होशियारी का काम है। व्यापारी कभी-कभी चौगुना दाम कहता है। आप संकोच में कितना कम करेंगे, नतीजा होगा आप ठगे जाएँगे। चीज़ों का ठीक दाम आप तभी देंगे जब या तो आप अनुभवी हों यानी कई बार काश्मीर आए गए हों या किसी काश्मीरी से आपकी जान-पहचान हो जो चीजों का वाजबी दाम जानता हो।'[2]

गुलाबराय ने अपनी कसौली यात्रा में कसौली नगर का वर्णन अत्यन्त रोचक-पूर्ण ढंग से किया है—

"कसौली कुत्ते के काटे वालों के लिए तो प्रधान तीर्थस्थान है ही किन्तु यहाँ जो लोग रहते हैं वे सब कुत्ते के काटे हुए ही नहीं रहते। यहाँ पर एक बहुत सुन्दर छावनी है। यहाँ की सड़कें रमणीक हैं। चढ़ाव-उतार की और चक्करदार अवश्य हैं, किन्तु उनके दोनों ओर खूब हरियाली रहती है। कुछ स्वाभाविक उपज है और कुछ लगाई हुई है। बाजार भी अच्छा है। यहाँ पर गिरिजाघर, क्लबघर, बैंक, डेरी आदि देखने योग्य हैं। मंकी पाइन्ट अर्थात्

---

१. साधना के पथ पर—हरिभाऊ उपाध्याय, पृ० ७२
२. नए पुराने झरोखे—बच्चन, पृ० २६१

घनश्यामदास बिड़ला ने भी अपने नौकर हीरा का संस्मरण अत्यन्त रोचक एवं भावुकतापूर्ण शैली में लिखा है। उसके विषय में एक स्थान पर लिखते हैं—

> "कर्ण का महाभारत में बड़ा स्थान है। और हीरा का कोई ग्रन्थ नहीं बना, इसी बुनियाद में हीरा परख में कम नहीं उतरा। तीन बार हीरा ने अपना खजाना खाली कर दिया। यह उदारता कर्ण से किस बात में कम उतरती थी ? और हीरा की वफादारी तो लाजवाब। बड़े-बड़े श्लोकों से भरे ग्रन्थों से चौंधिया जाने से यदि हम इन्कार करें तो मैं कहूंगा कि हीरा का शौर्य, उसकी दान-शूरता और उसकी वफादारी बेमिसाल चीजें हैं।"[1]

इसी प्रकार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने अपनी पुस्तक 'दीप जले शंख बजे' में मुखिया सुचेत, नन्दा गाटा, गोरा दीवान, बल्देव बाबा, सल्हड़ मिश्र एवं डाक्टर टिचरप्रसाद जैसे व्यक्तियों के विषय में भी संस्मरण लिखे हैं। शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

शैली के आधार पर

हिन्दी संस्मरण साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक लेखक का अपने और दूसरे के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने का अपना-अपना ढंग है। किसी ने आत्मकथात्मक शैली को अपनाया है तो किसी ने निबन्धात्मक को। किसी लेखक ने इन दोनों के अतिरिक्त डायरी व पत्रात्मक शैली में संस्मरण लिखे हैं। इस प्रकार शैली के आधार पर संस्मरणों का विभाजन निम्नलिखित ढंग से हो सकता है—

आत्मकथात्मक शैली में लिखे हुए संस्मरण—हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने अपने जीवन का वर्णन आत्मकथात्मक शैली में संस्मरणों के रूप में किया है। इनमें शान्तिप्रिय द्विवेदी, किशोरीदास वाजपेयी एवं पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हैं।

शान्तिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'परिव्राजक की प्रजा' है। संस्मरणों के रूप में इन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी है। इसलिए इसमें एक प्रभावोत्पादक आत्मकथात्मक शैली प्राप्त होती है। इस शैली की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें लेखक अपने जीवन का विश्लेषण अपने-आप संकोचरहित करता है। जीवन की सभी अच्छाइयों और बुराइयों को वह अपनी आत्मकथा में व्यक्त करता है। द्विवेदीजी ने भी कहीं-कहीं स्पष्ट रूप से विश्लेषण किया है—

> 'मेरे स्वभाव में चापल्य नहीं था, परिस्थितियों ने मुझे समय के पहले ही गम्भीर बना दिया था। चंचल और नटवर बनने का अवसर ही नहीं मिला। कशमकश और खींचतान से मेरे जीवन का व्यायाम नहीं हो सका। यदि हाई स्कूल तक पढ़ जाता तो शायद लड़कों की क्रीड़ा-कुशलता और लोकपटुता -

---

१. कुछ देखा कुछ सुना—बिड़ला, पृ० २४९

से मैं भी सुदक्ष हो जाता, सांसारिक दृष्टि से बुद्धू नहीं रह जाता। किन्तु संसार में कल के लड़के ही तो सयाने होकर अधिक होशियारी से दाव-पेच खेलते हैं, उनसे भी तो मैं कुछ सीख सकता था। कहाँ सीख सका। प्रभाव और भावुकता ने बचपन से ही मेरा जो अतल-सजल स्वभाव बना दिया वह जीवन में स्थायी हो गया।"[१]

इसी प्रकार पाण्डेय बेचनशर्मा 'उग्र' ने भी 'अपनी खबर' में चोरी का वर्णन स्पष्ट रूप से किया है—

"सुना था हनुमानचालीसा का पाठ करने से सारे दुःख दूर, मसले स्वयमेव हल हो जाते हैं। लेकिन हनुमानचालीसा मेरे पास कहाँ। साथ ही पास में 'पीसा' कहाँ कि हनुमानचालीसा खरीदा जा सके। मैं जिस दरजे में पढ़ता था उसी में एक काला-सा लड़का था किसी छोटी जाति का। वह अपने बस्ते में रोज हनुमानचालीसा की एक प्रति ले आता था और मैं ललचाकर तड़पकर रह जाता था उस दो पैसे की विख्यात पुस्तक के लिए। अन्त में मैंने चोरी करने का निश्चय किया। मैं ऊँच लड़का, वह नीच लेकिन मैंने उसकी हनुमानचालीसा चुरा ली और बड़े चाव से मैं उसका पाठ करने लगा।"[२]

आत्मकथा शैली के सभी गुण—स्पष्ट कथन, स्पष्ट आत्मविश्लेषण, प्रभावोत्पादकता एवं स्वाभाविकता आदि इन लेखकों की आत्मकथाओं में पाए जाते हैं। १२ वर्ष का उग्रजी ने संस्मरणों में अपना जीवन अत्यन्त स्वाभाविक एवं स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। यही नहीं शान्तिप्रिय द्विवेदीजी तो आत्मकथा लिखते समय इतने भावुक हो गए हैं कि इनके जीवन की घटनाओं को पढ़ते-पढ़ते पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मकथात्मक शैली में लिखे हुए इनके जीवन के संस्मरण अत्यन्त रोचक एवं प्रभावशाली बन पड़े हैं।

निबन्धात्मक शैली में लिखे हुए संस्मरण—हिन्दी साहित्य में कुछ संस्मरण लेखकों ने अपने व अन्य व्यक्ति के जीवन-चरित्र को लिखने के लिए निबन्धात्मक शैली को अपनाया है। इस शैली का अधिक प्रयोग अन्य व्यक्तियों के जीवन-चरित्र लिखने के लिए होता है। हिन्दी साहित्य में गुलाबराय ने अपने जीवन के कुछ संस्मरणों को निबन्धात्मक शैली में 'मेरी असफलताएँ' पुस्तक में लिखा है। इस शैली में लेखक वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक दोनों ही प्रकार के वर्णन प्रस्तुत कर सकता है। गुलाबराय ने अपने व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित कुछ घटनाओं का वर्णन जहाँ निबन्धात्मक शैली में किया है वहाँ उनकी [illegible] में हमें वर्णनात्मक शैली के भी दर्शन होते हैं।

---

१. परिव्राजक की प्रजा—शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० १६३
२. अपनी खबर—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', पृ० २८

शान्तिप्रिय द्विवेदी के अपनी बहन सम्बन्धी लिखे हुए संस्मरण 'पथचिन्ह' नामक पुस्तक में हैं। इसमें भी लेखक ने इसी शैली का प्रयोग किया है। शान्तिप्रिय के संस्मरणों में भावुकतामयी शैली का आभास होता है—

"छुटपन में ही वह विधवा हो गई थी। उस अवोधवय में उसने जाना ही नहीं उसके भाग्य क्षितिज में क्या पट-परिवर्तन हो गया। जन्मकाल से माँ का जो अंचल उसके मस्तक पर फैला था, सयानी होने पर उसने वही अंचल अपने मस्तक पर ज्यों-का-त्यों पाया। मानो शैशव ही उसके जीवन में अक्षुण्ण हो गया। अचानक एक दिन जब वह अंचल भी मस्तक पर से छाया की तरह तिरोहित हो गया तब उसके जीवन में मध्यान्ह की प्रखर ज्वाला के सिवा और क्या शेष रह गया था।"[1]

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित संस्मरणों में भी इसी शैली का दिग्दर्शन होता है। ब्रजमोहन व्यास, शिवरानी देवी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर एवं उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे प्रसिद्ध लेखकों ने भी इसी शैली में अपने एवं अन्य लेखकों के जीवन सम्बन्धी संस्मरण लिखे हैं।

डायरी शैली में लिखे हुए संस्मरण—हिन्दी साहित्य में केवल राहुल सांकृत्यायन के संस्मरण डायरी शैली में लिखे हुए हैं। 'यात्रा के पन्ने' पुस्तक में इन्होंने अपनी समस्त यात्रा का वर्णन संस्मरणों में समय एवं तिथि के अनुसार किया है। इनकी शैली की विशेषता निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जाती है—

"१४ तारीख को ब्रजनन्दन बाबू के यहाँ भोजन करके ११ बजे मोटर पकड़ी। उधर गेशे धर्मवर्द्धन को कालिम्पोङ् तार दे दिया था, जो कि उसी दिन शाम को ७ बजे हमारे सिलीगुड़ी पहुँचने के एक घण्टे बाद आ गए। ६ बजे रात को कलकत्ता मेल पकड़ा और दूसरे दिन सवेरे ७ बजे को इस सारी यात्रा में साथ लिए होते, तो कितना अच्छा रहता। १५ से १६ नवम्बर तक कलकत्ता में बिताकर २० को हम पटना पहुँच गए। जायसवाल ने गद्गद् हो स्वागत किया और अब जाड़ों का समय हमारा भारत के लिए था।"[2]

पत्रात्मक शैली में लिखे हुए संस्मरण—राहुलजी के कुछ संस्मरण पत्रात्मक शैली में लिखे हुए हैं। इसी पुस्तक 'यात्रा के पन्ने' में 'प्रवास के पत्र' नामक शीर्षक में इनकी इसी शैली का दिग्दर्शन होता है। इसी प्रकार जैनेन्द्र के कुछ संस्मरण भी इसी शैली में लिखे गए हैं। प्रेमचन्द सम्बन्धी कुछ संस्मरणों का आभास इनके पत्रों द्वारा ही होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरण लिखने के भी अनेक ढंग होते हैं। प्रत्येक लेखक अपनी रुचि अनुसार उनका प्रयोग करता है।

---

१. पथचिन्ह, ले० शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८

२. यात्रा के पन्ने, ले० राहुल सांकृत्यायन, पृ० १३४

7 पत्र एवं डायरी

क) पत्र

पत्र वह लेख है जो किसी दूर रहने वाले व्यक्ति विशेष को प्रेषित किया जाता है और जिसमें उस दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावनाओं का उसकी रुचि, समझ एवं योग्यता के अनुसार कलात्मक ढंग से प्रकाशन किया जाता है। इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है। जो भी पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हुई हैं तदनुसार पत्र साहित्य के तत्व निम्नलिखित हैं—

तत्व

वर्ण्य विषय—किसी महान् साहित्यिक के वास्तविक व्यक्तित्व की जानकारी के लिए उसकी साहित्यिक कृतियाँ जितनी उपादेय हैं उनसे कहीं अधिक उपादेय उसके वैयक्तिक पत्र हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में अपने इष्ट-मित्रों, परिचित व्यक्तियों आदि को पत्र लिखता है। इनमें विभिन्न प्रकार के पत्र हो सकते हैं—जीवन की जटिल समस्याओं से सम्बद्ध पत्र, रोजमर्रा के कामकाज के पत्र, व्यावसायिक धन्धों से सम्बद्ध पत्र या किन्हीं दार्शनिक, साहित्यिक, कलात्मक अथवा राजनैतिक पहलुओं से सम्बन्धित पत्र। विषय कुछ भी हो परन्तु लेखक के व्यक्तित्व की अमिट छाप रहती है। विषय चाहे राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यक्तिगत हो पर लेखक की कला-कुशलता का आभास लगाने के लिए उसमें कुछ गुणों का होना आवश्यक है।

सर्वप्रथम विषय में रोचकता का होना आवश्यक है। नाटक एवं उपन्यास की तरह से पत्र में कोई लम्बी गाथा नहीं होती, वह तो मुक्तक काव्य की तरह से आकार में छोटा होता है। इसीलिए लेखक को पत्र प्रभावशाली ढंग से लिखना चाहिए, तभी उसमें रोचकता एवं स्वाभाविकता आ सकती है। श्रीधर पाठक द्वारा बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे पत्र में रोचकता एवं स्वाभाविकता दृष्टव्य है—

यह पत्र चतुर्वेदीजी के पत्र का उत्तर है जिसमें उन्होंने पाठकजी को जीवन-चरित्र लिखने के लिए कहा था—

"आपकी लिखी हुई जीवनियाँ मुझे बड़ी पसन्द हैं, परन्तु विशेषतः [illegible] नाम वाली [illegible] है। [illegible] उपयोगी भी नहीं हुई है। मेरी [illegible] जीवनी भी आप लिखना चाहते हैं, इस प्रस्ताव के विरुद्ध मुझे बहुत कुछ [illegible]

है, परन्तु मुझे प्रतीत होता है कि यह सब व्यर्थ जाएगा, अतः मैं निषेध न करूँगा .."[१]

स्वाभाविक ढंग से वर्णन करने में रोचकता तो आती ही है परन्तु इसके साथ स्पष्टता का भी होना आवश्यक है। यदि लेखक अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण पूर्ण ईमानदारी से वर्णन करता है तभी उसमें रसास्वादन सम्भव होता है। प्रत्येक व्यक्तिगत घटना का वर्णन स्पष्ट रूप से होना चाहिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने केदारनाथ पाठक को लिखे २५-११-०५ के पत्र में अपने परिवार में घटी घटना का वर्णन स्पष्ट रूप में किया है—

"प्रियवर, आजकल मेरे ऊपर ईश्वर की अथवा शनैश्चर की बुरी दृष्टि है। एक के उपरान्त दूसरी, दूसरी के उपरान्त तीसरी विपत्ति में आ फँसता हूँ। सुनिए मैं काशी जाने की पूरी तैयारी कर चुका था परन्तु बीच में मेरे घर ही में एक विलक्षण षड़चक्र रचा गया। हरिश्चन्द्र का गौना ६ या सात दिन में आने वाला है। मेरे पिताजी इधर कई दिनों से दौरे पर हैं। इसी बीच में मेरी विमाता जी को भी भयंकर मूर्ति धारण करने की सूझी। ४०० रु० का जेवर गायव करके कह दिया कि मेरे पास ही से घर में से चोरी हो गया।"[२]

यही नहीं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा राधाचरण गोस्वामीजी को लिखे पत्र में स्पष्टता दृष्टव्य है—

"मैं तीन चार दिन में शायद श्रीवन आऊँ, कृपापूर्वक एक स्थान अपने प्रति निकट रखिए, दो बात मुख्य आराम देख लीजिएगा। एक तो पाखाना स्वच्छ हो और दूसरे दिन को गर्म न हो चाहे अति छोटा हो।"[३]

इस प्रकार प्रत्येक कुशल पत्र लेखक के पत्रों में स्वाभाविकता, रोचकता, स्पष्टता, एवं संक्षिप्तता का होना आवश्यक है। इन गुणों के साथ ही पत्र, साहित्यिक पत्र कहला सकते हैं। विषय का चुनाव एवं लेखक की सफलता इन्हीं पर निर्भर है।

पात्रों और घटनाओं से सम्बन्ध और उनके प्रति प्रतिक्रिया पत्र में वर्णित प्रत्येक घटना और व्यक्ति के प्रति लेखक का व्यक्तिगत सम्बन्ध होता है। जिस व्यक्ति को वह पत्र लिखता है या जिस घटना के विषय में वह लिखता है उससे वह स्वयं प्रभावित होता है। पत्र में वर्णित प्रत्येक विषय का वह वर्णन करना ही अपना उद्देश्य नहीं समझता अपितु उसके प्रति अपनी टीका-टिप्पणी भी निर्भीकता से प्रस्तुत करता है। यही दशा किसी व्यक्ति के वर्णन में भी कही जा सकती है। यदि वह सच्चा

---

१. श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, रामचन्द्र मिश्र, भूमिका—बनारसीदास चतुर्वेदी।
२. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र—बैजनाथसिंह विनोद, पृ० २१८
३. भारतेन्दु ग्रन्थावली, तीसरा भाग—ब्रजरत्नदास, बी० ए० एल० एल० बी०, पृष्ठ ६७, पत्र २

लेखक है तो वह पूर्ण ईमानदारी से उस व्यक्ति का चाहे वह उसका मित्र है या सम्बन्धी वर्णन करेगा । उदाहरण के लिए यदि द्विवेदीजी को लें तो हम देखते हैं कि जहाँ इनके पत्र-साहित्य में हमें इनके व्यक्तित्व की पूर्ण झलक प्राप्त होती है वहाँ अनेक मित्रों एवं सम्बन्धियों का वर्णन भी है । मित्र की प्रशंसा भी करते हैं और समय आने पर झिड़क भी देते हैं । गुप्तजी को लिखे पत्र में यही देखने में आता है—

> "हम लोग सिद्ध कवि नहीं । बहुत परिश्रम और विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य बन जाते हैं । आप दो बातों में से एक भी नहीं चाहते । कुछ लिखकर छपा देना ही आपका उद्देश्य जान पड़ता है ।"

यही बात पद्मसिंह शर्मा में भी पाई जाती है । बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे ९-४-२८ के पत्र में सम्पादकीय मद होने की कड़ी आलोचना की है—

> "मालूम होता है कि अब आप पूरे सम्पादक बन गए हैं तभी तो हमारी पसन्द की कविताएँ नापसन्द करके छापने से इनकार कर दिया । यह सम्पादकीय मद प्रायः आ ही जाता है ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक लेखक अपने पत्रों में जिन घटनाओं एवं व्यक्तियों को विषय बनाता है उनके प्रति मन में उठी हुई प्रतिक्रियाओं का भी उल्लेख करता है ।

उद्देश्य—इसमें लेखक की उस सामान्य या विशिष्ट जीवन दृष्टि का विवेचन होता है जो उसकी कृति में कथावस्तु का विन्यास, पात्रों की योजना, वातावरण के प्रयोग आदि में सर्वत्र निहित पायी जाती है । इसे लेखक का जीवन-दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि, जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना कह सकते हैं । उन कृतियों को छोड़कर जिनकी रचना का उद्देश्य मन-बहलाव या मनोरंजन मात्र होता है, सभी कलाकृतियों में लेखक की कोई विशेष विचारधारा प्रकट या निहित रूप में देखी जा सकती है । बिना इसके साहित्यिक कृतित्व प्रयोजनहीन और व्यर्थ होता है ।

उद्देश्य की दृष्टि से पत्र साहित्य गद्य के अन्य रूपों से कुछ भिन्न होता है । जहाँ वह निर्दिष्ट व्यक्ति को किसी विशिष्ट विषय का ज्ञान मात्र देना चाहता है तब उसका उद्देश्य अन्य साहित्यिकों के सदृश होता है । इसमें आत्मीयता की मात्रा कम रहने से निबन्ध रूप के समीप हो जाता है । जब वह अपना वृत्तान्त ही प्रेषित करना चाहता है तब उसमें मानसिक प्रतिक्रियाओं की बहुलता से आत्मीयता बढ़ जाती है । इस स्थिति में लेखक का उद्देश्य सामान्य मानव जीवन की व्याख्या न होकर आत्म-जीवन की व्याख्या होती है ।[2]

हिन्दी पत्र साहित्य पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि जितने भी पत्र लेखक हुए हैं उन्होंने जहाँ आत्माभिव्यक्ति पत्रों में वर्णन की है वहाँ

---

1. पद्मसिंह शर्मा के पत्र—सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा
2. सिद्धान्तालोचन—धर्मचन्द्र दाविंद्रकुमार

अनेक अन्य विषयों पर भी अपने विचार प्रकट किए हैं। उदाहरणतया यदि हम द्विवेदी-जी को लें तो हमें इनके पत्रों को पढ़कर पता चलता है कि जहाँ इन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक पहलू का चित्रण अपने मित्रों को किया है वहाँ अनेक साहित्यिक विषयों पर भी अपने विचार प्रकट किए हैं। इनके अधिकांश पत्रों का सम्बन्ध व्याकरण से है। सम्पादक होने के कारण व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों को दूर करना ही इनका उद्देश्य था। इसलिए उन्हीं के सुझाव इनके पत्रों में पाए जाते हैं।

देशकाल वातावरण — वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है और विषयवस्तु का विकास होता है। पत्रों को वास्तविकता का भान देने की कसौटियों में वातावरण मुख्य उपकरण है। पत्र लेखक भी देशकाल की जंजीर में जकड़े रहते हैं। देश और काल की पृष्ठभूमि के बिना पात्रों का एवं लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। देशकाल के चित्रण में इस बात का ध्यान रहना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे स्वयं साध्य न बन जाय। जहाँ वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है वहाँ उससे जी ऊबने लग जाता है।

हिन्दी साहित्य में जितने भी पत्र लेखक हुए हैं सभी अपने समय की परि-स्थितियों से प्रभावित हैं। उदाहरणतया यदि हम मुंशी प्रेमचन्द को लें तो हम देखते हैं कि इन्होंने अपने पत्रों में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का स्वाभाविक रूप से यत्र-तत्र वर्णन किया है। श्री जैनेन्द्र के ११ मई, १९३० के लिखे पत्र के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उस समय की राजनैतिक परिस्थिति का चित्रण भी इन्होंने किया है —

"पहली तारीख को आया तो यहाँ कांग्रेस की उलझनों में पड़ा रहा। शहर पर फौज का कब्जा है। अमीनाबाद में दोनों पार्कों में सिपाही और गोरे डेरे डाले पड़े हैं, १४४ धारा लगी हुई है, पुलिस लोगों को गिरफ्तार कर रही है और कांग्रेस तो १४४ धारा तोड़ने की फिक्र में है। [illegible] की नई पालिसी ने लोगों की हिम्मत तोड़ दी है।"[1]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे [illegible] भी देश की परिस्थि-तियों से प्रभावित हुए विना न रह सके। [illegible] किया है—

"रियासतों की हालत [illegible] जिनके पास [illegible] आलसी हो रहे हैं। उनसे [illegible]। पर [illegible] है उनके पास डब्बल भर भी [illegible] हमारे प्रभु अंग्रेज आप ही [illegible] पर सवार हो जाएँ तो [illegible] तार भेजना पड़े कि [illegible] नहीं करेंगे।"

---

१. प्रेमचन्द चिट्ठी-पत्री, [illegible]

गांधी का पत्र साहित्य तो है ही अपने युग का इतिहास। इनके पत्रों में भी हमें तत्कालीन सभी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, घरेलू आदि सभी परिस्थितियों का पता चलता है। कमलापति त्रिपाठी ने भी अपने पत्रों में तत्कालीन सभी परिस्थितियों का चित्रण किया है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक पत्र लेखक अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होकर उनका स्वाभाविक रूप से अपने पत्रों में वर्णन करता है।

शैली—शैली अंग्रेजी 'स्टाइल' का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है। शैली भी एक प्रकार का स्पृहणीय गुण है इसलिए अच्छे लेखक अच्छे शैलीकार होते हैं। शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। पत्र लेखक की शैली अन्य विधाओं से पृथक होती है। इसमें लेखक का मुख्य उद्देश्य आत्माख्यान ही होता है इसलिए इस शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं—

"सर्वप्रथम इस शैली की विशेषता आत्मीयता है। पत्र में लेखक की आत्मीयता प्रकट होनी चाहिये। वर्ण्य विषय की दृष्टि से जब लेखक लिखता है तब उसका अपनापन दबा रहता है, वह सीधे रूप में सम्मुख नहीं आता। पत्र साहित्य में आत्मीयता अर्थात् सापेक्ष दृष्टि की अत्यन्त आवश्यकता होती है। आत्मीयता का सम्बन्ध लेखक के अपने व्यक्तित्व के साथ भी है और दूसरे व्यक्ति के साथ भी।"[1]

लेखक की आत्मीयता सरल एवं सहज रीति से अभिव्यक्त होनी चाहिए। पत्र की भाषा इस रूप में निर्मित होनी चाहिये कि वह पत्र ही समझा जाए। उसके शब्दों में इतनी शक्ति रहनी चाहिये कि वह भाव ग्राहक को वशीभूत कर सके।[2] इस प्रकार शैली में स्वाभाविकता का होना आवश्यक है।

मुक्तक काव्य की तरह पत्र का आकार छोटा होता है। इसलिए लेखक को अपनी विचारधारा संक्षिप्त रूप में प्रकट करनी चाहिये। अधिक लम्बे आकार का पत्र, पत्र नहीं बल्कि कोई निबन्ध बन जाता है। अपने विषय को रोचक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए लेखक को पत्र संक्षिप्त रूप में लिखना चाहिये।

बात को थोड़े शब्दों में अधिक-से-अधिक स्पष्टता देना पत्र की सबसे बड़ी मांग है। पत्रों में कुछ लोग तो अपना सारा व्यक्तित्व उंडेल देना चाहते हैं और कुछ उसको निर्वैयक्तिक तथा रंगीनी से खाली रखना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में मध्यम मार्ग का अनुसरण श्रेयस्कर है।"[3] अतः पत्र लेखक में गागर में सागर भरने की क्षमता होनी चाहिये।

---

१. सिद्धान्तालोचन—[illegible]
२. सिद्धान्तालोचन—[illegible]
३. काव्य के रूप, गुलाबराय

अन्तिम विशेषता इस शैली की यह है कि पत्र लेखक को इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये कि यह पत्र भावग्राहक के अनुकूल है या नहीं। यदि पत्र में किसी ऐसे विषय का वर्णन है जो उसकी समझ के बाहर है तो वह प्रभावहीन हो जायेगा। इस प्रकार इस शैली की यह महत्त्वपूर्ण विशेपता है कि पत्र भावग्राहक के अनुकूल होना चाहिये।

पत्र साहित्य का विकास

पत्र लेखन एक कला है यद्यपि प्रत्येक व्यवित के पत्र कला की ऊँचाई को नहीं छू पाते। किसी पत्र का सौष्ठव और महत्त्व लेखक के व्यक्तित्व पर अवलम्बित है। लेखक का प्रयोजन, रुचि और योग्यता आदि तत्त्व ही किसी पत्र को कला की वस्तु बनाकर सुरक्षित रख सकते हैं। पत्रों की अपील कुछ क्षण के लिए व्यवितगत होते हुए भी उसका मूल स्रोत लेखक के कलात्मक व्यवितत्व में होता है।

भारतेन्दु कालीन पत्र साहित्य—हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम पत्र लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए हैं। इनके कुछ पत्रों का संग्रह ब्रजरत्नदास ने 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' तीसरा भाग में दिया है। इनके ये पत्र गोस्वामी श्री राधाचरण एवं श्री बद्रीनारायण श्री उपाध्याय प्रेमघन को लिखे हुए हैं। इन समस्त पत्रों में भारतेन्दुजी के साहित्यिक व्यक्तित्व के विपय में ही ज्ञान होता है। केवल एक पत्र जो इन्होंने 'प्रेमघन' को लिखा है उसमें इन्होंने एक व्यक्तिगत गोपनीय घटना का वर्णन किया है। श्री राधाचरण को लिखे हुए इनके पत्रों से इनकी स्पष्टवादिता, तटस्थ वृत्ति एवं अलौकिक पुरुपों एवं चित्रों के प्रति रुचि का आभास होता है। केवल एक पत्र में जो कि इन्होंने श्री बदरीनारायण प्रेमघन को लिखा था उसमें इनकी दार्शनिक विचारधारा का पता चलता है

> "आपका कृपा पत्र आया। यह संसार दुःख का सागर है और अपनी-अपनी विपत्ति में सब फँसे हैं पर मैं सोचता हूँ कि जितना मैं चारों तरफ से दुःख में जकड़ा हूँ इतना और कोई कम जकड़ा होगा। पर क्या करूँ खैर चला ही जाता है। बाबूजी का यह तुक बहुत ही ठीक है—'है संसार का यह मजा, घन सरिस दुःख तड़ितसम सुख मोह छाजन छजा।' इन्हीं झंझटों से आजकल पत्र नहीं लिखा। क्षमा कीजियेगा। चित वैसा ही है। इसमें सन्देह न कीजियेगा। 'सौ युग पानी में रहे मिटे न चकमक आग'।"[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् दूसरे पत्र लेखक श्रीधर पाठक हैं। इनके समस्त पत्रों का संग्रह किसी एक पुस्तक में नहीं प्राप्त होता। फुटकर रूप में इनके पत्र प्राप्त होते हैं। इनका पत्र-व्यवहार श्री पिन्काट, बालमुकन्द गुप्त, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' लोचनदास पाण्डेय, बनारसीदास चतुर्वेदी एवं भारतेन्दु आदि से हुआ था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से जो पत्र-व्यवहार हुआ था उन पत्रों

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, तीसरा भाग—ब्रजरत्नदास, पृ० ९७६

का संग्रह श्री बैजनाथसिंह विनोद ने अपनी पुस्तक 'द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र' में किया है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९५८ में हुआ। द्विवेदीजी को लिखे पत्रों में उस काल की लेखन प्रणाली एवं व्याकरण सम्बन्धी विवाद है। श्रीधर पाठकजी ने एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है कि —

> "कर्त्ता को प्रायः सर्वत्रैव प्रकट रखना अर्थात् जहाँ उसे पुरानी प्रथा के अनुसार गुप्त रखना चाहिये वहाँ भी उसका लाना, इससे अरोचकता उत्पन्न होती है और मुहाविरे का मजा मारा जाता है।"[1]

इसके बाद अनेक उदाहरण हैं द्विवेदीजी के विचारों का खंडन करते हुए अन्त में उन्होंने लिखा है—

> "मैं कोई नवीन प्रणाली निकालना नहीं चाहता, परन्तु शिष्ट क्षुण्ण प्रथा का परम पक्षपाती हूँ—मुझे राजा शिवप्रसाद, पं० राधाचरण गोस्वामी, लाला बालमुकुन्द गुप्त की लेख शैली बहुत रुचती है और मुझे असीम प्रसन्नता हो यदि आप इन सुलेखकों का अनुसरण कर सकें।"[2]

इनके चतुर्वेदी, पाण्डेय, भारतेन्दु, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री एवं बालमुकुन्द गुप्तजी को लिखे पत्रों का संग्रह रामचन्द्र मिश्र ने अपनी पुस्तक 'श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य' में किया है। आ० स्वामी भगीरथपुरी के लिए लिखित पत्र में एक छात्र की-सी विनम्रता, बालमुकुन्द गुप्त एवं गंगाप्रसाद अग्निहोत्री के लिए लिखे हुए पत्रों में मैत्री भाव एवं बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रति लिखित पत्रों में आत्मीयता स्पष्ट व्यक्त होती है।[3] भाषा और साहित्य के निर्माण के सम्बन्ध में पाठकजी के ये पत्र बड़े महत्वपूर्ण हैं। इनके पत्र गद्य एवं पद्य दोनों में लिखे हुए हैं।

भारतेन्दु युग के अन्य पत्र लेखकों में पंडित बालकृष्ण भट्ट एवं बालमुकुन्द गुप्त का नाम आता है। भट्टजी के श्रीधर पाठक को लिखे हुए कुछ पत्रों का संग्रह विनोदजी ने अपनी पुस्तक 'द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र' में किया है। ये पत्र गद्य और पद्य में लिखे गए हैं। बालमुकुन्द गुप्तजी के लिखे हुए उन सभी पत्रों का संग्रह है जो कि इन्होंने श्रीधर पाठक को लिखे थे। गुप्तजी के पत्रों में सुदूर अतीत की अनेक जानने योग्य बातें हैं। उस काल की साहित्यिक चोरी, साहित्यिक विवाद और गुरुजनों के प्रति प्रेम और आदर के अनेक उदाहरण गुप्तजी के पत्रों में भरे पड़े हैं। ये पत्र ऐसे हैं कि जिनका महत्व आज भी कम नहीं हुआ है। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को स्पष्ट करने के लिए इन पत्रों को प्रमाण रूप में रखा जा सकता है।[4]

---

१. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र—बैजनाथसिंह विनोद, पृ० १६८
२. वही, पृ० १८८
३. श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, रामचन्द्र मिश्र, पृ० ३२३
४. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र—बैजनाथसिंह विनोद, भूमिका भाग

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग में जितने भी पत्र लेखक हुए हैं उन सब लेखकों के पत्रों का विषय विशेष रूप से साहित्यिक ही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त एवं श्रीधर पाठक के सभी पत्रों का अध्ययन करने से यही ज्ञात होता है कि ये पत्र हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। इन सभी लेखकों के साहित्यिक व्यक्तित्व की जानकारी तो हो जाती है परन्तु व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ कम ही आभास होता है। केवल एक-दो पत्र ही इन्होंने ऐसे लिखे हैं जिनसे इनके व्यक्तिगत जीवन के कुछ अंश का पता चलता है।

द्विवेदीकालीन पत्र साहित्य—द्विवेदी युग के पत्र लेखकों में सर्वप्रथम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का नाम आता है। इनके समस्त पत्रों का संकलन बैजनाथसिंह विनोद ने सन् १९४८ में 'द्विवेदी पत्रावली' नाम से प्रकाशित किया। इनके पत्रों से हमें इनके साहित्यिक एवं व्यक्तिगत जीवन की झाँकी प्राप्त होती है। कुछ व्यक्तिगत प्रसंगों को छोड़कर द्विवेदीजी के पत्र किसी-न-किसी भाषा सम्बन्धी प्रश्न अथवा साहित्यिक समस्या पर लिखे गए हैं फलतः आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास पर इन पत्रों से काफी प्रकाश पड़ता है। व्यक्तिगत जीवन में से उनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता, दृढ़ निश्चय, मितव्ययिता आदि गुणों का पत्रों में वर्णित छोटे-छोटे प्रसंगों से पता चलता है।

आचार्य द्विवेदी के पश्चात् पद्मसिंह शर्मा के पत्र प्राप्त होते हैं। इनके पत्रों का संग्रह पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी एवं हरिशंकर शर्मा ने सन् १९५६ में 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' नाम से प्रकाशित किया। शर्माजी के पत्रों से हमें उनके मानव रूप एवं साहित्यिक रूप दोनों का परिचय मिलता है। इनके पत्रों को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि पंडितजी केवल प्रकाण्ड पंडित ही नहीं थे वरन् उनमें व्यवहार-बुद्धि, साहस, निर्भीकता, विचारों की दृढ़ता और स्वाभिमान था और सर्वोपरि उनका मानव रूप इन पत्रों से भलीभाँति विदित हो जाता है। लगभग प्रत्येक पत्र से इनकी जिन्दादिली टपकती है। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में भी अनेक आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनके पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रत्येक घड़ी रस में डूबे रहते थे।

इनकी साफगोई, दिखावट से घृणा, दम्भ से अरुचि, आत्मगौरव, निर्भीकता, आदर्शपालन, साहित्य सेवा, बहुज्ञता, भाषाधिकार आदि अनेक बातों का इन पत्रों से पता चलता है। उनके लिए यह कहा गया है कि सरस्वती की रक्षा के लिए तो वे 'बरतना शमशेर' थे। प्रस्तुत संग्रह से इस कथन की सार्थकता पूर्णतः प्रमाणित होती है।[1]

द्विवेदी युग के अन्य प्रसिद्ध पत्र लेखकों में मुंशी प्रेमचन्द का नाम उल्लेखनीय है। इनके पत्रों का संग्रह 'प्रेमचन्द : चिट्ठी पत्री भाग प्रथम' एवं 'प्रेमचन्द : चिट्ठी पत्री भाग द्वितीय' के नाम से अमृतराय ने सन् १९६१ में प्रकाशित किया। मुंशीजी के

---

१. पद्मसिंह शर्मा के पत्र—लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, आलोचना, अक्तूबर, १९५६

समस्त व्यक्तित्व का ज्ञान हमें इनके पत्रों से होता है। जितने भी पत्र इन्होंने अपने-अपने मित्रों को लिखे वे प्रकाशित करवाने के उद्देश्य से तो लिखे न थे, इसलिए उनमें कई ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जो कि इनके व्यक्तित्व को समझने में पूर्णतया सहायक सिद्ध हुई है। अपने परिवार, स्त्री एवं व्यक्तिगत विचारों का जैसा नग्न चित्र इन्होंने अपने पत्रों में खींचा हैं वैसा शायद ही आजतक कोई खींच सका हो। श्री जैनेन्द्र को लिखे इनके पत्र विशेपतया महत्वपूर्ण हैं। उनसे इनके व्यक्तिगत जीवन एवं विचारों को समझने में विशेष सहायता प्राप्त होती है। समस्त पत्रों में इनका भोलापन झलकता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा श्री केदारनाथ पाठक को लिखे कुछ पत्र विनोदजी ने अपनी पुस्तक 'द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र' में प्रकाशित किए हैं। इन पत्रों से शुक्लजी की स्पष्टवादिता एवं साहित्यिक व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त होती है।

सन् १९३५ में 'माधुरी' पत्रिका में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के पत्र 'एक सप्ताह' एवं मैथिलीशरण गुप्तजी का एक पत्र 'साकेत पर महात्माजी' पत्र-व्यवहार नाम से प्रकाशित हुए। विद्यालंकारजी के १३ श्रावण से १९ श्रावण तक के लिखे पत्र हैं। इन पत्रों से इनकी भावुकता दृष्टिगोचर होती है। गुप्तजी ने अपने पत्र में 'साकेत' लिखने का उद्देश्य, उसका नामकरण, कला एवं भाव पक्ष पर अपने विचार रक्खे हैं।

इसके पश्चात् डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा के कुछ पत्र 'सुधा' पत्रिका में सन् १९३६ एवं सन् १९३८ में प्रकाशित हुए। ये पत्र उन्होंने अरब, इटली, पैरिस, बैल्जियम आदि से लिखे हैं। इन पत्रों में इन्होंने अपनी समस्त यात्रा का वर्णन किया है। सन् १९४८ में भदन्त आनन्द कौसल्यायन द्वारा लिखे भिक्षु के पत्र प्रकाशित हुए।

इनके अतिरिक्त कमलापति त्रिपाठी के पत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके पत्रों का संग्रह 'बन्दी की चेतना' नाम से सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ। त्रिपाठीजी ने ये पत्र नैनी जेल से अपने आत्मज श्री लोकपति त्रिपाठी को लिखे हैं। यद्यपि ये पत्र व्यक्तिगत हैं तो भी आदर्श, नैतिकता, अध्यात्म, मानवता एवं भारतीय जीवनदर्शन के प्रति अगाध रूप से आस्थावान् गम्भीर अध्येता तथा विचारक की अनुभूति होने के कारण इन पत्रों में अर्थ, काम, धर्म, विज्ञान, दर्शन एवं समाजशास्त्र की दृष्टि से जीवन एवं जगत के सामान्यतः प्रत्येक पहलू पर जो सम्यक् एवं मूल्यवान् विचार प्रस्तुत किए हैं उनके कारण इनका महत्व सार्वभौमिक हो उठा है। विषमता की पीड़ा से व्यग्र तथा समाज और जीवन तथा जगत में समता एवं सामंजस्य की स्थापना के लिए विचार पथ का सुस्पष्ट निर्देश भी इस कृति में है।

सन् [illegible] में [illegible] द्वारा लिखे [illegible] के पत्र '[illegible] : विचार और व्यक्तित्व' नाम से प्रकाशित हुए। इन पत्रों का विषय [illegible] है।

आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्र साहित्य

हिन्दी पत्र साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं ने भी बहुत सहयोग दिया है।

आजकल हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। सन् १९६२ में श्रीराम शर्मा का 'श्री नेहरू को एक पत्र' 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ। सन् १९६३ में सुरेशचन्द्र द्वारा लिखे पत्र—'वृन्दावनलाल वर्मा : पत्र के दर्पण में', 'पत्र-व्यवहार जिनका सुखद व्यसन है'—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के दो पत्र 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्वर्गीय पीर मुहम्मद यूनिस के पत्र 'सम्मेलन पत्रिका' में प्रकाशित किए हैं। यही नहीं सन् १९६४ में नीरज के लिखे 'लिख भेजत पाती' पत्रों का संग्रह प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार हिन्दी पत्र साहित्य प्रगति पर है।

अनूदित पत्र साहित्य—इन पत्रों के अतिरिक्त कुछ अनूदित पत्र संग्रह भी हिन्दी में प्राप्त होते हैं। बापू के समस्त पत्रों का हिन्दी अनुवाद रामनारायण चौधरी ने किया है। इनके जमनालाल बजाज को, मणिबहन को, आश्रम की बहनों को लिखे समस्त पत्रों का हिन्दी अनुवाद प्राप्त है। इसके अतिरिक्त अबीलार्ड और हेलोज के प्रेमपत्रों का 'प्रायश्चित' नाम से अनुवाद सत्यजीवन वर्मा ने सन् १९२९ में किया। श्री अरविन्द के पत्र भी बंगला से हिन्दी में अनुवाद रूप में पाए जाते हैं। 'पत्रांजलि' श्री सतीश चक्रवर्ती की बंगला पुस्तक स्वामी स्त्रीर-पत्र का हिन्दी रूपान्तर पंडित कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ने संवत् १९७९ में किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं श्री नेहरू के पत्रों का भी हिन्दी अनुवाद प्राप्त है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग का पत्र साहित्य द्विवेदी युग के पत्र साहित्य से भिन्न है। भारतेन्दु युग में जितने भी पत्र लेखक हुए हैं उन सबका विषय विशेष रूप से साहित्यिक ही था। द्विवेदी युग के पत्र लेखकों ने अपने पत्रों का विषय जहाँ साहित्यिकों को लिया वहाँ व्यक्तिगत जीवन में घटी घटनाओं पर भी प्रकाश डाला है। इस प्रकार पत्र लिखने में जो कला-कुशलता द्विवेदी-युगीन लेखकों में प्राप्त होती है वह भारतेन्दु युग के लेखकों में नहीं। वर्तमान काल में कुछ पत्र हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं। इससे अनुमान है कि हिन्दी पत्र साहित्य विकासोन्मुख है। इसकी प्रगति में साहित्यिक ही नहीं प्रत्युत राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक व्यक्ति भी सहयोग दे रहे हैं। पत्र साहित्य का यह विकास मैंने प्रकाशित पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्रों के आधार पर लिखा है।

विभाजन

हिन्दी पत्र साहित्य पर दृष्टिपात करने के पश्चात् उसको निम्नलिखित ढंग से विभाजित किया जा सकता है—

साहित्यिक पत्र—इन पत्रों का विषय साहित्य से सम्बन्धित होता है। साहित्य से मेरा अभिप्राय भाषा, व्याकरण शैली एवं पुस्तक आदि से है। ऐसे पत्रों में लेखक का मुख्य उद्देश्य विषय को समझाकर उसके प्रति अपने विचार प्रकट करना होता है। ऐसे पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व गौण एवं विषय मुख्य रूप से प्रधान होता है। आचार्य

द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा एवं श्रीधर पाठक के पत्र इसी श्रेणी के हैं। श्रीधर पाठकजी के अधिकांश पत्रों का विषय साहित्यिक है। इनके पत्रों में उस काल की लेखन प्रणाली एवं व्याकरण सम्बन्धी विवाद है। एक पत्र में सर्वनाम सम्बन्धी लिखते हैं—

> "सर्वनाम आदि के व्यवहार की नई रीति जी में बहुत दिनों से खटक रही थी। थोड़े से उदाहरण यहाँ देता हूँ—१. उसने कहा 'हरे कृष्ण' और (वह) चल दिया—यहाँ 'वह' का प्रयोग प्रचारविरुद्ध है यद्यपि व्याकरण से शुद्ध है। २. जब वह चीखा (तब) मैं चौंक पड़ा। यहाँ 'तब' मैं मुहाविरा है 'तो' होना चाहिए। प्रायः 'तब' (प्रचार के अनुसार) जब के बाद छोड़ दिया जाता है—परन्तु अब उसके निरन्तर वा निर्विकल्प व्यवहार की परिपाटी पड़ती जाती है...।"[1]

भारतेन्दुजी के भी कुछ पत्रों के विषय का सम्बन्ध साहित्य से ही है। गोस्वामी श्रीराधाचरण जी को लिखते हैं—

> "महात्माओं ने जो पद बनाए हैं उनमें प्रिया-प्रियतम का जो संवाद है वा अन्य सखियों की उक्ति है उन्हीं सबों के यथास्थान नियोजन से एक रूपक बने तो बहुत ही चमत्कार हो अर्थात् नाटक की और जितनी बातें हैं अमुक आया गया इत्यादि अंक दृश्य इत्यादि मात्र तो अपनी सृष्टि रहे किन्तु संवाद मात्र उन्हीं प्रवीनों के पदों की योजना से हों। जहाँ कहीं पूरा पद रहे वहाँ पूरा कहीं आधा चौथाई एक टुकड़ा जितना आवश्यक हो उतना मात्र उनमें से ले लिया जाय। यह भी यों ही कि एक बेर पदों में से चुन-चुन कर अत्यन्त चोखे-चोखे जो हों वा जिन में कोई एक टुकड़ा भी अपूर्व हो वह चिन्हित रहे फिर यथास्थान उनकी नियोजना हो, ऐसा ही गीत गोविन्द से एक संस्कृत में हो, बहुत ही उत्तम ग्रन्थ होगा।"[2]

आचार्य द्विवेदीजी 'तुलसी दर्शन-पुस्तक' के विषय में विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं—

> "तुलसी दर्शन की कापी आपने क्या भेजी मुझे संजीवनी का दान दे डाला। मैंने उसका कुछ अंश अब तक पढ़ा कर सुना है विशेषकर भक्ति विषयक। मैं मुग्ध हो गया। आप धन्य हैं। ऐसी पुस्तक लिखी जैसी तुलसी पर आज तक किसी ने न लिखी थी और न यही आशा है कि आगे कोई लिखेगा।
>
> आपने अनेक दृष्टियों से रामचरितमानस पर विचार किया है। [illegible] की यथास्थान [illegible] कर दिया है। आपने इस विषय में जो [illegible] प्रकट की है वह [illegible] है। मेरे मन में आता था कि [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible]। [illegible]

---

१. [illegible] —सम्पादक [illegible], पृ० [illegible]
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली, तीसरा भाग, [illegible], पृ० [illegible]

मुझे ज्ञात हुआ कि आप इस विषय में मुझ से हजार गुना अधिक जानते हैं।"[1]

इसी प्रकार बालमुकुन्द गुप्त के पत्रों में भी सुदूर अतीत की अनेक जानने योग्य बातें है। उस काल की साहित्यिक चोरी, साहित्यिक विवाद और एक दूसरे के प्रति प्रेम और आदर के अनेक उदाहरण गुप्तजी के पत्रों में भरे पड़े हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को स्पष्ट करने के लिए इन पत्रों को प्रमाण रूप में रखा जा सकता है।

आत्मकथात्मक पत्र—इन पत्रों में लेखक अपने व्यक्तित्व का परिचय स्पष्ट रूप से आत्मकथात्मक शैली में अपने मित्र व सम्बन्धी को वर्णन करता है। ऐसे पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है। स्वाभाविकता, स्पष्टता आदि विशेषताएँ इन पत्रों की होती हैं। ऐसे पत्र आत्मकथा एवं जीवनी के लिए सहायक होते हैं। गोपनीय घटनाओं का वर्णन होने से ये हृदय का पूर्ण दर्पण होते हैं। हिन्दी साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द, आचार्य द्विवेदीजी, पद्मसिंह शर्मा, रामचन्द्र शुक्ल आदि साहित्यिकों के कई पत्र इसी श्रेणी के हैं।

मुंशी प्रेमचन्द एक पत्र में अपने हालात के विषय में लिखते हैं—

> "मेरे हालात नोट कर लें। तारीख पैदायश संवत् १९३७। बाप का नाम मुंशी अजायबलाल। सुकूनत मौज़ा मढ़वां लमही। मुत्तलिस पाण्डेपुर। बनारस। इब्तदाअन आठ साल तक फारसी पढ़ी। फिर अंग्रेजी शुरू की। बनारस के कालेजिएट स्कूल से एन्ट्रेंस पास किया। वालिद का इन्तकाल पंद्रह साल की उम्र में हो गया। वालिदा सातवें साल गुजर चुकी थीं। फिर तालीम के सीगे में मुलाजिमत की। सन् १९०१ ई० से लिटरेरी जिन्दगी शुरु की। रिसाला 'जमाना' में लिखता रहा। कई साल तक मुतर्फरिक मजामीन लिखे। सन् १९०४ में एक हिन्दी नाविल प्रेमा लिखकर इण्डियन प्रेस से शाया कराया। सन् १२ में जल्वए ईसार और सन् १८ में बाजारे हुस्न लिखा। हिन्दी में सेवासदन, प्रेमाश्रम रंगभूमि, कायाकल्प—चारों नाविल दो-दो साल के वक्फे बाद लिखे—अब खाना खशी है। बाकी उमर आपको खुद मालूम है।"[2]

इसी प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक पत्र में अपने घर के हालात के विषय में लिखते हैं—

> "प्रिय आजकल मेरे ऊपर ईश्वर की अथवा शनैश्चर की बुरी दृष्टि है। एक के उपरान्त दूसरी, दूसरी के उपरान्त तीसरी विपति में आ फँसता हूँ। सुनिए मैं काशी जाने की पूरी तैयारी कर चुका था परन्तु बीच में मेरे घर ही में एक विलक्षण षड़चक्र रचा गया? हरिश्चन्द्र का गौना छः या सात दिन में आने वाला है। इधर मेरे पिताजी कई दिनों से दौरे पर हैं। इसी बीच में मेरी

---

१. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र, पृ० ५९, ६०

२. प्रेमचन्द : चिट्ठी-पत्री भाग १, पृ० १६१

विमाता को भी भयंकर मूर्ति धारण करने की सूझी। ४०० रु० का जेवर गायब करके कह दिया कि मेरे पास ही से घर में से चोरी हो गया। वे जेवर प्रायः वही थे जो हरिश्चन्द्र के विवाह में मिले थे—मेरे पिताजी को खबर दी जा चुकी है, आज वह आने वाले हैं।"[१]

इस प्रकार अनेक पत्रों में जहाँ लेखक ने अपने व्यक्तित्व के विषय में लिखा है वहाँ उस पर पड़ने वाले वातावरण एवं व्यक्तिगत घटनाओं का भी स्पष्ट रूप से वर्णन है। ऐसे अनेकों पत्र आचार्य द्विवेदी आदि साहित्यिकों के भी प्राप्त होते हैं। उनमें लेखक की ईमानदारी एवं जिन्दादिली प्राप्त होती है।

अन्य चरित्रमूलक पत्र—हिन्दी पत्र साहित्य में कुछ ऐसे पत्र भी हैं जिनमें लेखकों ने अन्य व्यक्तियों के चरित्र के विषय में लिखा है। ऐसे पत्र अन्य चरित्रमूलक कहलाते हैं। आचार्य द्विवेदी, पद्मसिंह, शर्मा मुंशी प्रेमचन्द एवं शिवचन्द्र नागर द्वारा प्रकाशित पत्र इसी श्रेणी के हैं। ऐसे पत्रों की शैली समास शैली होती है। द्विवेदीजी ने एक पत्र में श्रीमान् राजा कमलानन्द के विषय में लिखा है—

"श्रीमान् राजा कमलानन्द सिंह की उदारता, गुणग्राहकता और सामर्थ्य का और क्या उदाहरण हो सकता है। आपके उदाहरण से कर्णबलि और दधीचि आदि की कथा सब सच जान पड़ती है।...श्रीमान् की प्रतिष्ठा, कीर्ति और ख्याति, अनन्य परिमेय और दिव्यव्यापिनी है उनकी रचना हमारी समझ में है ही नहीं, उसकी किस तरह वृद्धि होगी या कौन कार्य करने से वृद्धि होगी यह बतलाना हमारी सामर्थ्य के बाहर है।"

पं० पद्मसिंह शर्मा भी चतुर्वेदीजी को पन्तजी के विषय में लिखते हैं—

"इस बार पहली बार पंडित सुमित्रानन्द पंत से बिजनौर में मुलाकात हुई। आदमी तबीयत के साफ़ और 'जेंटिलमैन' साबित हुए। 'पल्लव' की भूमिका में जो पहले कवियों के विषय में अन्ट सन्ट, अनाप-शनाप, उल-जलूल लिख गए हैं उसे वापिस लेने को कहते थे। यह भी कहते थे कि 'ब्रजभाषा का विरोध करने के लिए मुझे खास तौर से कहा गया था। इसी से ऐसा लिखना पड़ा। सुरीला गला है। सुरताल से वाकिफ़ हैं। राग रागिनियों के नाम जानते हैं। आज-कल में एक आदर्श छायावादी कवि में जो गुण होने चाहिए सब हैं।"

इस प्रकार अनेक पत्र इन व्यक्तियों ने अन्य चरित्र विषयक लिखे हैं।

वर्णनात्मक पत्र—इस प्रकार के पत्रों में लेखक किसी नगर-स्थान या किसी विशेष भवन का वर्णन अपने पत्रों में वर्णनात्मक शैली में करता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के सभी पत्र इस श्रेणी में आते हैं। उनके योरप, पेरिस, इटली, [illegible] आदि से लिखे पत्र इसी प्रकार के हैं। ऐसे पत्रों में लेखक की वर्णन शैली में सजीवता एवं [illegible] का होना आवश्यक है। [illegible] राज्य के मुख्य नगर [illegible] का वर्णन [illegible]

१. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र, पृ० २१८

पत्र में डाक्टर साहब ने किया है—

"ड्रेस्डेन नगर बर्लिन की अपेक्षा पुराना और शान्त है। एल्ब नदी के किनारे पहाड़ियों से घिरा होने की वजह से रमणीक मालूम होता है। चारों ओर का दृश्य अजमेर की याद दिलाता है और नदी के किनारे का दृश्य आगरा की जमना का।"

नगर व स्थान के वर्णन की अपेक्षा वहाँ रहने वाले स्त्री-पुरुषों के विषय में भी डाक्टर साहब ने लिखा है। बेल्जियम के स्त्री-पुरुषों के विषय में लिखते हैं—

"बेल्जियम के स्त्री पुरुषों के मुख और व्यवहार से शराफत टपकती है...इंगलैण्ड के लोगों का अक्खड़पन तथा पेरिस वालों की कामुकता यहाँ नहीं दिखलाई पड़ती। लोग बहुत मीठे ढंग से बात करते हैं। अगर उन्हें अनुमान भी हो जाता था कि हम लोगों को किसी वजह की तलाश है तो खुद पूछ लेते थे। दौड़-भाग भी ब्रूसेल्ज में लन्दन या पेरिस की सी नहीं है। यों साम्राज्य रखने वाले देशों के दिमाग कुछ फिरे हुए होना स्वाभाविक है।"

इस प्रकार अनेक पत्रों में नगरों का, विशेष स्थानों का वर्णन प्रमुख रूप से पाया जाता है।

विचारप्रधान पत्र—विचारप्रधान पत्रों में किसी भी विषय एवं समस्या पर प्रकाश डाला जाता है। पत्र का विषय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं नैतिक कुछ भी हो सकता है। इस प्रकार के पत्रों में उपदेशात्मकता अधिक होती है। वैसे तो सभी लेखकों के कुछ पत्र विचारप्रधान हैं परन्तु विशेषतया कमलापति त्रिपाठीजी के पत्र इस कोटि के हैं। यद्यपि त्रिपाठीजी के पत्र व्यक्तिगत हैं तो भी आदर्श नैतिकता, अध्यात्म, मानवता एवं भारतीय जीवन दर्शन के प्रति अगाध रूप से आस्थावान् गंभीर अध्येता तथा विचारक की अनुभूत कृति होने के कारण इन पत्रों में अर्थ,धर्म, काम, विज्ञान दर्शन एवं समाजशास्त्र की दृष्टि से जीवन एवं जगत के सामान्यतः प्रत्येक पहलू पर जो सम्यक् तथा मूल्यवान् विचार प्रस्तुत किए हैं उनके कारण इसका महत्व सार्वलौकिक हो उठा है। विषमता की पीड़ा से त्रस्त व्यक्ति तथा समाज और जीवन तथा जगत से समता एवं सामंजस्य की स्थापना के लिए विचार पथ का सुस्पष्ट निर्देश भी इस कृति में है।

स्वामी विवेकानन्द के पत्र भी विचारात्मक पत्रों की श्रेणी में आते हैं इनके सभी पत्र धर्म, दर्शन, संस्कृत, शिक्षा, कला, भ्रमण, समाज तथा राष्ट्रनिर्माण आदि महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित हैं।

डायरी

डायरी वह आत्मीय पुस्तक है जिसमें लेखक प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता अपितु इसके साथ ही साथ मानवीय प्रतिक्रियाओं का वर्णन भी संक्षिप्त, रोचक एवं सुसंगठित रूप से करता है। इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है।

तत्व

हिन्दी साहित्य में जो भी डायरियाँ एवं डायरियों के पन्ने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं उनके अनुसार डायरी के तत्व निम्नलिखित हैं—

विषयवस्तु का विस्तार—डायरी का यह महत्वपूर्ण तत्व है। विषय से अभिप्राय लेखक के केवल खाने पीने सोने एवं उठने से नहीं है प्रत्युत जीवन में अनुभव की हुई कोई ऐसी घटना, नई अनुभूति, विचित्र वस्तु आदि का विवरण है जो सामान्यतः मानव समाज के लिए भी शिक्षाप्रद नवीन अद्भुत रुचिकर तथा लाभकर हो।[1] डायरी लेखक का बहुत कुछ कौशल उसके विषय चुनाव में है। साधारण घटनाओं का वर्णन करने से कोई लाभ नहीं, यद्यपि वर्णन कौशल द्वारा साधारण विषय में भी सुन्दरता लाई जा सकती है। तथापि रचना की उत्तमता अधिकांश में सामग्री की उत्तमता पर निर्भर रहती है। जीवन के जिस भी भाग का वर्णन लेखक अपनी रचना में करे वह सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसका प्रभाव लोगों पर भी पड़े, लेखक पर तो होता है। विषय चुनाव डायरी में कृत्रिम नहीं होना चाहिए। यहाँ पर चुनाव से मेरा अभिप्राय छोटी-छोटी बातों एवं घटनाओं के वर्णन से है।

विषय वर्णन में सर्वप्रथम रोचकता का होना आवश्यक है। दैनिकी लेखक को अपने जीवन की घटनाओं का इस ढंग से वर्णन करना चाहिए जिससे वह पाठक के मन को अपनी ओर खींच सके। रोचकता दो ही बातों से हो सकती है—कौतूहलता एवं नवीनता। पाठक कुछेक घटनाएँ पढ़कर सोच में पड़ जाए कि इस जीवन की घटना के पश्चात् लेखक का क्या होगा। नवीनता होने के कारण पाठक का मन उकता नहीं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी डायरी में जीवन के जिन सात वर्षों का वर्णन किया है वह अत्यन्त रोचक है। सत्य असत्य, धर्म, विवाह, शिक्षा आदि समस्याओं पर विचार प्रकट करते हुए भी लेखक ने वर्णन शैली में रोचकता का ध्यान रखा है। 'सत्य क्या है' इस विषय को भी कितनी रोचकपूर्ण भाषा में व्यक्त किया है—

> "संसार में इतने बहुत से धर्म हैं इनसे ही मालूम होता है कि सत्य का जानना कितना कठिन है। एक ओर एक बूढ़ा मनुष्य जनेऊ पहने माथे पर चन्दन लगाए, स्नान करके कुशासन पर बैठा गायत्री का जाप कर रहा है। दूसरी ओर लम्बे घोर काले कपड़े पहने गिरिजाघर में खड़ा हुआ एक मनुष्य आँखें मूँदकर ईसा मसीह से पापों को क्षमा करने की प्रार्थना कर रहा है। तीसरी जगह [illegible] को सामने [illegible] [illegible] के मुर्गे [illegible] में मुँह [illegible], मुल्ला [illegible] मस्जिद में घुटनों के बल बैठे हुए या मोहम्मद रसूल अल्लाह [illegible] है। इनमें कौन ठीक है?"[2]

आत्मकथा की भाँति डायरी में [illegible]

1. [illegible]
2. मेरी कालिज डायरी—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १२

इसमें अपेक्षाकृत अधिक संक्षिप्तता रहती है।[1] इस प्रकार विषय में संक्षिप्तता का होना भी परमावश्यक है अत्यधिक विस्तार विषय को नीरस बना देता है मुक्तिबोधजी ने केशव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को कुछ ही पंक्तियों में कह डाला है—

"वह बालक सचमुच बहुत दयालु, धीर-गम्भीर, भीषण कष्टों को सहज ही सह लेने वाला अत्यन्त क्षमाशील था। किन्तु साथ ही वह शिथिल, स्थिर, अचंचल यन्त्रवत् और सहजस्नेही था। उसमें सबसे बड़ा दोष यह था कि उसमें बालकोचित बालसुलभ गुण-दोष नहीं थे। मुझे हमेशा लगा उसका विवेक वृद्धता का लक्षण है।"[2]

विषय वर्णन का तीसरा गुण स्पष्टता है। डायरी में लेखक को अपने व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप के विश्लेषण करना चाहिए—क्योंकि डायरी[3] लेखक अपने जीवन या जीवन के किसी महत्वपूर्ण प्रसंग को लेकर डायरी लिखता है। डायरी लेखन में वह यथार्थ घटनाओं को इस प्रकार संक्षेप में व्यक्त करता है कि सारी बात भी स्पष्ट हो जाय और विस्तार भी न हो। इस प्रकार वही डायरी सफल हो सकती है जिसमें लेखक की पूर्ण रूप से ईमानदारी है। स्पष्ट वर्णन से ही लेखक की पूर्ण सत्यता का अनुमान हो जाता है।

इस प्रकार विषयवस्तु में रोचकता, संक्षिप्तता, स्पष्टता एवं सुसंगठितता आदि गुणों का होना आवश्यक है। विषयवस्तु भी कई प्रकार की हो सकती है। लेखक केवल दैनन्दिनी में अपने जीवन में घटित घटनाओं का ही वर्णन करना अपना उद्देश्य नहीं समझता, उसके मन में जो भी विचार चाहे वह राजनैतिक हों, सामाजिक हों, धार्मिक हों एवं साहित्यिक हों सभी को अपनी डायरी में लिख सकता है। इसके साथ शर्त यह है कि एक तो उनमें लेखक का व्यक्तित्व झलकता हो और दूसरा वह पाठक को लाभ दे सके। विषयानुसार हिन्दी साहित्य में कई प्रकार की डायरियाँ प्राप्त होती हैं। गांधीजी की 'दिल्ली डायरी' जिसमें १०-६-४७ से ३०-१-४८ तक के प्रार्थना प्रवचनों का संग्रह है—राजनीतिक डायरी है। 'प्रवचन डायरी' भाग प्रथम एवं द्वितीय श्री आचार्य तुलसी की धार्मिक डायरियाँ हैं। इनका विषय धार्मिक है। इलाचन्द्र जोशी के कुछ डायरी के पन्ने ऐसे हैं जिनका विषय साहित्य से सम्बन्धित है। कुछ ऐसी डायरियाँ हैं जिनमें नगरों एवं स्थान विशेष का वर्णन है। डॉ० रामकुमार वर्मा की 'वाराणसी की डायरी' एवं वाल्मीकि चौधरी की 'राष्ट्रपति भवन की डायरी' ऐसी ही डायरियाँ हैं।

डायरी लेखक विषयवस्तु को दो प्रकार से लिख सकता है। जब व्यक्ति स्वयं अपनी डायरी लिखता है तो वह आत्मचरित्र का रूप हो जाता है और जब कोई

---

१. सिद्धांतालोचन—धर्मचन्द सन्त बलदेव कृष्ण

२. एक साहित्यिक की डायरी—गजाननमाधव मुक्तिबोध, पृ० ३

३. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत

अन्य व्यक्ति डायरी किसी अन्य के सम्बन्ध में लिखता है तो वह जीवन-चरित्र की श्रेणी में आ जाता है।[1] हिन्दी साहित्य में आत्मचरित्र की श्रेणी में डा० धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कालिज डायरी', गजानन माधव मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' एवं सुन्दरलाल त्रिपाठी की 'दैनन्दिनी' आती हैं। जीवन-चरित्र की श्रेणी में वाल्मीकि चौधरी की 'राष्ट्रपति भवन की डायरी' है। इस प्रकार विषयवस्तु लिखने के दो ही ढंग हो सकते हैं।

सम्पर्क में आए हुए व्यक्तियों एवं घटनाओं से लेखक का सम्बन्ध और उनके प्रति प्रतिक्रियाएँ—दैनिकी में लेखक उन्हीं व्यक्तियों का तथा उन्हीं घटनाओं का वर्णन करता है जिनसे उसका सम्बन्ध होता है। वह केवल वर्णन ही नहीं बल्कि स्वेच्छानुसार उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण भी करता है। वह घटनाओं का वर्णन ही नहीं बल्कि कुछ उनमें से जो उसके जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है डायरी में स्पष्ट रूप से पता चल जाता है। जहाँ तक पात्रों का प्रश्न है डायरी लेखक एक उपन्यासकार या नाटककार की तरह काल्पनिक पात्र या अधिक पात्र लाने का इच्छुक नहीं होता। वह तो स्वयं ही प्रमुख पात्र है जिसके चारों ओर सभी कुछ घूमता है। सर्वत्र उसी के व्यक्तित्व की शोभा है।

यदि लेखक अपनी डायरी में तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन करता है तो साथ ही उनका प्रभाव अपने व्यक्तित्व पर पड़ता भी दिखलाएगा। यदि वह किसी पारिवारिक घटना का वर्णन करता है तो भी अपने को अवश्य प्रभावित दिखलाएगा। उदाहरणतया 'मेरी कालिज डायरी' में डा० धीरेन्द्र वर्मा ने जहाँ अपनी दादी के देहान्त का वर्णन किया है वहाँ कुछ ही पंक्तियों में उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी साथ में वर्णन किया है—

> "उनके गुणों के बारे में क्या कहूँ। पिताजी के लिए वह पिता की तरह थी। मुझे करीब-करीब उन्होंने ही पाला था। समझदारी में मैंने उनके बराबर आज तक कोई अन्य स्त्री नहीं देखी थी। प्रबन्ध करने में वे पुरुषों से भी अधिक दक्ष थीं। काम करने की रुचि उनकी इतनी अधिक थी कि वे खाली बैठना जानती ही नहीं थीं।"

वहाँ मृत्यु को प्रत्यक्ष देखकर उनके मन पर पड़े प्रभाव का चित्रण भी लेखक ने किया है—

> "मेरा अनुभव यह हो रहा है कि मृत्यु के दुःख को आदमी इसलिए धीरे-धीरे भूल जाता है कि अन्तिम समय के कष्टों की तस्वीर धुंधली होती जाती है। मेरे हृदय में सबसे अधिक उद्वेग किया है अन्तिम दिन की [illegible]

1. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित्र का विकास—चन्द्रावती सिंह, पृ० २१

वेदना को याद करके होता है। उसका स्मरण आते ही वह पीड़ाजनक दृश्य चित्र की भाँति आँखों के आगे खिंच जाता है। वास्तव में मृत्यु में बहुत ही कष्ट होता है। मैं तो मृत्यु से बहुत ही डरने लगा हूँ—अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि लेखक ने दादी की मृत्यु की घटना के वर्णन में उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उसके प्रभाव को भी व्यक्त किया है। इससे स्पष्ट है कि डायरी में लेखक घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता अपितु उसके प्रभाव को भी व्यक्त करता है।

प्रत्येक घटना के वर्णन और उसके प्रभाव के साथ-साथ लेखक उन व्यक्तियों का वर्णन भी मनोविश्लेषणात्मक ढंग से करता है जिनसे उसका सम्बन्ध होता है। सुन्दरलाल त्रिपाठीजी ने अपने भागिनेय विद्यापति का वर्णन अपनी 'दैनन्दिनी' में इसी प्रकार से किया है—

"शिरा-शिरा और अवयव-अवयव के कोमल विशाल सृजन में नाम की महिमा से मूर्त्त सिद्ध कवि हैं न विद्यापति। आवेग विह्वल, आर्द्र, अपलक, विपुल, निविड़ नेत्रों से, एक भंगी से विच्छेद कण्ट का जमीन कठिन, मूक रहस्य शायद मुझसे उद्घाटित कर रहे हो विद्यापति······राधा की तन्मयता, मीरा की एक निष्ठा वैष्णव कवियों की निविड़ता, सुनता हूँ अध्यात्म का सौंध है, सो चाहे जो हो किन्तु निर्विवाद तुम इन सबसे परे, ऊँचे रहस्यमय सीमातीत, वर्णनातीत, वेदनामय, कोमल, सुन्दर दीख पड़ते हो साधक। एक निमेप के 'स्नेप' के अवसर के तुम इतनी ममत्व वेदना से युक्त······इतने निविड़······इतने शाश्वत हो।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डायरी में लेखक केवल अपने व्यक्तित्व का ही विश्लेपण नहीं करता अपितु अपने जीवन से सम्बन्धित घटनाओं एवं पात्रों का भी मनोविश्लेषणात्मक ढंग से वर्णन करता है।

देशकाल वातावरण

वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनसे पात्रों को संघर्ष करना पड़ता है और विषयवस्तु का विकास होता है। डायरी को वास्तविकता का भान देने की कसौटियों में वातावरण मुख्य उपकरण है। डायरी लेखक भी देश और काल की जंजीर में जकड़े रहते हैं। देश और काल की पृष्ठभूमि के बिना पात्रों का एवं लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। घटनाक्रम को समझने में उलझन होती है। देश और काल में वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे, स्वयं साध्य न बन जाय। जहाँ वर्णन

---

१. मेरी कालिज डायरी—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ७८

अनुपात से बढ़ जाता है वहाँ उससे जी ऊबने लग जाता है।

हिन्दी साहित्य में हमें जितनी भी डायरियाँ प्राप्त हैं सभी में डायरी लेखक ने तत्कालीन परिस्थितियों का स्वाभाविकता से वर्णन किया है। पर कहीं-कहीं राजनैतिक परिस्थितियों के अत्यधिक वर्णन ने रोचकता में कमी ला दी है। उदाहरणतया हम गांधीजी की 'दिल्ली डायरी' को ले सकते हैं। इसमें १९४७ से १९४८ तक की परिस्थितियों का चित्रण है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी डायरी में १९२१ से १९२२ तक की देश-दशा का चित्रण सात शीर्षकों में बाँटकर किया है। समस्त डायरी के एक चौथाई भाग में देश-दशा का चित्रण है। वर्णन सीमा से अधिक न होने पर रोचक है।

केवल परिस्थितियों का वर्णन करने में ही लेखक कुशल नहीं माना जाता बल्कि उनका साहित्य पर प्रभाव दिखलाने में भी वह अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दे सकता है। धर्मवीर भारती ने अपनी डायरी के पन्नों में आधुनिक साहित्य को परिस्थितियों से प्रभावित दिखलाया है—

> "आज का युग मानव चेतना के लिए कितना भयानक रेगिस्तान साबित हुआ है, उसमें कितनी पथभ्रष्ट करने वाली मृग-मरीचिकाएँ रही हैं। (जिनमें से कुछ की असलियत वर्षों पहले खुल गई है और कुछ की अब खुल रही है) कितने भयानक अन्धड़ चलते रहे हैं और मानव की सहज रस-स्निग्धता को निगलने के लिए कितने भूखे पशु विचरण कर रहे हैं...मनुष्य को जड़ बनाने वाला पूँजीवाद, विचार स्वातन्त्र्य का अपहरण कर मनुष्य को पशुधर्मा बनाकर व्यक्ति-पूजा कराने वाला तथाकथित समष्टिवाद और जाने कितनी ही पद्धतियाँ और सत्ताएँ जो इस जड़वादी युग की देन हैं वे मनुष्य से उसकी सहज रागात्मकता, श्रद्धामयता तथा उसके विकास की अमित सम्भावनाएँ छीनने में तत्पर हैं। आज दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री सभी इस व्यापक संकट के प्रति सचेत हैं और अपनी दिशा में इसके निराकरण के उपाय ढूँढ़ रहे हैं। आधुनिक साहित्य दृष्टि भी इसका सामना कर रही है। उसने इस चुनौती को स्वीकार किया है। जो इस चुनौती की वास्तविक प्रकृति को समझते हैं वे इस नए सौन्दर्य बोध को भी समझ सकते हैं। जो इस आधुनिक युग में मानवीय संकट की विडम्बना को भी नहीं समझ पाए हैं वे अगर किसी चीज को सही तौर पर समझने की जिद करें, पचास वर्ष पूर्व की धारणाओं को ही अपनी कसौटी बनाए रहें तो वे इस आधुनिक साहित्य दृष्टि से बुरी तरह चौंक भी सकते हैं।"[1]

डायरी में कहीं-कहीं लेखक राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करता हुआ तत्कालीन साहित्यिक लोगों की अवस्था का भी चित्रण करता है। गजानन-माधव मुक्तिबोध ने अपनी डायरी में लिखा है—

---

१. ठेले पर हिमालय—धर्मवीर भारती, पृ० ८४

"आज के साहित्यकार का आयुक्रम क्या है ? विद्यार्जन, डिग्री और इसी बीच साहित्यिक प्रयास, विवाह, घर, सोफासेट, ऐरिस्ट्रोक्रैटिक लिविंग, महानों से व्यक्तिगत सम्पर्क, श्रेष्ठ प्रकाशकों द्वारा अपनी पुस्तकों का प्रकाशन, सरकारी पुरस्कार अथवा ऐसी ही कोई विशेष उपलब्धि और चालीसवें वर्ष के आस-पास अमेरिका या रूस जाने की तैयारी, किसी व्यक्ति या संस्था की सहायता से अपनी कृतियों का अंग्रेजी या रूसी में अनुवाद। किसी बड़े भारी सेठ के यहाँ या सरकार के यहाँ किस्म की नौकरी।"[1]

साहित्यिक पुरुषों का ही नहीं राजनैतिक पुरुषों की नैतिकता का भी इन्होंने नग्न चित्र खींचा है—

"बड़े-बड़े आदर्शवादी आज रावण के यहाँ पानी भरते हैं और हाँ में हाँ मिलाते हैं। बड़े प्रगतिशील महानुभाव भी इसी मर्ज में गिरफ्तार हैं। जो व्यक्ति रावण के यहाँ पानी भरने से इनकार करता है उसके बच्चे मारे-मारे फिरते हैं। और आप जानते हैं कि ख्याति प्राप्त पशोदीप्त प्रगतिशील महानुभाव भी (मैं सब की नहीं कह सकता) उन पर हँस पड़ते हैं या कभी-कभी तुच्छ के प्रति दया के भाव से परिलुप्त हो उठते हैं। तो संक्षेप में जो व्यक्ति फटे हाल और फटीचर है, उसे मान्यता देने के लिए कोई तैयार नहीं चाहे वह कितना ही नैतिक क्यों न हो।"[2]

कहीं-कहीं हम डायरी में विशेष स्थान या नगर का वर्णन भी देखते हैं। इस प्रकार के वर्णन में सफलता तभी हो सकती है यदि लेखक ने उस स्थान या नगर को देखा हो। रामकुमार वर्मा की 'वाराणसी' की डायरी एवं वाल्मीकि चौधरी की 'राष्ट्रपति भवन की डायरी' ऐसी ही डायरियाँ हैं। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डायरी लेखक अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन ही नहीं करता अपितु उनका प्रभाव व्यक्तिगत जीवन पर ही नहीं समस्त जाति पर स्पष्ट रूप से वर्णन करता है। इसके साथ ही जहाँ उसे नगर एवं किसी विशेष स्थान के वर्णन की आवश्यकता पड़ती है वह भी करता है।

उद्देश्य—डायरी में लेखक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता प्रत्युत उससे घटित होने वाली मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी उल्लेख करता है। इससे यह अभिप्राय है कि डायरी में केवल सोना, खाना-पीना एवं उठना आदि दैनिकचर्या का ही वर्णन नहीं करता अपितु वह कुछ ऐसी घटनाओं का भी वर्णन करता है जिनका उसके जीवन पर अटल एवं स्थायी प्रभाव होता है। वे घटनाएँ यदि वह व्यक्ति राजनैतिक है तो वह राजनैतिक भी हो सकती हैं, यदि सामाजिक है तो सामाजिक भी हो सकती हैं, यदि धार्मिक है तो धार्मिक भी हो सकती हैं एवं यदि

---

१. ढेले पर हिमालय—धर्मवीर भारती, पृ० ३७।

२. वही, पृ० ३६।

साहित्यिक है तो साहित्यिक भी हो सकती हैं। मुख्य उद्देश्य तो डायरी लेखक का आत्मविश्लेषण ही होता है। प्रत्येक लेखक अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। डायरी में लेखक का उद्देश्य परिस्थितियों का वर्णन करना नहीं है। यदि ऐसा होता है तो वह इतिहास की श्रेणी में आ जाती है। इससे स्पष्ट है कि डायरी लेखक का उद्देश्य अपने जीवन की ऐसी घटनाओं का उल्लेख करना है जिनका प्रभाव मानव समाज पर पड़े। इसके साथ-साथ वह उन घटनाओं से उत्पन्न होने वाली मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी स्पष्ट रूप से वर्णन करता है। वे घटनाएँ किसी भी प्रकार की हो सकती हैं।

'मेरी कालिज डायरी' में डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने डायरी लिखने के उद्देश्य को प्रकट करते हुए लिखा है—

> 'मन में अनेक प्रकार के तूफान उठते थे, सन्देह पैदा करते थे, व्यक्तिगत समस्याएँ सामने आती थीं और ये सब अन्दर-ही-अन्दर घुटती थीं। आरम्भ से ही चुप्पे स्वभाव का होने के कारण कोई ऐसा मित्र नहीं बना सका था जिसके सामने इन सबको रख कर हृदय का भार कुछ हल्का कर पाता। ऐसी स्थिति में मैंने मार्च १९१७ से एक पृथक् कापी रखनी शुरू की, जिसमें मन की उलझनें और अन्तरंग बातें स्पष्टतया लिख सकूँ। दैनिक डायरी के समान इस कापी में नित्य नहीं लिखता था, बल्कि जब कभी विचारों के तूफान उठकर बवण्डर का रूप धारण करने लगते थे तभी उन्हें लिखकर मन को शान्त कर लेता था। लिखने के बाद ऐसा मालूम होता था जैसे अपने किसी अत्यन्त घनिष्ठ मित्र से मन की गुप्त बातें कहके आदमी हल्कापन अनुभव करता हो।''[1]

इससे स्पष्ट है कि डॉ० साहब का डायरी लिखने का उद्देश्य आत्मविश्लेषण ही है जिससे उनको मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। डायरी के समस्त विषय—सत्य, धर्म, शिक्षा, १९२१ से १९२२ तक की देश-दशा आदि सभी लेखक के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं।

गजाननमाधव मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' में भी लेखक का उद्देश्य आत्माख्यान एवं आत्मविश्लेषण ही है। इसके अतिरिक्त गजाननजी ने आधुनिक काल के राजनैतिक पुरुषों की नैतिकता, नवयुवकों की अवस्था, बुजुर्गों की अवस्था एवं लेखक वर्ग की अवस्था पर भी अपने विचार नग्न रूप में प्रस्तुत किए हैं। प्रत्येक वर्णन में तर्क एवं मनोविज्ञान आदि का सहारा लिया है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक डायरी लेखक का उद्देश्य आत्माख्यान, आत्मनिरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण होता है। इसी से उसे मानसिक संतोष प्राप्त होता है।

भाषा शैली—शैली अंग्रेजी 'स्टाइल' का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है। शैली भी एक प्रकार का व्यक्तिगत गुण है इसलिए

१. परिचय

अच्छे लेखक ही अच्छे शैलीकार भी होते हैं। प्रसिद्ध यूनानी लेखक प्लेटो का भी यही मत है। 'जब विचार को तात्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है।' बर्नार्डशॉ का भी यह विचार है कि 'प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति ही शैली का अर्थ और इति है।' कोई भी रचना अभीष्ट प्रभाव को उत्पन्न कर रही है या नहीं, शैली से जाना जा सकता है। इस प्रकार शैली को एक गुण मानते हुए इसकी परिभाषा इस प्रकार करनी चाहिए—

"शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।"

इस दृष्टि से देखने पर यह जान पड़ेगा कि शैली न तो केवल अनुभूत विषय-वस्तु का धर्म है और न कहने का तरीका ही। शैली का आत्मा मुख्यतः वे सम्बन्ध हैं, जिनके ढाँचे में अनुभूत विषयवस्तु को समाहित या व्यवस्थित किया जाता है। विषयवस्तु में उक्त सम्बन्ध की स्थापना रस की उत्पत्ति के लिए की जाती है। काव्य साहित्य की रसात्मकता को उसके प्रभाव से अलग नहीं किया जा सकता। जिस विभावात्मक विषयवस्तु को साहित्यकार सँजोकर पाठकों के सामने रखता है, उसमें प्रभाव या रस के उत्पादन की क्षमता निहित रहती है। किन्तु यह क्षमता सम्बद्ध विषयवस्तु का ही धर्म है। साहित्यकार अनुभूत विषयस्वतु को नए सम्बन्धों में ग्रथित करके उसमें नए प्रभाव में उत्पन्न करने की क्षमता स्थापित कर देता है। इस प्रकार की क्षमता उत्पन्न करने के उपादान ही शैली के मूल तत्व होते हैं।[1]

डायरी में लेखक दिनचर्या के रूप में ही जीवन की घटनाओं और मानसिक विचारों का लेखा-जोखा रखता है तो इसकी शैली गद्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा पृथक् होती है। इसमें लेखक का मुख्य उद्देश्य आत्मनिरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण ही है। डायरी शैली की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जिनका होना अत्यन्त आवश्यक है।

सर्वप्रथम विशेषता निस्संकोच आत्मविश्लेषण है।[2] दिनचर्या के रूप में लेखक अपने जीवन की घटनाओं और मानसिक विचारों का लेखा रखता जाता है यद्यपि इन सब का विवरण भी वह बिल्कुल तटस्थ होकर नहीं कर सकता परन्तु आत्मचरित्र की अपेक्षा उसका संकोच इस शैली की व्याख्या में कम रहता है। लेखक जानता है कि उसके विवरण दूसरों के काम आएँगे अतएव वह अपने मर्म को विशेषकर अवांछित प्रसंग को ज्यादा ठेलता नहीं। उसका आवरणहीन वर्णन सत्यवर्णन की तरह अंकित होता रहता है। घटनाओं एवं विचारों में असम्बद्धता भी उसे अपने चेतन को काम में लाने से रोक लेती है। प्रायः देखा जाता है कि संकोच का उद्भव तभी होता है जब घटनाओं का सामूहिक प्रभाव दिखाया जाय। डायरी शैली में यह स्थिति होने नहीं पाती। परिणामतः तटस्थ रूप से लेखक अपेक्षाकृत अधिक आत्मविश्लेषण कर

१. हिन्दी साहित्य कोष
२. वही

डाल[1]ता है।

अंग्रेजी भाषा के डायरी लेखक सेमुएल पेपीस ने अपनी डायरी में अपने जीवन की सभी घटनाओं का नग्न रूप से चित्र खींचा है। उसने अपने चरित्र की समस्त दुर्बलताओं – स्त्रीविषयक कुविचार, अन्य महिलाओं से प्रेम-व्यवहार आदि का चित्रण स्पष्ट रूप से किया है। इनकी डायरी में इनके व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू के दर्शन होते हैं। इन्होंने स्वतंत्रता से लिखा, इतनी स्वतंत्रता से कि उसका कुछ भाग प्रकाशित भी नहीं हुआ। हिन्दी साहित्य में अभी इस प्रकार की डायरियाँ नहीं प्राप्त होतीं। कुछेक लेखक हैं जिन्होंने ऐसा करने का प्रयास किया है। गुलाबराय ने अपने व्यक्तित्व के विषय में स्पष्ट लिखा है—

"मैं उन लोगों में से हूँ जो अपने निजी निबन्धों के लिए बिना कुछ पढ़े नहीं लिख सकता, वास्तव में मेरे लेखन में एक तिहाई दूसरों से पढ़ा होता है, एक बटा छह उसके आधार से स्वयं प्रकाशित और ध्वनित विचार होते हैं, एक बटा छह सप्रयत्न सोचे हुए विचार रहते हैं और एक तिहाई मलाई के लड्डू की वर्फी बना चोरी को छिपाने वाली अभिव्यक्ति की कला रहती है—मैं गलत पढ़ाने का पाप नहीं करता किन्तु जो मुझे नहीं आता उसे कभी-कभी कौशल के साथ छोड़ देता हूँ। यदि कोई छन्द इम्तहान में आने लायक हुआ तो मैं बेईमानी नहीं करता।"[2]

इतना ही नहीं लेखक ने घर के अभावों का वर्णन, भैंस को चारा न मिलना, पड़ोसी के खेत में चारे का होना, उसका खूँटा उखाड़ कर भाग जाना, घर में कभी चीनी की समस्या कभी कपड़े की—सभी घटनाओं का वर्णन लेखक ने नग्न एवं स्पष्ट रूप से किया है।

डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी डायरी में अपने कालिज के सात वर्षों का पूर्ण रूप से चित्र खींचा है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है—

"व्यक्तिगत होते हुए भी यह डायरी किसी भी संवेदनशील भावनाओं [illegible] किन्तु संकोची १८, १९ से २५, २६ वर्ष तक की आयु के नवयुवक के हृदय का चित्र हो सकती है, व्यक्तिगत अंशों को भी इसी रूप में देखा जा सकता है।"[3]

निःसंकोच आत्मविश्लेषण में ही स्पष्ट कथन एवं पर्याप्त सत्यता होती है। डा० रघुवंश ने अपने स्वभाव के विषय में निजी स्पष्टता से वर्णन किया है—

"[illegible] परिचित परिस्थितियों से [illegible] और [illegible] [illegible] के लिए [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] के लिए [illegible] मेरा स्वभाव [illegible] [illegible] के बीच से [illegible]—[illegible] से [illegible], [illegible]

१. [illegible], डा० सोमनाथ गुप्त
२. मेरी असफलताएँ, गुलाबराय
३. [illegible]

और नवीनता के बीच उद्विग्न, स्थियत की कामना से स्फुरित।"[1]

घटनाओं में सम्बद्धता का होना परमावश्यक है। जब तक प्रत्येक घटना का क्रमानुसार वर्णन नहीं होगा तब तक पाठक रसास्वादन नहीं कर सकता। घटनाओं की सुसम्बद्धता के साथ-साथ लेखक को समय एवं तिथि का भी ध्यान रखना चाहिए। अनावश्यक घटनाओं का विस्तार, आवश्यक घटनाओं का अल्पवर्णन डायरी को प्रभावहीन बना देता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डायरी शैली में निस्संकोच आत्मनिरीक्षण, घटनाओं में सम्बद्धता स्पष्टता, सजीवता, मानसिक प्रतिक्रियाओं का संक्षिप्त विवरण, पर्याप्त सत्यता एवं स्वाभाविकता आदि गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है—भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन है। यदि भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं भावानुकूल होगी तभी वह पाठक को प्रभावित कर सकती है। स्वाभाविकता एव प्रसाद गुण का भाषा में होना आवश्यक है। अलंकारिक भाषा का प्रयोग कहीं-कहीं खटकने लगता है—

> "शिशु सी अनजान—अकपट और जब तुतलाती सी, मुसकाती सी, नंगी, मटमैली सी ज । आने को हीती है वह कलिका सी, किशोरी सी, कुछ मुकलिता सी और कुछ विकसिता सी आने को होती है जब स्फुटिता सी प्रौढ़ा सी तब उसे इसीलिए शायद डरना सकुचाना और सोचना पड़ जाता है।"[2]

भावानुकूल भाषा का प्रयोग शैली को उत्कृष्ट बनाता है। रामकुमार वर्मा ने भी दशाश्वमेध घाट का वर्णन भावानुकूल भाषा में किया है—

> "जाड़ों की वह रात, रात का वह सायं-सायं करता सन्नाटा और गंगा में विलीन होती हुई घाट की सीढ़ियों में छिपा इतिहास जिसके पन्ने हवा में उड़ते रहे और हम खाली हाथ सब कुछ हाथों से उड़ता देख रहे हैं, उसे पकड़ने की कोशिश भी नहीं करते। कहने के कुछ नहीं अनकहे ही जैसे सब कुछ कह दिया। उस रात वह कौन सी छाया थी जिसने अपनी अनगिनत नरों में हमें लपेट लिया।"

भाषा में स्वाभाविकता का होना भी आवश्यक है। गजाननमाधव मुक्तिबोध ने अपनी डायरी में अत्यन्त स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है—

> "यह मुसकराहट मुझे चुभ गई। तो क्या मैं इतना पागल हूँ कि बात करने में भटक जाता हूँ। इस साले ने बहुत ध्यानपूर्वक मेरे स्वभाव का अध्ययन किया होगा शायद मैं भी इसे बहुत 'बोर' करता रहूँगा।"[3]

भाषा में स्वाभाविकता लाने के लिए इन्होंने अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है।

---

१. हरी घाटी—डा० रघुवंश
२. दैनन्दिनी—सुन्दरलाल त्रिपाठी
३. पृष्ठ ८

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डायरी की भाषा स्वाभाविक एवं भावानुकूल होनी चाहिए। प्रसाद गुण का होना अत्यन्त आवश्यक है। शब्द-चयन भी भावानुकूल होना चाहिए। जैसा कि डायरी लेखक का मुख्य उद्देश्य आत्मविश्लेपण, आत्मनिरीक्षण एवं आत्माख्यान होता है इसलिए इसकी शैली भी प्रमुखतया मनोविश्लेषणात्मक होती है।

हिन्दी साहित्य में विकास

आधुनिक काल में डायरी साहित्य गद्य की एक नवीनतम विधा है। हिन्दी साहित्य में इसका आविर्भाव योरोपीय साहित्य की देन है। अभी हमारे साहित्य में उस कोटि की डायरियाँ नहीं प्राप्त होती जैसी कि पाश्चात्य साहित्य में है। अभी तक जो डायरियाँ एवं डायरियों के पन्ने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं उनके अनुसार डायरी साहित्य का विकास मैंने लिखने का प्रयास किया है।

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम डायरी लेखक भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध साहित्यकार बालमुकुन्द गुप्त है। इनकी डायरी के कुछ पृष्ठ जो कि इन्होंने १८९२ सन् से १९०७ सन् तक लिखे है श्री बनारसीदास चतुर्वेदी एवं श्री झाबरमल्ल शर्मा ने 'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ' में प्रकाशित किए है। इनकी डायरी के प्राप्त पृष्ठों से केवल इनकी दिनचर्या का ही पता चलता है। प्रात:काल से लेकर सायंकाल तक इनका क्या कार्यक्रम था केवल यही कुछ यह अपनी डायरी में लिखते थे। किसी भी [illegible] कोई व्यक्तिगत घटना या इनके व्यक्तिगत परिचय का कुछ भी पता नहीं चलता। इनकी डायरी के पन्ने तो सर्वसाधारण से है।

सन् १९०९ में सत्यदेव अमेरिका के 'मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ'[1] प्राप्त होते हैं। डायरी के ये पृष्ठ अमेरिका में लिखे गए है। इनमें २७, २८ एवं २९ मई के दिनों की चर्या का वर्णन है। धन का अभाव, नौकरी की तलाश एवं तत्कालीन समाज का चित्रण है।

सन् १९११ में भी इनकी डायरी के पृष्ठ 'मेरी दिनचर्या'[2] नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनमें लेखक ने ५ व ६ जून की दिनचर्या का वर्णन किया है। इनमें [illegible] स्टीमर आदि नगरों का वर्णन है। सन् १९११ से १९३३ तक हमें न तो डायरी के कुछ पृष्ठ ही प्राप्त होते हैं और न डायरियाँ। केवल सन् १९३३ में प्रोफेसर जगन्नाथ वर्मा एम० ए० पूना द्वारा लिखित 'मिथिला व नेपाल की डायरी'[3] के पृष्ठ प्राप्त होते हैं। इनमें प्रोफेसर जगन्नाथ जी ने पूना [illegible] में प्राप्त [illegible] प्राचीन २,००० वर्ष [illegible] फारसी भाषा में लिखे गए है जिनमें [illegible]

---

1. सरस्वती, सितम्बर
2. सरस्वती, [illegible]
3. माधुरी, फरवरी-मार्च, १९३३

राजाओं एवं नवाबों के विषय में पता चलता है में से कुछ राजाओं की दिनचर्या का वर्णन उन पत्रों की सहायता से किया है।

सन् १९४० में 'बुकसेलर की डायरी'[1] जिसके लेखक रावीजी हैं प्राप्त होती है। इस डायरी के लेखक साहित्य-सेवी हैं जिन्होंने जीविका के लिए घूम-घूमकर पुस्तकें बेचने का प्रयास किया। इस प्रयोग में लेखक को जो भी मीठे-कड़वे अनुभव हुए उन सबका वर्णन है। इसमें वर्णित व्यक्तियों के प्रति लेखक के मन में कोई बुरी भावना नहीं है। जो धारणाएँ लेखक की हुई - जो चित्र उसके हृदय-पटल पर चित्रित हुआ उन्होंने उसी को अंकित करने का प्रयास किया हे। लेखक का यह दौरा दो दिन कम दो महीने का है।

सन् १९४७ में श्री लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी का 'डायरी का एक पृष्ठ'[2] एवं भगवतीचरण शर्मा का भी 'डायरी का एक पृष्ठ'[3] प्राप्त होता है। वाजपेयीजी ने २४ अक्तूबर १९४६ का वर्णन किया है जिस दिन लेखक का जन्मदिवस एवं दीवाली है। इन पृष्ठों में लेखक ने तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों के प्रति चिन्ता प्रकट करते हुए अनेक व्यक्तिगत सुझाव भी दिए हैं। शर्माजी ने 'देवाई' पूजन के विषय में एवं हरिजनों की कथा एवं अर्चना के विषय में लिखा है। तिथि ६ जनवरी, १९४७ की है।

सन् १९४८ मे गांधीजी की 'दिल्ली डायरी' प्रकाशित हुई। इस डायरी में १०-९-४७ से ३०-१-४८ तक के गांधीजी के प्रवचनों का संग्रह है। इस डायरी में हमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, एवं धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है। गांधीजी की इस डायरी में अनेक क्षेत्रों के अनेक विषयों की चर्चा है। सब प्रवचन तिथि अनुसार दिए गए हैं।

सन् १९५० में महादेव भाई की डायरी के प्रथम एवं द्वितीय भाग प्रकाशित हुए। इसके अनुवादक रामनारायण चौधरी एवं श्री नरहरिदास पारिख हैं।

सन् १९५१ में इलाचन्द्र जोशी के 'डायरी के नीरस पृष्ठ' एवं आचार्य विनय मोहन शर्मा द्वारा लिखित 'डायरी के कुछ पन्ने' प्रकाशित हुए। आचार्यजी ने अपनी डायरी के इन पन्नों में जब इन्हें १९ वर्ष की अवस्था में टाइफाइड हो गया था उसका एवं प्रकृति के पथ पर चलने की योग्यता का परिचय हो जाना एवं इसके साथ-ही-साथ जहाँ कहीं भी इन्हें प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा पर उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है उसका वर्णन किया है।

सन् १९५१ में घनश्यामदास बिड़ला के 'डायरी के कुछ पन्ने' प्रकाशित हुए। डायरी के इन पन्नों में बिड़लाजी ने दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस का जीवित चित्र खींचा है।

---

१. विशाल भारत
२. विशाल भारत
३. वही

सन् १९५३ में अजितकुमार द्वारा लिखित 'डायरी के कुछ पृष्ठ' प्राप्त होते हैं। १३ जनवरी एवं १६ फरवरी दोनों दिनों की चर्या का वर्णन लेखक ने इन पृष्ठों में किया है। सन् १९५४ में श्री तुलसीदास द्वारा लिखित 'प्रवचन डायरी' प्रथम भाग प्राप्त होती है। इसमें श्री तुलसीजी के जनवरी १९५३ से दिसम्बर १९५३ तक के प्रवचनों का संग्रह है।

सन् १९५४ में इलाचन्द्र जोशी की 'साहित्य चिन्तन' पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में अन्य संग्रहों के साथ जोशीजी के कुछ डायरी के पृष्ठों को भी संगृहीत किया गया है। इन पन्नों में जोशीजी का विषय साहित्यिक है। इन्होंने 'काव्य की सर्जनात्मक कला की कसौटी क्या है' पर अपने विचार प्रकट करते हुए चेतना, प्रतिभा आगे उसकी तीन-तीन परिस्थितियों एवं अवचेतना का वर्णन कर यह सिद्ध कर दिया है कि वही लेखक उच्चतम कृतियों की रचना कर सकता है जो अंतर्वृत्तियों से ऊपर उठकर अतिचेतना के स्तर पर पहुंच जाता है। चेता की स्थिति को प्राप्त कर चेतना के निम्नरूपों को स्वयं परिचालित करने लगता है।

सन् १९५६ में पुनः श्री तुलसी की 'प्रवचन डायरी' द्वितीय भाग प्रकाशित हुई। इसका विषय भी धार्मिक है।

सन् १९५७ में श्री कृष्णदत्त भट्ट की 'नक्षत्रों की छाया' पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें संग्रहीत भट्टजी की डायरी के पृष्ठों में हमें उनकी डायरी लिखने की कुशलता का परिचय मिलता है। डायरी के सांचे में निबन्धलेखन की यह नई शैली है। विषयानुकूल भाषा एवं शब्दों का प्रयोग किया है, वैयक्तिकता की छाप चारों ओर है।

दैनन्दिनी— सुन्दरलाल त्रिपाठी की सन् १९५८ में प्रकाशित हुई। इस डायरी में अनेक विषय अनेक प्रकार से आए हैं। प्रारम्भ में कुछ व्यक्तिगत, आत्मीय और पारिवारिक चर्चा है जिसमें लेखक की वेदनाकातर भावुक लेखनी स्पष्ट हो उठी है। आगे चलकर शरच्चन्द्र और गांधीजी पर दो निबन्ध मिलते हैं जो भावात्मक, [illegible] और कुशल लेखनी की सृष्टि है। एक में लेखक की अनुकूल और दूसरी में [illegible] विचारधारा होते हुए भी दोनों निबन्ध सुन्दरतम लेखन के उदाहरण हैं।

इसके पश्चात् अधिकांश लेख हिन्दी के साहित्यिकों की चर्चा में लिखे गए हैं जिनमें उनकी कृतियों की भी समीक्षा की गई है। यहाँ लेखक के मन्तव्य [illegible] कुछ कठिन रही है क्योंकि सुन्दरलालजी हिन्दी साहित्य [illegible] [illegible] ।

[illegible]

प्राय: सब लेखों में मौजूद है जिससे ये निबन्ध ललित साहित्य की श्रेणी में ऊँचे स्थान के अधिकारी हैं। भले ही सब निबन्ध एक ही धारा में न लिखे गए हों और भले ही उनके साथ तादात्म्य स्थापित करने में एक-सी सुगमता न हो, किन्तु एक बार और आत्मीय भावना से प्रवेश करने हर इनमें वह संवेदनीय सामग्री मिलेगी जो हिन्दी के निबन्ध साहित्य में बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं प्राप्त होती।

'दैनन्दिनी' के अधिकांश निबन्ध बड़ी ही मनोरम और परिष्कृत भावना से लिखे गए हैं। उनमें भावुकता और शैली चमत्कार के साथ ही सूक्ष्म विवेचन और मार्मिकता भी कम नहीं है। उनकी शैली में व्यंग्य और गूढ़ोक्ति का अच्छा पुट है। डायरी के साँचे में निबन्धलेखन की यह नई शैली है। 'दैनन्दिनी' में एक से अधिक दिन की चर्चा एक स्थान पर जहाँ कहीं की गई है मिति का स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है। साथ ही ऐसा उन्हीं स्थानों पर दिया गया है जहाँ कई दिन की घटनाएँ मिलकर एक प्रसंग का निर्माण करती हैं। 'दैनन्दिनी' में इस नियम का पालन भी सर्वत्र मिलता है कि जिस दिन की घटना है उसी दिन वह लिख ली गई है।

मेरी कालिज डायरी – डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ डायरी सन् १९५८ में प्राप्त होती है जिसके लेखक डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इन्होंने अपने कालिज जीवन के सात वर्षों का नग्न चित्र उपस्थित किया है। 'परिचय' में इन्होंने स्वयं कहा है—

> "यह डायरी मेरे मानसिक जीवन के लगभग सात मूल्यवान् वर्षों का सच्चा आत्मचरित है, जो आज नहीं लिखा जा रहा है बल्कि उसी कच्चे-पक्के रूप में है जिसमें यह तभी लिखा गया था जब मैं कालिज का एक साधारण विद्यार्थी था और यही नहीं जानता था कि जीवन की नदी के थपेड़े मुझे किधर ले जायेंगे। इसकी अपूर्णता और सचाई में ही इसका महत्त्व है। यदि शेष आत्मचरित किसी रूप में भी लिखा गया तो वह जीवन का सिंहावलोकन मात्र होगा। वह अधिक प्रौढ़, परिमार्जित और परिपक्व हो सकता है किन्तु उसमें मन के इस कच्चेपन और गदरेपन का आनन्द नहीं प्राप्त हो सकेगा जो इस डायरी में मिलेगा।"

डॉक्टर साहब ने अपनी डायरी के समस्त विषय को चार भागों में विभाजित किया है। सन्देह, संसार, देश-दशा एवं मायाजाल — ये चार खण्ड हैं। कालिज जीवन में लेखक के मन में जो भी समस्याएँ उत्पन्न हुई थीं उन सभी का उल्लेख एवं समाधान लेखक ने वर्णन किया है। सत्य, अहिंसा, विवाह, शिक्षा, विद्यार्थी जीवन आदि अनेक विषयों पर लेखक ने अपने विचार अत्यन्त रोचकपूर्ण ढंग से लिखे हैं। ये सब विषय लेखक की व्यक्तिगत घटनाओं से सम्बन्धित हैं। डॉक्टर साहब ने व्यक्तिगत घटनाओं का वर्णन ही नहीं किया अपितु उनसे उत्पन्न होने वाली मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी उल्लेख किया है। यही नहीं १९२१ से १९२२ तक की देश-दशा का वर्णन भी लेखक ने अत्यन्त कुशलता से किया है। समस्त राजनैतिक परिस्थितियों को अपने से प्रभावित दिखलाया है इसलिए वैयक्तिकता की छाप चारों ओर है। देश-दशा का खण्ड

पढ़ते हुए कहीं भी पाठक को यह अनुभव नहीं होता कि वह इतिहास पढ़ रहा है या उसे पढ़ते हुए आनन्द नहीं प्राप्त हो रहा। यह सब डॉक्टर साहब की कला-कुशलता का प्रमाण है। इसके साथ ही 'संसार' खण्ड में लेखक ने अपनी कुछ ऐसी व्यक्तिगत घटनाओं का वर्णन किया है जो अत्यन्त मार्मिक हैं। नौकरी की तलाश एवं दादी के देहावसान का वर्णन लेखक ने मार्मिकतापूर्ण किया है। प्रत्येक घटना के वर्णन में लेखक की स्पष्टवादिता दृष्टिगोचर होती है।

जहाँ तक डायरी शैली का प्रश्न है इनकी डायरी में शैली सम्बन्धी सभी गुण हैं। निःसंकोच आत्मविश्लेषण, मानसिक प्रतिक्रियाओं का संक्षिप्त विवरण, मार्मिकता, रोचकता एवं सुसगठितता आदि सभी गुण दृष्टिगोचर होते हैं। त्रिपाठीजी की भाँति कहीं भी अलंकारिता का प्रयोग देखने में नहीं आता। डॉक्टर साहब ने किसी भी व्यक्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन अपनी डायरी में नहीं किया, लेकिन त्रिपाठीजी की डायरी में यह बहुधा देखने में आता है। डॉक्टर साहब ने अपनी डायरी में जहाँ व्यक्तिगत घटनाओं का वर्णन अधिक किया है वहाँ त्रिपाठीजी ने व्यक्तिगत परित्याग कर दिया है। साहित्यिकों एवं उनकी कृतियों के विषय में अधिक विचार रखे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि त्रिपाठीजी ने जिन साहित्यिकों एवं उनकी कृतियों के विषय में अपने विचार रखे हैं उनमें किसी प्रकार का बनावटीपन नहीं है, जो कुछ भी वह कहना चाहते हैं खुले रूप से कहा है।

सन् १९५८ में ही धर्मवीर भारती की पुस्तक 'ठेले पर हिमालय' प्राप्त होती है। इसमें संग्रहीत 'डायरी' एवं 'साहित्यिक डायरी' में लेखक ने निबन्धात्मक शैली में अपने विचारों को प्रकट किया है। आधुनिक नवयुवकों, साहित्यिकों, पूँजीपतियों एवं बुजुर्गों का स्पष्ट वर्णन लेखक ने अपनी डायरी में किया है।

सन् १९५९ में उपेन्द्रनाथ अश्कजी की 'ज्यादा अपनी कम परायी' पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें अश्कजी की नई पुरानी डायरी के पन्नों में लेखक ने जीवन के गूढ़तम रहस्यों को भावावेश में आकर काव्यमयी भाषा में रखा है। शब्दों की सुकुमारता, भाषा की रोचकता प्रशंसनीय है। नई डायरी के पृष्ठों में लेखक ने अपने जीवन की कठिन घटनाओं को संस्मरणात्मक रूप में प्रकट किया है। समस्त घटनाओं [illegible] दिये हैं। तिथि एवं दिवस का विशेष रूप से ध्यान रखा है।

सन् १९६० में स्वामी सत्यभक्त द्वारा लिखित 'डायरी के पृष्ठों से [illegible]' एवं वृन्दावनलाल द्वारा लिखित 'मेरी [illegible]' प्रकाशित हुई। स्वामीजी ने भगवान [illegible] के विचारों का [illegible] किया है। वृन्दावनलालजी की प्रकाशित पुस्तक में संग्रहीत [illegible] सन् १९४९ [illegible] है। [illegible] किया है।

सन् १९[illegible] में [illegible] द्वारा लिखित [illegible] प्राप्त होती है। [illegible]

गया है। वैसे तो चौधरीजी ने अपने 'वक्तव्य' में कहा है—

"इस पुस्तक में राष्ट्रपति भवन में रोजमर्रे की घटनाओं, तत्सम्बन्धी क्रियाकलापों—राजनीति के चित्रपट के बनने-बनाने में जो तरह-तरह के दृश्य मेरे सामने आये उन्हें मैंने गूँथने का प्रयास किया है।"

यह डायरी संस्मरणात्मक शैली में लिखी गई है। भाषा सरल एवं वर्णन शैली सुहावनी है।

सन् १९६१ में रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित[1] 'वाराणसी की डायरी' सीताराम सेक्सरिया द्वारा लिखित[2] 'डायरी के पन्नों में वसन्त पंचमी' एवं रघुवंश द्वारा लिखित 'हरी घाटी' पुस्तक प्रकाशित हुई। रामकुमार वर्मा ने 'वाराणसी की डायरी' में वाराणसी का वर्णन अत्यन्त चित्रात्मक शैली में किया है। डायरी शैली में लिखा हुआ यह एक स्केच है। सेक्सरिया जी ने तीन वर्षों की बसन्त पंचमी का वर्णन किया है। तीन वर्षों के उत्सव पर तीन प्रकार की मनःस्थितियों का वर्णन लेखक ने किया है। प्रथम बार वह जेल में था इसलिए स्वतन्त्र बसन्त के प्रति उसे ईर्ष्या थी। दूसरी बार वह छुटा हुआ था तो और भाई जेल में थे तभी वह उत्सव धूमधाम से न मना सका। तीसरी बार स्वतन्त्र हो जाने पर भी बापू की मृत्यु का शोक था। रघुवंशजी ने अपनी पुस्तक में अपने जीवन की कुछ घटनाओं पर प्रकाश डाला है—जीवन में आर्थिक विषमता, हाथ में विकार का होना, प्रगतिशील विचारधारा का होना, पर्वताटन का शौक, निडर स्वभाव आदि का स्पष्ट रूप से चित्रण है।

एक साहित्यिक की डायरी—सन् १९६४ में गजाननमाधव मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' प्रकाशित हुई। यह डायरी शैली गुण एवं विचार तत्व दोनों दृष्टियों से अद्वितीय है। यह निबन्धात्मक डायरी है। निबन्ध पढ़े न जाय इन्हें पढ़ने की सहज ललक रहती है। सीधा-सादा आरम्भ फिर कहीं शंकालाप, कहीं एक काल्पनिक पात्र से वार्तालाप पर आदि से अन्त तक भाव और स्वर डायरी का है। प्रत्येक प्रकरण का प्रत्येक क्षण और प्रत्येक चरण इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए कि विषय की परतें हलके-हलके खुलती हुई प्रश्नों और प्रश्नों के भीतर के प्रश्नों से साक्षात्कार करा दें और फिर हम भी सोचें और समाधान के अन्वेषी हों।

कुल दस प्रकरण डायरी में हैं। पर कोई नहीं इनमें जो आहत आत्मा की पीड़ा में पिरोया हुआ न हो और जिसके स्वरों में फिर भी विजित का करुण भाव न होकर चुनौती स्वीकार करने वाले शूर सैनिक का ओज न हो। कहीं तो शायद इसीलिए इसमें एक विचित्र-सा व्यंग्य तक झंकारता मिलता है। हिन्दी में डायरी विधा की यह पहली कृति है जो फेंटेसी, मनोविश्लेषण, तर्क, कविता, आत्माख्यान के

१. कादम्बिनी, मार्च १९६१ सन्
२. ज्ञानोदय, फरवरी १९६१ सन्

विविध स्तरों पर एक साथ चलती है या यों कहें कि इन सबको एक में समन्वित करके एक नई ही विधा सम्भावना की ओर इंगित करती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी डायरी साहित्य उस सीमा तक नहीं पहुँच सका जैसा कि हम अंग्रेजी भाषा के साहित्य में दृष्टिपात करते हैं। केवल एक-दो डायरियों की अपेक्षा हमें सभी फुटकर पन्ने ही प्राप्त होते हैं। हिन्दी साहित्य में कोई भी ऐसी डायरी नहीं जो कि लेखक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत कर सके। प्राप्त डायरियों में सर्वश्रेष्ठ डायरी 'मेरी कालिज डायरी' डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा की है। अभी तक कोई भी ऐसी डायरी नहीं प्राप्त होती जिसकी तुलना हम सैमुएल पेपीस की डायरी से कर सकें। सैमुएल पेपीस ने अपने जीवन का पूर्ण रूप से जैसा खुला व स्पष्ट चित्रण किया है वैसा अभी तक कोई नहीं कर सका है।

If there is in all the literature of the world a book which can be called 'unique' with strict prooriety it is this. Confessions, diaries, journals, autobiographics abound, but such a revelation of a man's self has not yet been discovered. The diary is a thing apart by virtue of three qualities which are rarely found in perfection. When separate and nowhere else in combination. It was secret, it was full and it was honest.[1]

अर्थात् यदि किसी पुस्तक को विश्व साहित्य में ठीक ढंग से अद्वितीय कहा जा सकता है तो यह है—डायरी। पत्र एवं आत्मकथाओं में खोज करने पर भी मनुष्य का ऐसा व्यक्तिगत प्रकाशन अभी तक नहीं प्राप्त होता जो कि पूर्ण रूप से बहुत ही कम पाए जाते हैं पर यहाँ सब एकत्रित रूप में है। यह गुप्त, पूर्ण एवं सुस्पष्ट है।

इन्होंने अपने जीवन के विषय में अर्थात् जीवन सम्बन्धी घटनाओं का बहुत खुले रूप से चित्रण किया है। यहाँ तक कि अन्य स्त्री विषयक प्रेम को भी पूर्ण रूप लिखा है। अपनी स्त्री से कुव्यवहार का भी स्पष्ट वर्णन है।

He wrote so frankly that part of it not printed[2]

अर्थात् उन्होंने इतना स्पष्ट लिखा कि उसका कुछ भाग प्रकाशित भी नहीं किया गया। ऐसा स्पष्ट और नग्न चित्र अभी तक हिन्दी डायरी साहित्य में देखने में नहीं आता। फिर भी कुछ लेखकों ने प्रयास किया है। आशा है यह डायरी विधा भविष्य में पूर्ण प्रगति के पथ पर अग्रसर होगी।

(क) डायरी लेखकों के आधार पर

हिन्दी साहित्य में डायरी लेखक केवल साहित्यिक व्यक्ति ही नहीं हैं प्रत्युत अनेकों राजनैतिक, धार्मिक व्यक्तियों की डायरियाँ भी प्राप्त होती हैं। साहित्यिक व्यक्ति से मेरा अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जिन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास में अपनी कृतियों द्वारा विद्वत्ता का परिचय दिया है। ऐसी श्रेणी में कवि, कथालेखक एवं आलोचकगण आते हैं।

कवि—हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी डायरियाँ लिखी हैं। धर्मवीर भारती, उपेन्द्रनाथ अश्क एवं गजाननमाधव मुक्तिबोध इसी श्रेणी में आते हैं। भारतीजी ने अपने जीवन की जिन घटनाओं का वर्णन किया है उन सबके शीर्षक दिए हैं जैसे—एक सपना और उसके बाद, चाँदनी में कोकावेली, उचटी नींद आदि। जैसे कवि लोग भावुक वृत्ति के होते हैं डायरी में भी यह भावुक ही दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकृति के दृश्यों को देखकर मन का मचलना एवं फिर उनके साथ अपनी भावनाओं का तादात्म्य स्थापित करना इनको बहुत आता है। कवि ने अपने आशावादी विचारों का प्रकृति के साथ कैसे तादात्म्य किया है—

> "मैंने कभी मृत्यु के बारे में नहीं सोचा पर कभी यह जरूर सोचता हूँ कि जिये जाने वाले क्षणों की यह जो अन्तर्ग्रंथित शृंखला है इसका कहीं न कहीं तो अन्त होगा ही और जब होगा तब कुछ खास नहीं होगा।......मैं तो स्वर्ण-पराग-सा उसी तरह महकता रहूँगा सिर्फ नीले क्षण पांखुरियों की तरह ऊपर से घिरने लगेंगे, सिमटने लगेंगे और धीरे-धीरे फूल मुँद जाएगा और फिर सब शान्त हो जाएगा। सिर्फ डूबती साँझ में मुँदे कमल की हल्की उदास छाँह थोड़ी देर तक सरोवर में काँपती रहेगी...और बस।"

गजाननमाधव मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' भी इसी श्रेणी में आती है। यह डायरी शैलीगुण एवं विचारतत्व दोनों की विशेषता के कारण हिन्दी साहित्य में अपना स्थान रखती है। मुक्तिबोध जी स्वयं भी आलोचक एवं कवि हैं तो इनके व्यक्तित्व की इन दोनों विशेषताओं का प्रभाव डायरी पर अवश्य पड़ना था। डायरी विधा का यह रूप तो इसी में मिलेगा। जैसे निबन्धात्मक कहानी वैसे ही यह निबन्धात्मक डायरी है। निबन्ध पढ़ने के लिए तो मन कुछ घबरा-सा जाता है परन्तु इसमें पढ़ने की ललक रहती है। डायरी का आरम्भ सीधा-सादा है, कहीं एकालाप एवं कहीं काल्पनिक पात्र से वार्तालाप दृष्टिगोचर होता है। डायरी का आरम्भ ही बड़ा सीधा है—

> "आज से कोई बीस साल पहले की बात है मेरा एक मित्र केशव और मैं दोनों जंगल-जंगल घूमने जाया करते। पहाड़ पहाड़ चढ़ा करते। नदी नदी पार किया करते। केशव मेरे जैसा ही पन्द्रह वर्ष का बालक था। किन्तु वह मुझे बहुत ही रहस्यपूर्ण मालूम होता। उसका रहस्य बड़ा ही अजीब था।"

कुल दस प्रकरण डायरी में हैं, कोई नहीं इनमें जो एक आहत आत्मा की ड़ा में पिरोया हुआ न हो और जिसके स्वरों में फिर भी विजित का करुण भाव न कर चुनौती स्वीकार करने वाले शूर सैनिक का ओज न हो। हिन्दी डायरी विधा ा यह पहली कृति है जो फैण्टेसी, मनोविश्लेषण, तर्क, कविता, आत्माख्यान के विविध तरों पर एक साथ चलती है या कहें कि इन सबको एक में समन्वित करके एक नयी विधा की सम्भावना की ओर इंगित करती है।

कथालेखक—कथालेखकों में से उपेन्द्रनाथ अश्क एवं इलाचन्द्र जोशीजी की ायरियों के पन्ने प्राप्त होते हैं। अश्क की पुस्तक 'ज्यादा अपनी कम परायी' में इनकी ई पुरानी डायरी' के पन्ने प्राप्त होते हैं। जोशीजी की प्रकाशित पुस्तक 'साहित्य चन्तन' में इनकी 'डायरी के पन्ने' संग्रहीत हैं। अश्कजी ने पुरानी डायरी के पन्नों में ीवन के गूढ़तम रहस्यों को भावावेश में आकर काव्यमयी भाषा में रखा है। जो भी ारंग इनके मस्तिष्क में पैदा हुई उसी को इन्होंने डायरी रूप में लिख दिया है। इस कार ग्यारह छोटे-छोटे भाव जिनकी नैतिकता अमूल्य है वर्णन किए हैं। प्रत्येक विचार कट करने में तिथि का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है। नई डायरी में जीवन में टित छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन है। उनकी शैली में संक्षिप्तता, रोचकता एवं सुसंगठितता आदि गुणों का समावेश है। भाषा विषयानुकूल एवं भावानुकूल है। चारों ओर वैयक्तिकता की छाप है। जोशीजी ने अपनी डायरी के पन्नों में साहित्यिक विषय को लिया है, इन्होंने 'काव्य की सर्जनात्मक कला की कसौटी क्या है' पर अपने विचार प्रकट किए हैं। डायरी के ये पन्ने निबन्धात्मक शैली में लिखे गए हैं। अपने विचारों को प्रकट करने के लिए लेखक ने तर्क एवं मनोविज्ञान का सहारा लिया है।

आलोचक—आलोचकों में से गुलाबराय एवं डॉ० विनयमोहन शर्मा की डायरियों के कुछ पृष्ठ प्रकाशित हुए हैं। गुलाबराय ने वैसे तो कोई डायरी नहीं लिखी केवल उनकी पुस्तक 'मेरी असफलताएँ' में संग्रहीत 'मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ' में उनके समस्त व्यक्तित्व की झाँकी प्राप्त होती है। इसमें लेखक ने केवल एक ही दिन २१ सितम्बर सन् १९४५ का वर्णन किया है। [illegible] होने के कारण डायरी के इन पाँच पृष्ठों में लेखक ने समस्त [illegible] की [illegible]। व्यक्तिगत समस्याओं का गुलाबरायजी ने अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। [illegible] भावनाओं के विषय में कहते हैं—

> [illegible]

सृजन में भी सहायक होती है। इस गुण के होते हुए भी वह मेरे जीवन की एक बड़ी समस्या हो गई है। मैं हर साल उसके लिए अपने घर के पास खेत में चरी कर लेता था। इस साल वर्षा के होते हुए भी मेरा यहाँ चरी नहीं हुई—'भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषं'।"[1]

इतना ही नहीं लेखक ने इस एक ही दिन के वर्णन में अपने जीवन में घटित पारिवारिक समस्याओं का वर्णन करते हुए यह सिद्ध किया है कि मनुष्य को जीवन में बाधाओं से भागना नहीं चाहिए बल्कि उनका डटकर सामना करना चाहिए। आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपनी डायरी के पन्नों में बचपन में टाइफाइड होने की घटना का वर्णन किया है।

राजनैतिक पुरुष हिन्दी में कुछ राजनैतिक पुरुषों की डायरियाँ प्राप्त होती हैं। उनमें से कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो राजनीतिज्ञ होते हुए जननेता भी हैं। इस प्रकार राजनैतिक एवं जननेता दो प्रकार के व्यक्ति इस श्रेणी में आते हैं। राजनैतिक में हमारे सम्मुख घनश्यामदास बिड़ला, कृष्णदत्त भट्ट एवं सुन्दरलाल त्रिपाठीजी आते हैं। बिड़लाजी की 'डायरी के पन्ने' पुस्तक है। इसमें इन्होंने गांधीजी के साथ जो दूसरी गोलमेज परिषद् में भाग लिया था उसी का वर्णन किया है। इतने विस्तृत विषय को कम-से-कम शब्दों में वर्णन करना इनकी शैली की विशेषता है। परिषद् का वह जीता जागता चित्रण इन्होंने किया है कि पाठक को पढ़कर ही आनन्द आता है। डायरी के इन पृष्ठों में राजनैतिक परिस्थितियों का आभास तो है ही परन्तु वैयक्तिकता के चारों ओर आच्छादित होने से रोचकता में कमी नहीं आने पाई है। जननेता में गांधीजी आते हैं। इनकी 'दिल्ली डायरी' है। इसमें गाधीजी के १०-९-४७ से ३०-१-४८ तक के प्रार्थना प्रवचनों का संग्रह है। राजनैतिक पुरुषों में से कृष्णदत्त भट्ट एवं त्रिपाठीजी की डायरियाँ भी हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान रखती हैं। त्रिपाठीजी की 'दैनन्दिनी' अपनी विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से अद्वितीय है।

(ख) विषयवस्तु के अनुसार

हिन्दी साहित्य में जितने भी डायरी लेखक हुए हैं उन सभी की डायरियों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वैसे तो लेखक का उद्देश्य एवं प्रमुख विषय आत्मनिरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण ही है पर हम देखते हैं कि कुछ लेखकों ने अपने विचारों को एवं घटनाओं को प्रकट करने के लिए विशेषतया प्रकृति का सहारा लिया है। किसी ने साहित्यिक आलोचना का, किसी ने अपने जीवन की किसी विशेष अवस्था का चित्रण करने के लिए संस्मरणात्मक शैली को अपनाया है तो किसी ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषय को अपनाया है। ये सभी विषय लेखकों की अपनी-अपनी रुचि एवं व्यक्तित्व के अनुसार हैं—

---

१. मेरी असफलताएँ, ले० गुलाबराय, पृ० ४०

प्रकृति चित्रण प्रधान—हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे डायरी लेखक हुए हैं न्होंने अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रकृति के माध्यम से किया है। ऐसी डायरियों में डायरी लेखक प्रकृति की ओर अधिक उन्मुख दिखलाई पड़ता है प्रकृति चित्रण न डायरियाँ कहलवाती हैं। सीताराम सेक्सरिया की 'डायरी के पन्नों में वसन्त मी' एवं डॉ० रघुवंश की 'हरी घाटी' इसी प्रकार की डायरियाँ हैं। इनके अतिरिक्त वीर भारती, गजाननमाधव मुक्तिबोध आदि लेखकों ने भी प्रकृति को अपनी वारधारा प्रकट करने का साधन माना है। रघुवंशजी ने जहाँ विद्यार्थियों के नहीं ने से समस्त प्रयाग को उदास दिखलाया है वहाँ प्रकृति को भी वैसा ही दिखलाया है—

"वासन्ती बयार के स्पर्श के साथ जो नवीन कोपलों की शृंगार चतुर्दिक पापड़, बरगद, पीपल तथा आम ने किया था वह भी गहरे होते रंग के साथ मंद हो चुका है। गरम हवा के झोंके अवश्य किसी तप्त स्मृति के समान अन्तर को झकझोर जाते हैं। शिरीष की उत्फुल्लता गहरी होकर जरठ हो गई है। नीम जरूर झूम रहा है, हँस रहा है, खिला हुआ है। वह हँसता हुआ जीवन की क्षणिकता में उदास होने वाले हम जैसों का मानों उपहास करता हो।"

सीताराम सेक्सरिया ने अपनी डायरी के पृष्ठों में तीन वर्षों की वसन्त ऋतु ा चित्रण किया है। अधिकतर लेखकों ने प्रकृति के मधुर सुकोमल वातावरण पर ष्टिपात कर मन में उठी हुई भावनाओं का ही विशेष रूप से वर्णन किया है—गजानन-ाधव मुक्तिबोध ने अपनी मनःस्थिति का ऐसे ही चित्रण किया है—

"मेरे भीतर वातवरण की मस्ती छाने लगी। वृक्ष के रोम पुलकित हो रहे थे। जांघों में किरणों की सुनहली धारा सी बहने लगी। बाहुओं की मांस-पेशियों में से मानों कोई नया बहकर, दौड़ कर हृदय में जमाव बन रहा था। एकमात्र प्राकृतिक शारीरिक आनन्द मुझ पर हावी हो रहा था। एक उन्मत्त स्फूर्ति, एक सहज शक्ति चेतना मेरी आँखों को निर्मल एवं दीप्त कर रही थी।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डायरी लेखक का प्रमुख विषय आत्माभिव्यक्ति ही होता है। वह उसको प्रकृति के माध्यम से वर्णन कर सकता है। अधिकतर वह प्रकृति के वातावरण में उत्पन्न हुई मनःस्थिति का ही चित्रण करता है।

साहित्यिक आलोचना प्रधान—विषय की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसी भी 'डायरियों के पन्ने' प्राप्त होते हैं जिनका विषय साहित्य की आलोचना एवं साहित्यिक रूप का प्रतिपादन करना है। ऐसे डायरी लेखकों में इलाचन्द्र जोशी, लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी, अजितकुमार, भगवतीचरण वर्मा एवं धर्मवीर भारती जैसे लेखक आते हैं। इन लेखकों की शैली भावनापूर्ण एवं विचारपूर्ण है। ये विवेचना-प्रधान होते हुए भी विषय की विविधता के कारण हृदयग्राही होती हैं।

संस्मरण प्रधान—कुछ ऐसे डायरी लेखक भी हुए हैं जिन्होंने अपनी किसी विशेष घटना का वर्णन संस्मरण रूप में किया है। इस प्रकार के डायरी लेखक भी आते हैं जिन्होंने किसी खास प्रतिष्ठित व्यक्ति के जीवन का चित्रण डायरी की तिथि [illegible]

के रूप में किया है। प्रथम श्रेणी में अश्क ने नई पुरानी डायरी के पन्ने एवं डॉक्टर विनयमोहन शर्मा ने बचपन की एक दो घटनाएँ इसी रूप में लिखी हैं। दूसरी श्रेणी में वाल्मीकि चौधरी की 'राष्ट्रपति भवन की डायरी' है। चौधरीजी ने राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद का जीवन-चरित्र डायरी शैली में संस्मरणों के रूपमें खींचा है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषय सम्बन्धी कुछ ऐसी डायरियाँ भी हिन्दी डायरी साहित्य में पायी जाती हैं जिनका विषय सामाजिक एवं सांस्कृतिक है। ऐसी डायरियों में लेखक विवाह, शिक्षा, जीवन आदि सामाजिक विषयों पर एवं धर्म, अहिंसा, सत्य आदि धार्मिक विषयों सम्बन्धी अपने विचार प्रस्तुत करता है। इन सबके साथ वह तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन भी करता है। वैसे तो सभी लेखक अपनी डायरियों में इन विषयों को किसी न किसी रूप में व्यक्त करते हैं परन्तु विशेषतया हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक विषय को लेकर लिखी गई आचार्य तुलसी की 'प्रवचन डायरियाँ' प्राप्त होती हैं। इन डायरियों का विषय धर्म से सम्बन्धित है। इनके अतिरिक्त डॉ० धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कालिज डायरी' में अनेक सामाजिक समस्याओं पर विचार प्रकट किया गया है।

(ग) स्थानहेतुकादि के आधार पर

हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे डायरी लेखक भी हुए हैं जिन्होंने विशेष स्थान एवं नगर को दृष्टि में रखते हुए अपनी डायरियाँ लिखी हैं। रामकुमार ने 'वाराणसी की डायरी' में वाराणसी का एक जीवित चित्र खींचा है। इन्होंने गंगा के घाटों का वर्णन आरम्भ से अन्त तक विस्तारपूर्वक किया है। यही नहीं, नगर के बाजारों का, उसमे घूमने वाले लोगों का वर्णन अत्यन्त रोचकपूर्ण ढंग से किया है। वहाँ सड़क की भीड़ को देखकर लेखक चाहता है—

> "न भीड़ में खो जाना चाहता हूँ अपना अस्तित्व अलग बचाकर रखने का मोह नहीं है।"

वाराणसी के दूर-दूर तक बिखरे हुए मकान, मकानों के भीतर आँगन में सूखते हुए कपड़े एवं गंगा की नीले शांत जल की धारा, लम्बे बाजार एवं मन्दिरों का लेखक ने एक सुन्दर चित्र खींचा है। लेखक की शैली में सरलता, संक्षिप्तता एवं स्वाभाविकता आदि गुण स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं।

किसी विशेष स्थल को लेकर लिखने वालों में डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा एवं वाल्मीकि चौधरी आते हैं। डाक्टर साहब ने 'मेरी कालिज डायरी' में अपने कालिज जीवन के सात वर्षों का चित्र खींचा है। उधर चौधरीजी ने राष्ट्रपति भवन में घटित सभी दैनिक घटनाओं का वर्णन, तत्सम्बन्धी क्रियाकलापों एवं राजनीति के निर्माण के बनने में जो चित्र उनके सामने आए हैं उन सभी का वर्णन किया है। डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद का जीवन इन्होंने संस्मरणात्मक रूप में वर्णन किया है। वर्णन शैली में रोचकता है। भाषा भी विषयानुकूल एवं परिष्कृत है।

8 हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इन जीवनीपरक साहित्य रूपों के अन्तर्बन्ध

साहित्य और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य जीवन साहित्य का मूल स्रोत है और साहित्य जीवन को व्यक्त करने का साधन है। जीवन का ऐसा कोई भाग नहीं जिसका साहित्य में उल्लेख न हो। जिस भी साहित्य में जीवन के तत्वों का विवेचन नहीं होता महत्व का स्थान और आकर्षण नहीं रखता है। इसीलिए जीवन में साहित्य का जो स्थान है वह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना जीवन स्वयं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन और साहित्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इसीलिए साहित्य में इन जीवनीपरक साहित्य रूपों की प्रवृत्ति पाई जाती है।

साहित्य में जीवन को अभिव्यक्त करने की दो विधाएँ हैं गद्य और पद्य। गद्य में जहाँ लेखक अपने व्यक्तित्व एवं विचारों को उपन्यास, नाटक एवं कहानी आदि विधाओं द्वारा परोक्ष रूप से व्यक्त करता है वहाँ वह स्वतंत्र रूप से भी अपने एवं अन्य व्यक्ति के जीवन का विवेचन कर सकता है। इसीलिए इस जीवनीपरक साहित्य की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार के साहित्य में व्यक्ति की प्रधानता होती है समष्टि की नहीं। ऐसे साहित्य में लेखक अपने व अन्य व्यक्ति के जीवन की विशेष विचारधारा, अनुभव एवं जीवन के उत्थान-पतन को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि पाठकगण उससे प्रेरणा ग्रहण कर सकें। इस प्रकार के साहित्य के लेखक का दृष्टिकोण निर्भीकता और ईमानदारी से ओतप्रोत होना है। इसलिए आत्मीयता, स्पष्टता, निर्भीकता इस साहित्य के प्रमुख तत्व हैं। इसमें लेखक का उद्देश्य जीवन के उन गुप्त एवं रोचक तथ्यों को उभारना होता है जिनका किसी को अनुभव भी नहीं होता। इन तथ्यों के उभारने से एक तो लेखक को मानसिक संतोष का अनुभव होता है और दूसरे पाठक उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। कुछ ऐतिहासिक एवं पौराणिक व्यक्तियों की जीवनियाँ प्रेम और श्रद्धापूर्वक लिखी जाती हैं। ऐसी जीवनियों में लेखक साधारण [illegible] [illegible] ही विवेचन करते हैं। इस प्रकार जीवनीपरक साहित्य, साहित्य में अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

जीवनीपरक साहित्य में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी एवं पत्र विधाओं का समावेश है। साहित्य अपने युग की विचारधारा का प्रतिबिम्ब होता

इसी प्रकार जीवनीपरक साहित्य की इन पृथक्-पृथक् विधाओं का विकास भी अपने समय की परिस्थितियों के अनुसार ही हुआ है ।

भारतेन्दु युग में जीवनीपरक साहित्य

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल सन् १८७५ के आस-पास से आरम्भ होता है । जब तक मध्ययुगीन जीवन की जड़ता भंग हो चुकी थी और भारतीय पुनर्जागरण अपने बाल्यकाल में था । ब्रिटिश साम्राज्य का प्रसार हो चुका था, पश्चिमी विचार और जीवन मानों से भारतीय प्रभावित हो रहे थे, यातायात और डाकतार की सुविधा और उच्च शिक्षा की व्यवस्था ने भारत में एक क्रियाशील जागृति का संचार किया । छापेखाने ने समाचार पत्रों को जन्म दिया और भारतीय जनजीवन में एकता आने लगी, विचार-विमर्श के लिए अनेक सुविधाएँ मिल गई । १८५७ के बाद अंग्रेज सरकार को विश्वास हो चुका था कि इस देश में सुशासन स्थापित किए बिना रहना सम्भव नहीं अत: उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्यों को पहले निपटाया । महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र से जनता आश्वस्त हो गई ।[1] इसके बावजूद भी भारतीय जनता अपने अधिकारों के प्रति सतर्क थी और राजनैतिक क्षेत्रों में क्रियात्मक भाग से ले रही थी । यह सर्वथा नए वातावरण की सूचना थी । इस महत्वपूर्ण तथ्य ने जीवन के स्वरूप का ही परिवर्तन कर दिया और साहित्य को गम्भीरतापूर्वक प्रभावित किया । अतीत काल में साहित्य थोड़े से सुखी सम्पन्न लोगों से ही सम्बन्धित था, प्रजातान्त्रिक प्रवृत्तियों के विकास के साथ-साथ वह अधिकाधिक जनता की चीज बनने लगा । अब वह सामन्ती विलासिता से पूर्ण अभिजात्य जीवन की अभिव्यंजना मात्र न रह गया, प्रत्युत पूरे युग की अनावरत वृद्धिशील आशा आकांक्षाओं शंकाओं आपदाओं को चित्रित करने लगा । एक शब्द में नये युग का साहित्य विविध और प्रजातांत्रिक होकर आता है ।[2]

साहित्य का क्षेत्र इस युग में विस्तृत होता है । १९वीं शती में स्थिति बदल गई । जीवन में बहुमुखता आई और साहित्य में उसका प्रतिफलन हुआ । लेखकों ने गद्य को विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम तो बनाया परन्तु काव्य को छोड़ा नहीं । गद्य साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी के सभी साहित्यांग जो प्राचीन काल में अविकसित रहे आधुनिक काल में अधिक तीव्रता के साथ उभरे । इसे हम युगगत आवश्यकताओं का परिणाम मात्र कह सकते हैं । इनके परिपार्श्व में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की साहित्य साधना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है । सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और नैतिक विचारों का यह परिवर्तन साहित्य में एकदम तो न आ सका पर भारतेन्दु की क्रियाशीलता और प्रोत्साहन देने की प्रवृत्ति ने आधुनिक युग को खड़ी बोली और उसके विभिन्न साहित्यांगों से परिपूर्ण किया । कतिपय विचारक इस युग को स्वच्छन्दतावाद

---

१. भारतेन्दु युग : डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० २

२. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा : डॉ० रामअवध द्विवेदी, पृ० १३६

की पृष्ठभूमि कहते हैं।[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के सिंहद्वार पर स्थित हैं। उनका व्यक्तित्व अन्यतम है। प्राचीन परम्पराओं में मग्न रहकर भी वे उनके दास न बने। उन्होंने अतीत की अपेक्षा भविष्य का अधिक चिन्तन किया और हिन्दी के भावी पथ निर्माण में अकेले और किसी व्यक्ति से अधिक काम किया।[2] व्यक्तित्व से आकर्षक और सुसंस्कृत होने के कारण वे साहित्यिक सक्रियता के केन्द्र बन गए। अपने से प्रतिकूल वातावरण में उन्होंने अनेक साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत की और अधिकाधिक संख्या में मित्रों को प्रोत्साहित किया। इसी कारण नवीन प्रवृत्तियों की समस्त अभिव्यक्ति इनकी कृतियों में हुई।[3] साहित्यकार द्वारा ही देश में जनजीवन का संस्कार होता है।[4] इस रूप में भारतेन्दु की देशभक्ति का रूप सांस्कृतिक उत्थान और जागृति का रूप था। यह बात उनके साहित्य के अवलोकन में स्पष्ट हो जाती है कि उनका विशेष बल सांस्कृतिक उद्बोधन पर ही अधिक था। एक ओर जहाँ उस समय देश में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर दौड़ रही थी वहीं दूसरी ओर पुरानी रूढ़ियाँ और देश के प्रतिक्रियावादी तत्त्व उनका विरोध कर रहे थे। ऐसे समय में व्यक्ति चेतना ही अधिक मुखर थी। व्यक्ति चेतना भारतेन्दुजी को सांस्कृतिक नवसंस्कार में लगाए थी।

हिन्दी साहित्य के जैसे अन्य क्षेत्रों में भारतेन्दु द्वारा नवीनता की सृष्टि हुई वैसे ही उन्होंने जीवनीपरक साहित्य में यथार्थवादी परम्परा स्थापित की। जीवनी-साहित्य में विशेषतया इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। वैसे तो भारतेन्दुजी ने कोई भी जीवनी-ग्रन्थ नहीं लिखा। उन्होंने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया था, फिर भी अंग्रेजी में उस समय जो जीवन-साहित्य का स्तर था, उसका प्रभाव भारतेन्दु के जीवन-लेखों में नहीं है। उन्होंने जीवन-चरित का ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है जैसा आज लिखा जाता है और अंग्रेजी साहित्य में जैसा उस समय भी लिखा जाता था। भारतेन्दु ने छोटे-छोटे लेखों के रूप में संतों की, पौराणिक व्यक्तियों की, मुसलमान बादशाहों और महापुरुषों आदि की जीवनी लिखी है। 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' में लगभग दो सौ भक्तों का वर्णन केवल एक सौ छियानवे छप्पयों में किया है। इसी प्रकार 'चरितावली' में सोलह जीवन-चरित्र एक सौ छब्बीस पृष्ठों में लिखे गए हैं। भारतेन्दु द्वारा लिखे जीवनचरित्रों का वर्णन भी आठ-दस पृष्ठों तक ही सीमित है। इन जीवनियों में उनका पूर्ण चित्र उपस्थित नहीं हो पाता है जिनका जीवन-चरित लिखा गया है। [illegible] भारतेन्दु की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रवृत्तियाँ चरित-लेखन में स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। तदनन्तर भी [illegible] से चरित लिखने की शैली का क्रमिक विकास हिन्दी में नहीं पाया।

---

१. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा: डॉ० [illegible], पृ० [illegible]
२. वही, पृ० [illegible]
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास: आचार्य शुक्ल, पृ० [illegible]
४. भारतेन्दु साहित्य, डॉ० श्री रामगोपाल सिंह चौहान, पृ० [illegible]

...भक्तों के चरित्रों का भक्तिपूर्ण वर्णन तथा नृप यश-कीर्तन की प्राचीन सीमा, परम्परा तथा शैली पार कर भारतेन्दु ने जीवनी साहित्य को मानवीय स्तर पर लाकर लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया।...उन्होंने जीवनी के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टिकोण से विचारने की प्रेरणा दी और भक्तों तथा दरबारी कवियों की परिधि से निकाल जीवनी साहित्य को उस धरातल पर ला बिठाया जहाँ साहित्य वास्तविक रूप धारणकर विकास की ओर अग्रसर होता है।[1]

भारतेन्दु का समस्त जीवन साहित्य तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर लिखा गया है। इन्होंने यह सब कार्य हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिए और हिन्दी पाठकों को भारतीय चरित्रों और दूसरे उल्लेखनीय व्यक्तियों तथा आरम्भिक इतिहास और वृत्तान्त से परिचित कराने के लिए किया जो कि उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल था।

इस युग में जितने भी जीवनी लेखक हुए हैं वे सभी अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित थे। रमाशंकर व्यास, काशीनाथ खत्री, कार्त्तिकप्रसाद खत्री, प्रेमचन्द, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त इस समय के जीवनी लेखक हैं। केवल कार्त्तिकप्रसाद खत्री ने ही 'मीराबाई का जीवन चरित्र' लिखकर साहित्यक व्यक्ति के चरित्र पर प्रकाश डाला है और वह भी पूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक नहीं अन्यथा सभी जीवनी लेखकों ने पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन-चरित्र लिखे हैं।

इसके अतिरिक्त जिन भी अन्य भाषाओं के जीवन-चरित्रों का हिन्दी में अनुवाद हुआ वे भी इसी प्रकार के हैं।

आत्मकथा साहित्य की उपयोगिता को भी इस काल के लेखकों ने अनुभव करना आरम्भ किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास एवं श्रीधर पाठक ने आत्मचरित लिखने का प्रयास किया पर थोड़े से पृष्ठ लिखकर ही रह गए। इनको पूर्ण सफलता नहीं मिली, केवल जन्मस्थान, जन्मतिथि एवं वंश-परिचय से ये लोग आगे नहीं बढ़े। इससे स्पष्ट है कि आत्मकथा साहित्य भी इस काल में प्रगति न कर सका। जो कुछ लिखा गया वह नहीं के समान है।

भारतेन्दु युग में पत्र साहित्य का भी विकास हुआ। स्वयं भारतेन्दु के लिखे हुए पत्र प्राप्त होते हैं। इन पत्रों का विषय व्यक्तिगत होने के साथ-साथ साहित्यिक है। इनके अतिरिक्त श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त एवं बालकृष्ण भट्ट इस काल के पत्र लेखक हैं। इनके पत्रों का विषय भी साहित्यिक है। ये पत्र हिन्दी भाषा के इतिहास को एवं साहित्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। इन पत्रों से इनके साहित्यिक व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त हो जाती है, हिन्दी भाषा के उन्नति के लिए जो प्रबाध प्रयत्न किया उसका सब ज्ञान हमें हो जाता है। केवल दो-एक पत्र ही इन्होंने ऐसे

---

१. हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास : चन्द्रावती सिंह, पृ० १२४

लिखे हैं जिनसे इनके व्यक्तिगत जीवन के कुछ अंगों का ज्ञान मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं इस काल में पत्र साहित्य भी उस सीमा तक था। डायरी साहित्य भी पनप न सका, केवल बालमुकुन्द गुप्त के ही डायरी के कुछ पृष्ठ प्राप्त होते हैं जिनसे इनके जीवन के विषय में कुछ भी नहीं पता चलता। ये पृष्ठ सर्वसाधारण से हैं जिनमें केवल दिनचर्या का उल्लेख है। 'संस्मरण' भी गुप्तजी ने ही लिखे हैं। संस्मरण साहित्य भी इस काल में विकास को न प्राप्त हो सका।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग में जीवनी साहित्य ही विशेष रूप से लिखा गया यद्यपि इस विधा का वह विकास न हो सका जैसा कि अब देखने में आता है। गद्य की अन्य विधाओं पत्र, डायरी, संस्मरण व आत्मकथा लिखने का प्रयास किया गया। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल ही लेखकों ने रचना का आविर्भाव करना था तो जीवन ,चरित ही इनके उद्देश्य को पूर्ण कर सकते थे इसीलिए उन्होंने जीवन चरित्र भी विशेष व्यक्तियों के लिखे गए जिनसे वह अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सकते थे। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा ही हिन्दी भाषा का प्रचार हो सकता था। अन्य विधाओं के विकसित न होने का कारण यह है कि भारतीय दृष्टिकोण व्यक्तिगत जीवन की चर्चा और चरित्र-चित्रण के संकोच की प्राचीन परम्परा से अभी तक मुक्ति पाने में असमर्थ था। क्योंकि जो भी जीवन चरित्र लिखे गए हैं उनके लिखने में लेखक ने जन-श्रुति और किंवदंतियों का आश्रय लिया और सभी जीवनियों में जीवन की कुछ स्थूल घटनाओं का वर्णन मात्र कर दिया है। [illegible] और छानबीन की है। गद्य की इन सभी विधाओं का प्रारम्भिक रूप इस काल में देखने को मिलता है।

द्विवेदी युग

भारतेन्दु युग प्राचीन काव्य से सर्वथा भिन्न भावभूमि पर आया। इसमें नवो-त्थान की द्विमुखी प्रवृत्तियां मिलती हैं—अतीत के गौरव की ओर तथा [illegible] की धारा में संलग्न होने की। सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों ने [illegible] नवीन मार्ग का निर्माण किया था और [illegible] द्विवेदी युग में संशोधन तथा [illegible] [illegible]

१. भारतेन्दु [illegible]

स्तर पर पहुँचा देता। तो भी इस युग के उन गद्यकारों के महान् कार्य को नगण्य नहीं कह सकते, जिन्होंने अव्यवस्था के समय सुव्यवस्था के स्थापन के लिए श्रम किया और हिन्दी साहित्य को अनुवादों तथा मौलिक रचनाओं द्वारा समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया।[1] इस व्यवस्था में कतिपय आदर्शों का पालन किया गया। आदर्शों के निर्माता और निर्धारित द्विवेदीजी का कार्य पुनरुत्थानवादी कार्यकर्त्ता का है। उन्होंने साहित्य में कठोर नियमानुशासन, दृढ़ संयम आदि को प्रश्रय दिया और प्राचीन गौरव के चित्रों को प्रस्तुत किया। समष्टि हित चेतना, धर्मप्रियता और समाज के सुव्यवस्थित रूप को उपस्थित करने की प्रवृत्ति में वे समष्टिवादी विचारक के रूप में आते हैं। आचार्य द्विवेदी ने उसे गूढ़ तथा तथ्यपूर्ण विषयों और विचारों को व्यक्त करने का साधन बना दिया। यद्यपि बहुत कुछ होना अभी शेष था, परन्तु हिन्दी भाषा ने प्रौढ़, सुसंगठित और मर्यादित रूप धारण कर अपनी मान्यता और भावी स्वरूप से सम्बन्ध रखने वाली अनेक आशाओं और विवादों को निर्मूल कर दिया। आचार्य द्विवेदी ने एक जागृत चेतना तथा आत्मविश्वास के साथ इस क्षेत्र में कार्य किया। भाषा, व्याकरण, शैली और वाक्य-विन्यासों पर ध्यान देते हुए उन्होंने साहित्यिक समालोचना, इतिहास प्रथाशास्त्र, राजनीति और जीवन चरित्र आदि विषयों पर गम्भीरता, तल्लीनता तथा परिश्रम के साथ लिखना अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया।[2] इस युग के जीवनी-परक साहित्य का अध्ययन करने के लिए भी देश के भीतर चलने वाले विभिन्न आन्दोलनों के फलस्वरूप ही इस युग का प्रचुर जीवनीपरक साहित्य प्रस्तुत हुआ।

राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना विशेष अग्रसर हो चली थी। अनेक गुप्त और प्रकट आन्दोलन हो रहे थे। स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के त्याग करने का आन्दोलन राष्ट्रीयता का मुख्य अंग बन गया था। इन राष्ट्रीय आन्दोलनों का केन्द्रस्थान बंगाल था। अंग्रेजों ने इसके दो टुकड़े कर दिए। लार्ड कर्जन का शासन काल अनुसार तथा प्रतिक्रियावादी था। भारतीय जनता ने बंग-भंग का विरोध करके उसको पूर्व की स्थिति में बदला। इस आन्दोलन का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि अंग्रेजों को इस बात का निश्चय हो गया कि भारतीय जनता आत्मसम्मान के लिए सभी कुछ बलिदान दे सकती है। देश में राष्ट्रीयता की अभूत-पूर्व लहर दौड़ गई। नई शक्ति, नई आत्मा और नए जीवन का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त १९०६ ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। मुस्लिम लीग की स्थापना से राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधा उपस्थित हुई। इसकी नींव की प्रेरणा अंग्रेजों द्वारा ही हुई। १९१६ ई० में हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने के लिए लखनऊ में अधि-वेशन हुआ। यह समस्या कुछ वर्षों के लिए तो दब गई। 'बंग-भंग' आन्दोलन ने देश में बड़ी शक्ति उत्पन्न कर दी थी। देश के भीतर दो प्रकार के आन्दोलन हो रहे थे—

१. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा: डॉ० द्विवेदी, पृ० १५९
२. हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास: चन्द्रावती सिंह, पृ० १४०

भीतर आतंकवादी हिंसात्मक आन्दोलन का संगठन हो रहा था। यह संगठन बीच में शिथिल होकर १९१४-१९१५ में बढ़ा। देश में अभूतपूर्व जीवनी शक्ति आ गई। दूसरे प्रकार का आन्दोलन कांग्रेस द्वारा बढ़ता गया। १८८५ ई० के बाद कांग्रेस का स्तर राष्ट्रीय संस्था के रूप में विद्यमान हो गया। १९०६ में सूरत के अधिवेशन का नेतृत्व तिलक ने किया। इसमें कांग्रेस के दो दल बने—नर्म एवं उग्र। तिलक जैसे देश-भक्तों के राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण के साथ देश में स्वाधीनता आन्दोलन को विशेष बल मिला। इधर इसी समय एशिया के इतिहास में एक रोमांचकारी घटना घटित हुई जिसने कि सम्पूर्ण एशिया में जागरण की लहर को उत्पन्न कर दिया। सन् १९०५ में रूस जैसे विशाल राष्ट्र को जापान जैसे छोटे से राज्य ने पराजित कर यूरोपीय शक्तियों की अजेयता की पोल खोल दी। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत के राजनैतिक रंगमंच पर महात्मागांधी का आविर्भाव हुआ और उन्होंने अपनी अलौकिक आत्मशक्ति से सम्पूर्ण देश में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए एक विशेष उत्साह तथा तड़प को उत्पन्न कर दिया। भारत की पीड़ित तथा शोषित जनता में एक बार फिर अदम्य आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न हो गई और उसने महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलनों में सहयोग दे अनेक बार ब्रिटिश सरकार से टक्कर ली।

इसी दौरान में ब्रिटिश सरकार ने देश की वास्तविक सत्ता को अपने हाथ में रखते हुए अनेक वैधानिक तथा शासन सम्बन्धी सुधार कर देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए चल रहे इन उग्र आन्दोलनों को शान्त करने के प्रयत्न किए।[1]

सामाजिक क्षेत्र में इस काल में आर्य समाज अत्यन्त क्रियाशील तथा प्रगति-शील संस्था थी। बीसवीं सदी का यह युग धार्मिक अन्धविश्वासों को दूर करने में अधिक सफल था। जनता रूढ़ियों के जाल से निकलने लगी थी। आर्य समाज ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। छुआछूत दूर करने में भी आर्य समाज ने कार्य किया। विधवा-विवाह और बहु-विवाह आदि कुरीतियों को हटाने में महत्वपूर्ण कार्य किया। आर्य समाज के कार्यकर्त्ता कांग्रेस के तथा अन्य राष्ट्रीय क्षेत्रों में कार्यकर्त्ता थे। कुछ आर्यसमाजी जो समय की प्रगति के साथ नहीं चल सके थे रूढ़िवादी धर्म-प्रचारक रह गए।

सरकार का दमन बहुमुखी था। भाषण और लेख पर प्रेस एक्ट द्वारा प्रतिबन्ध था। पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें आए दिन जब्त होती रहती थीं, प्रेस और सम्पादक से जमानतें इतनी अधिक मांगी जाती थीं कि उनको पूरा करना प्रायः असम्भव हो जाता था। सम्पादकों पर मुकदमा चलाना एक साधारण बात थी। ऐसी परिस्थिति में अनेक लेखक, सम्पादक, साहित्यिक और विचारक जनता में खुलकर और मन से अपने मन के भावों को व्यक्त नहीं कर सकते थे।[2]

---

१. हिन्दी साहित्य की परम्परा, हंसराज अग्रवाल, पृ० [illegible]
२. हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास, चन्द्रावती सिंह, पृ० [illegible]

द्विवेदी युग का जीवनी साहित्य अपने समय से प्रभावित है। स्वयं द्विवेदीजी ने कवि, लेखक, बादशाह, राजनीतिज्ञ, देशोद्धारक, राजकीय उत्तराधिकारी एवं नूतन पथ-प्रदर्शकों को अपने जीवनी साहित्य का विषय बनाया। द्विवेदीजी का जीवनी लिखने का उद्देश्य शिक्षात्मक है। हिन्दी साहित्य के प्रसार के लिए इन्होंने इस साहित्य को लिखा। आचार्य द्विवेदीजी ने जो जीवनी लेख लिखे वे युग चेतना के अनुसार न थे। वे अत्यन्त साधारण लेख थे। जीवनी साहित्य की प्रगति में वे आगे नहीं बढ़ सके। इसका एक साधारण कारण तो यह है कि भारतीय जनजीवनी साहित्य की ओर रुचि नहीं रखते थे। दूसरा कारण यह है कि द्विवेदीजी 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक थे। उनका उद्देश्य पत्रिका द्वारा प्रचार करना था इसलिए वह सरकार के विरुद्ध नहीं जाते थे। उन्होंने उच्च वर्ग के व्यक्तियों का जीवन-चरित्र लिखा, राष्ट्रीय आन्दोलन में लगे किसी भी व्यक्ति के विषय में नहीं लिखा। ऐसे आन्दोलनों की ओर उनका झुकाव न था, वे तो राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत थे।

द्विवेदी युग में जो भी जीवनी साहित्य लिखा गया उनमें सबसे अधिक ऋषि दयानन्द के विषय में लिखा गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र लिखे गए। बाबू शिवनन्दन सहाय ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-चरित्र लिखकर हिन्दी जीवनी साहित्य के विकास में विशेष योग दिया। इनके अतिरिक्त बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी लिखी। डा० श्यामसुन्दरदास द्वारा लिखी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जीवनी भी इस बात की द्योतक है कि जहाँ इस युग में ऐतिहासिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र लिखे गए वहाँ साहित्यिक व्यक्तियों को भी अच्छे लेखकों ने अपने जीवनी साहित्य का विषय बनाया। भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस काल में जीवनी साहित्य अधिक पनपा। वह अपनी उत्कृष्ट अवस्था तक पहुँच गया, इसमें वे सभी तत्व आ गए जिनका जीवनी साहित्य में होना आवश्यक है। शिवनन्दन सहाय, बनारसीदास चतुर्वेदी एवं डा० श्यामसुन्दरदास के प्रयत्न सराहनीय हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अनूदित जीवनियाँ भी लिखी गई। इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि द्विवेदी युग में जीवनी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया। लेखकों ने सभी क्षेत्रों से अपने जीवनी के विषय को लिया। शैली भी परिपक्व एवं सुदृढ़ हो गई थी। जितनी साहित्यिक जीवनियाँ लिखी गई वे सभी प्रामाणिक एवं उत्कृष्ट कोटि की लिखी गई।

जहाँ तक जीवनीपरक साहित्य की अन्य विधाओं का प्रश्न है उनमें से रेखाचित्र साहित्य का आविर्भाव इस युग में पद्मसिंह शर्मा के द्वारा हो गया था यद्यपि इनके रेखाचित्रों में कला का वह रूप दृष्टिगोचर नहीं होता जैसा कि आज है। इसके अतिरिक्त इस युग में अधिक रेखाचित्र धार्मिक स्थानों के विषय में लिखे गए। संतराम बी० ए०, रामाज्ञासमीर एवं शीतलसहाय ने इसी प्रकार के रेखाचित्र लिखे। केवल मोहनलाल महतो ने अपने बच्चों का जो चित्र अपने रेखाचित्रों में अंकित किया वह इस काल के रेखाचित्र साहित्य की प्रगति को लक्षित करता है। फिर भी यह

रेखाचित्र साहित्य का प्रारम्भिक काल है।

संस्मरण साहित्य का प्रादुर्भाव ही भारतेन्दु काल के पश्चात् हुआ है। द्विवेदी युग में साहित्य की इस विधा की उत्पत्ति हुई और साथ में इस थोड़े से समय में ही बहुत से लेखकों ने संस्मरण लिखे। संस्मरण साहित्य की प्रगति हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुई जिनका कि इस समय में विकास हो गया था। विषय की दृष्टि से ये संस्मरण दो प्रकार के हैं—आत्मकथा से सम्बन्धित एवं अन्य व्यक्ति के चरित्र से सम्बन्धित। आत्मकथा से सम्बन्धित संस्मरणों में लेखकों ने अपने व्यक्तित्व पर संस्मरणात्मक शैली में प्रकाश डाला है। ऐसे लेखक इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा एवं श्रीनिवास शास्त्री हैं।

दूसरी प्रकार के संस्मरण लेखक बालमुकुन्द गुप्त, डा० श्यामसुन्दरदास एवं श्री रामदास गौड़ और अमृतलाल चक्रवर्ती हैं। इन सभी संस्मरणों में लेखकों ने केवल साहित्यिक लेखकों के व्यक्तित्व के विषय में प्रकाश डाला है। संस्मरण साहित्य अभी प्रौढ़ अवस्था तक नहीं पहुँचा था पर जितना भी लिखा गया वह उत्कृष्ट कोटि का है।

द्विवेदी युग में पत्र साहित्य की प्रगति सबसे अधिक हुई है। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक होने के कारण आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी भाषा में जो अशुद्धियाँ थीं उनको दूर करके उसको परिनिष्ठित एवं परिपक्व भाषा बनाना था। इसलिए उनके पास जो भी लेख पत्रिका में छपने आते थे उनकी अशुद्धियों को वह उनके लेखकों को पत्रों द्वारा बतलाते थे इसलिए उनके बहुत से पत्र प्राप्त होते हैं। उनके अधिकतर पत्रों का विषय साहित्यिक है जिनमें तत्कालीन व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों पर ध्यान दिया है। इनके अतिरिक्त इस युग के प्रसिद्ध पत्र लेखकों में पद्मसिंह शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं मुंशी प्रेमचन्द हैं। ये सभी लेखक पत्र लेखन में सिद्धहस्त थे। इनके पत्रों में इनका व्यक्तित्व तो उभरा हुआ है ही साथ में तत्कालीन राजनीतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक परिस्थितियों पर भी आवश्यकतानुसार प्रकाश डाला है। इनके अधिकांश पत्रों का विषय साहित्य से ही सम्बन्धित है। जिन पत्रों में इन्होंने अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण भी किया है वह इनकी निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता का द्योतक है। मुंशी प्रेमचन्द के पत्र तो अपना ही स्थान रखते हैं। इन्होंने [illegible] चारित्रिक गुण दोषों का चित्रण अपने पत्रों में बड़ी निर्भीकता से किया है। [illegible] तत्कालीन परिस्थितियों के द्योतक एवं उनके व्यक्तित्व [illegible] हैं। इस युग में सब से अधिक प्रगति पत्र साहित्य की हुई है। [illegible] युग में पनप रहा ऐसा अन्य किसी भी समय में नहीं। [illegible] अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पत्र लेखकों ने अपने पत्रों [illegible] हैं। कुछ पत्र साहित्यिक लिखे गए जिनमें साहित्य [illegible] जाना गया। हिन्दी भाषा और साहित्य के [illegible] बहुत महत्ता रखते हैं। कुछ पत्रों में [illegible]

है। ऐसे पत्र आत्मकथा एवं जीवन के लिए सहायक होते हैं। ऐसे पत्रों में लेखक की ईमानदारी और जिन्दादिली प्राप्त होती है। कुछ पत्र ऐसे लिखे गए हैं जिनमें इन्होंने किसी अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। ऐसे पत्रों में इन्होंने नायक के गुण-दोषों का विवेचन स्पष्ट रूप से किया है। द्विवेदी युग का पत्र साहित्य हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है।

इस युग में आत्मकथा लिखने का प्रयास द्विवेदीजी ने ही किया। इन्होंने कुछ पन्ने अपने जीवन के विषम में लिखे हैं। उनमें जो कुछ भी इन्होंने लिखा है वह इनकी उत्कृष्ट शैली का परिचायक है परन्तु यह पूरी आत्मकथा न लिख सके। अन्य किसी भी लेखक ने यह प्रयास नहीं किया। आत्मकथा का अंश इस काल के पत्र साहित्य में ही दृष्टिगोचर होता है। अन्य किसी भी लेखक ने स्वतन्त्र रूप से आत्मकथा नहीं लिखी। डायरी लिखने की प्रथा भी इस युग में प्रचलित न हो सकी।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि द्विवेदी युग में जीवनी साहित्य एवं पत्र साहित्य की विशेष रूप से लिखा गया। पत्र साहित्य का तो अधिक विकास इस समय में ही हुआ है।

वर्तमान युग

द्विवेदी युग के समाप्त होते ही भारतीय जनता में उथल-पुथल समाप्त-सी होने लगी। १९३० ई० का आरम्भ एक विशेष घटना से हुआ। कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ, समस्त जनता इससे प्रभावित हुई। इसके पश्चात् लार्ड इरविन से गांधीजी का समझौता हुआ। इस समझौते का यह परिणाम हुआ कि महात्मा गांधी गोलमेज कांफ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए इंग्लैंड गए। इतने में ही ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता पर भीषण दमन का चक्र चलाया। कांग्रेस ने सत्याग्रह और लगानबन्दी आन्दोलन का अनुसरण किया। १९३५ ई० में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट द्वारा भारतवासियों को जो कुछ भी शासन अधिकार मिला उससे भारतीय लोगों की शक्ति और भी सुदृढ़ हो गई। १९३७ में चुनाव हुआ और उसमें कांग्रेस की विजय हुई। सन् १९३९ ई० में योरोप दूसरे विश्वयुद्ध का केन्द्र बना और फिर सारा संसार प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से युद्ध की ज्वाला में जलने लगा। ब्रिटेन ने भारत को युद्ध में मिलाना चाहा परन्तु भारत के नेताओं ने इनकार कर दिया, इसके साथ ही त्यागपत्र दे दिया। गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। परिस्थितियाँ धीरे-धीरे घनीभूत हो रही थीं। साम्राज्य ने साम्प्रदायिकता को उत्तेजित कर भारतीय राष्ट्रशक्ति को छिन्न-भिन्न करने का पुराना और परीक्षित अस्त्र प्रयोग किया। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों जो जनता का समर्थन किसी अंश में नहीं प्राप्त कर सकी थीं ब्रिटिश सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त करने लगीं। १९४० ई० में मुहम्मद अली जिन्ना ने पाकिस्तान की माँग की। महात्मा गांधी के

नेतृत्व में १९४२ में भारतीय जनता ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव रक्खा। देश का सम्पूर्ण वातावरण जनवर्ग और जनभावना तथा चिन्तन त्याग के उच्चादर्श देश के लिए सम्पूर्ण बलिदान से ओतप्रोत था। भारत का जीवन एक ऐसे साँचे में ढल चुका था जहाँ मनुष्य और समाज का उत्कृष्ट रूप दीख पड़ता है।

१९४५ में ई० में युद्ध समाप्त हो गया। भारत की राष्ट्रीय चेतना इतनी जागृत थी कि इसको १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्रता मिली। साम्प्रदायिकता का स्वरूप भारत और पाकिस्तान में दृष्टिगोचर हुआ। गांधीजी ने इसको बहुत अंश तक शान्त करना चाहा। अन्त में ३० जनवरी १९४८ को इनकी भी मृत्यु हो गई। स्वतन्त्र भारत के संविधान को २६ जनवरी १९५० को लागू किया गया, इसके साथ ही हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा घोषित किया गया।

सन् १९३० से १९५० तक साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस समय का साहित्य अपने देश की परिस्थितियों से प्रभावित था। उच्चकोटि के विद्वान और राजनीतिज्ञ अपना योग प्रदान करने लगे। लोग उन व्यक्तियों के चरित्रों को पढ़ने की उत्सुकता में थे जिन्होंने स्वतन्त्रता युद्ध में अपनी जान को न्योछावर कर दिया। पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसे व्यक्तियों के जीवन-चरित्र प्रकाशित करने में सहयोग दिया।

इस काल में आत्मकथा साहित्य की विशेष रूप से प्रगति हुई। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा लिखी जिसका हिन्दी रूपान्तर हरिभाऊ उपाध्याय ने किया। इसके साथ ही डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, भवानीदयाल संन्यासी एवं सत्यदेव परिव्राजक जैसे महापुरुषों ने अपने जीवन-चरित्र लिखे। इन आत्मकथाओं को उत्कृष्ट कोटि की श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें लेखकों ने अपने व्यक्तित्व के सभी पक्षों का तदनुकूल विश्लेषण करते हुए स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो सहयोग दिया, उसमें जो भी उलझनें सामने आईं, उनका वर्णन किया है। इन राजनैतिक व्यक्तियों ने अपनी आत्मकथाओं की रचना तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल होने से ही की थी। जनता यह चाहती थी कि उसे इन महापुरुषों के जीवन पढ़ने को मिलें। इन आत्मकथाओं में उनके आदर्श, उनकी विचारधारा और राष्ट्रीय संग्राम की छाप दृष्टिगोचर होती है।

इस समय में राजनीतिज्ञों ने ही आत्मकथाएँ नहीं लिखीं अपितु साहित्यिक व्यक्तियों ने भी इस दिशा में कम सहयोग नहीं दिया। डॉ० श्यामसुन्दरदास, वियोगी हरि, गणेशप्रसादजी वर्णी एवं राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथाएँ लिखीं। स्फुट रूप से अनेक लेखकों ने अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं को लिखा। [illegible] आत्मकथा सम्बन्धी लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। १९३२ में आत्मकथा अंक 'हंस' पत्रिका में अनेकों लेखकों ने इस प्रकार के [illegible] प्रस्तुत किए। आत्मकथा सम्बन्धी घटनाओं को स्फुट रूप में वर्णन [illegible]

प्रेमचन्द, गुलाबराय, अम्बिकादत्त व्यास, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी का नाम अग्रणीय है। इनके अतिरिक्त मूलचन्द अग्रवाल की आत्मकथा भी इसी समय में प्राप्त होती है। इस प्रकार आत्मकथा साहित्य का स्तर उत्कृष्ट कोटि का हो गया। इसमें उन सभी विशेषताओं एवं गुणों का समावेश हो गया था जो कि एक आत्मकथा लेखक की शैली में होना चाहिए था। भारतेन्दु युग में तो आत्मकथा साहित्य की उपयोगिता का अनुमान लेखकों को हो गया था। द्विवेदी युग में पत्र या जीवनी साहित्य की प्रगति ही होती गई और वर्तमान काल में १९३० से १९५० तक के समय में देश एवं समाज की परिस्थितियों ने देश एवं साहित्य के महान् पुरुषों को अपनी आत्मकथा लिखने के लिए विवश कर दिया था। इस प्रकार आत्मकथा साहित्य का पूर्ण विकास इस युग में लक्षित होता है।

जीवनीपरक साहित्य की अन्य विधाओं में से रेखाचित्र साहित्य की भी प्रगति पर्याप्त मात्रा में हुई है। इस युग के रेखाचित्रकारों में से श्रीराम शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रामवृक्ष बेनीपुरी, देवेन्द्र सत्यार्थी एवं महादेवी वर्मा का नाम प्रमुख है। विषय की दृष्टि से यदि देखा जाय तो चार प्रकार के रेखाचित्र लिखे गए—साहित्यिक लेखकों के रेखाचित्र, राजनैतिक पुरुषों के रेखाचित्र, मानवीय गुणों से सम्पन्न साधारण पुरुषों के रेखाचित्र एवं मानवेतर जड़ या चेतन सम्बन्धी रेखाचित्र। प्रत्येक साहित्य अपने समय की विचारधारा का प्रतिबिम्ब होता है। रेखाचित्र साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस समय के रेखाचित्रकारों ने भी तत्कालीन महापुरुषों को अपने रेखाचित्रों का विषय बनाया। देवेन्द्र सत्यार्थी ने तो बहुत से रेखाचित्रों में बापू की चर्चा की है। यही नहीं, कोई भी रेखाचित्र लेखक ऐसा नहीं था जिसने उस समय के प्रसिद्ध राजनैतिक पुरुषों के विषय में नहीं लिखा। यहाँ कहने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक लेखक अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित था, अपनी रुचि अनुसार उन्होंने रेखाचित्र लिखे। कई रेखाचित्र साधारण से व्यक्तियों के लिखे गए हैं, यह भी समय की माँग थी। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् हमारे संविधान में जात-पात, छुआ-छूत को को हटा दिया। इसका प्रभाव गया सभी लोगों पर पड़ा। उन्होंने उन साधारण पुरुषों व पात्रों का ग्रहण किया जो कि मानवीय गुणों से सम्पन्न थे। महादेवी वर्मा ऐसे रेखाचित्र लिखने में सफल रही हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लेखकों ने ऐसे रेखाचित्र लिखे हैं जिनमें तत्कालीन सामाजिक एवं ग्रामीण अवस्था का पूर्ण चित्र है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने तत्कालीन ग्रामीण अवस्था का चित्र 'माटी की मूरतें' पुस्तक में बहुत अच्छा खींचा है। प्रकाशचन्द्र गुप्त के रेखाचित्र अधिकतर प्राचीन खण्डहरों एवं विशेष स्थानों को लेकर लिखे गए हैं। १९३८ के 'हंस' रेखाचित्र अंक द्वारा भी रेखाचित्र साहित्य का विकास हुआ। इसमें अनेक प्रमुख लेखकों के रेखाचित्र लिखे गए हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस काल में रेखाचित्र साहित्य का विकास भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। विषय एवं शैली की दृष्टि से रेखाचित्र साहित्य

परिपक्व अवस्था तक पहुंच गया । हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ प्रचुर मात्रा में निकलने लगी थीं इसलिए लेखकों ने इसमें अपने रेखाचित्र प्रचुर मात्रा में प्रकाशित करवाने आरम्भ कर दिये थे । लोगों ने लेखकों को साहित्य की इस विधा की प्रगति के लिए प्रेरित किया क्योंकि उनको थोड़े से पृष्ठों में ही किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्र मिल जाता था । पाठकों की समय की बचत तो होती ही थी, इसके साथ पर्याप्त मनोरंजन भी होता था ।

जहां तक जीवनी साहित्य की प्रगति का प्रश्न है, इस काल में जितनी भी जीवनियाँ लिखी गई वे भी समय की मांग के अनुसार ही लिखी गई । राष्ट्रीय, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक पुरुषों के जीवन चरित्र ही अधिक लिखे गये । अधिकतर लेखकों ने उन पुरुषों के जीवन चरित्र लिखे हैं जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र बनाने के लिए विशेष योग दिया । इनमें महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार भगतसिंह एवं राजर्षि टण्डन मुख्य हैं । कुछ ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियाँ भी लिखी गई । साहित्यिक पुरुषों की जीवनियाँ केवल दो ही प्राप्त होती हैं— ब्रजरत्नदास द्वारा लिखित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी एवं शिवरानी देवी की 'प्रेमचन्द : घर में' । इस समय में जीवनी साहित्य अधिक पनप न सका क्योंकि लोगों के हाथों में प्रसिद्ध पुरुषों की आत्मकथाएँ आ गई थीं, उनके पढ़ने में उनकी अधिक रुचि थी ।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने जीवनीपरक साहित्य की उन्नति में विशेष योग दिया है । संस्मरण साहित्य तो पनपा ही इनके कारण है । १९३० से १९५० तक जितने भी संस्मरण लिखे गये उन सभी का विषय भी राष्ट्रीय पुरुषों से सम्बन्धित है, कुछ संस्मरण ही आचार्य द्विवेदी के विषय में लिखे गये हैं । राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह एक ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने अपने संस्मरणों में साधारण पुरुषों के चित्रण द्वारा अपने समय की परिस्थितियों का चित्रण किया है । 'सावनीसमा' में उन्होंने सामन्ती विलासों की ओर संकेत किया है, 'टूटा तारा' में सामाजिक दृष्टि से [illegible] हृदय की दृष्टि से धनी और आन के पक्के व्यक्तियों का चित्रण है । 'सूरदास' में [illegible] के प्रेम का प्रदर्शन है । कुछेक संस्मरण पद्मसिंह शर्मा, श्रीधर पाठक एवं मुन्शी प्रेमचन्द के विषय में भी प्रकाशित हुए । इस समय में बनारसीदास चतुर्वेदी ने [illegible] संस्मरण कला का कुछ संस्मरण लिखकर परिचय दे दिया था परन्तु [illegible] १९५० के पश्चात् ही प्राप्त होता है । इस काल में संस्मरण साहित्य [illegible] द्विवेदी युग से अधिक विकसित हुआ है परन्तु प्रौढ़ावस्था में [illegible] पहुंच पाया । डायरी और पत्र साहित्य की कमी [illegible] इस समय में [illegible] हुई है । [illegible] के पत्र, जो उन्होंने [illegible] में लिखे थे, [illegible] प्राप्त होते हैं । उनमें भी व्यक्तिगत [illegible] चित्रण है ।

१९५० सन् के पश्चात् जीवनीपरक साहित्य की [illegible]

लगी। जीवनी संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, डायरी एवं पत्र साहित्य का विकास प्रचुर मात्रा में लक्षित होता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नये संविधान के निश्चित होने से हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया गया था, इससे हिन्दी लेखकों को बहुत प्रोत्साहन मिला। नेहरूजी की पंचशील की योजना का प्रभाव समस्त साहित्य पर पड़ा। अनेक देशों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। जिन देशों से हमारा दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ था उनके महान् व्यक्तियों के विषय में भी जीवन चरित्र लिखे गये। इसके साथ ही हमारा साहित्य भी उनके साहित्य से प्रभावित हुआ। इन जीवनीपरक साहित्यिक रूपों का आगमन पाश्चात्य साहित्य की ही देन है। इसके विकसित होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि जीवन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बहुत जटिल बन गया था। जनता का अधिक समय जीविकोपार्जन में व्यतीत होने लगा। अधिक काम करने के पश्चात् मनोरंजन की आवश्यकता पड़ी, इसलिए उन्हें ऐसे साहित्य की आवश्यकता थी जो थोड़े समय में पढ़ा जाय और पर्याप्त मनोरंजन हो। ये रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी एवं पत्र साहित्य इसी दृष्टिकोण से लिखे गये। इस युग के प्रसिद्ध जीवनी लेखकों में से राहुल सांकृत्यायन, रांगेयराघव, रामवृक्ष बेनीपुरी, ऋषि जेमिनी कौशिक बरुआ एवं अमृतराय प्रमुख हैं। अमृतराय द्वारा लिखी हुई 'प्रेमचन्द : कलम का सिपाही' जीवनी उत्कृष्ट श्रेणी की जीवनी है। शिवनन्दन सहाय एवं डॉ० श्यामसुन्दरदास के पश्चात् साहित्यिक जीवनी लेखकों में से अमृतराय सर्वश्रेष्ठ जीवनी लेखक हैं। हिन्दी जीवनी साहित्य में यह अपना सर्वश्रेष्ठ स्थान रखती है। इसमें लेखक की शैली भी नवीन ही है। घनश्यामदास बिड़ला के संस्मरण अधिकतर गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त स्मृति ग्रन्थों एवं अभिनन्दन ग्रंथों द्वारा ही इस विधा का विशेष विकास हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं विषय और शैली की दृष्टि से इस काल का संस्मरण साहित्य विशेष रूप से प्रफुल्लित हुआ।

रेखाचित्र साहित्य की प्रगति भी इस काल में कम नहीं हुई। इस समय के प्रसिद्ध रेखाचित्रकार अयोध्याप्रसाद गोयलीय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, बनारसीदास चतुर्वेदी, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन एवं प्रेमनारायण टण्डन हैं। इनके द्वारा लिखे हुए रेखाचित्र उच्चकोटि के हैं। विषय और शैली की परिपक्वता इनमें दृष्टिगोचर होती है।

डायरी साहित्य का विकास हिन्दी साहित्य के सभी कालों की अपेक्षा इन १४ वर्षों में ही हुआ है यद्यपि इसका थोड़ा-बहुत रूप हम भारतेन्दु काल में पाते हैं। इस काल में सुन्दरलाल त्रिपाठी, डा० वीरेन्द्र वर्मा एवं गजाननमाधव मुक्तिबोध ने अपनी डायरियाँ लिखी हैं। डायरी लिखने की कुछ प्रथा ही चल पड़ी है। कई लेखकों ने अपनी डायरी के पन्ने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाये हैं। कुछ लेखकों ने अपने जीवन के कुछ ही दिनों का चित्रण अपनी डायरी में किया है। इससे हमें उनके

सम्पूर्ण जीवन का अनुभव नहीं होता। धर्मवीर भारती, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा एवं भगवतीचरण वर्मा का नाम इनमें आता है। १९४८ सन् तक जो कुछ भी हमें डायरी साहित्य के विषय में प्राप्त होता है वह न के समान ही है। केवल १९४२ में बुकसेलर रावी ने जो प्रयास किया था उसे कुछ सफल कहा जा सकता है। १९५८ सन् के पश्चात् ही हमें इन साहित्यिक व्यक्तियों की पूर्ण जीवनियाँ प्राप्त होती हैं। जहाँ तक आत्मकथा साहित्य के विकास का प्रश्न है इन चौदह वर्षों में तीन आत्म-कथाएँ लिखी गई हैं जिनके लेखक कालिदास कपूर, संतराम बी० ए० एवं आचार्य चतुरसेन शास्त्री हैं। इनमें शास्त्रीजी की आत्मकहानी सर्वश्रेष्ठ है। इसमें लेखक ने अपने जीवन के सभी पक्षों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। इसके अतिरिक्त स्फुट रूप में कुछ लेखकों ने आत्मकथा सम्बन्धी लेख लिखे हैं। महादेवी वर्मा, पंत, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, मैथिलीशरण गुप्त विशेष रूप से अग्रणीय हैं।

इस समय में संस्मरण, रेखाचित्र एवं डायरी साहित्य का विकास अधिक दृष्टि-गोचर होता है। संस्मरण लेखकों में शांतिप्रिय द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, किशोरी-दास वाजपेयी, जैनेन्द्र, घनश्यामदास बिड़ला, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क का नाम तो लिया ही जाता है। इनके अतिरिक्त कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पांडेय बेचनशर्मा उग्र, ब्रजमोहन व्यास एवं रामवृक्ष बेनीपुरी का कम सहयोग नहीं है। विषय और शैली की दृष्टि से इस साहित्य में परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है। कुछ लेखकों ने तो अपनी आत्मकथा ही इस संस्मरणात्मक शैली में लिखी है। इस प्रकार का प्रयोग शान्तिप्रिय द्विवेदी एवं किशोरीदास वाजपेयी ने किया है। पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र ने भी अपनी आत्मकथा संस्मरणात्मक शैली में लिखी है। अन्य व्यक्तियों के जीवनों के विषय में जो संस्मरण लिखे हैं उनमें सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण करने वालों में ब्रजमोहन व्यास का प्रयास सराहनीय है। इन्होंने बालकृष्ण भट्ट का जीवन चरित्र इसी शैली में लिखा है। यशपाल के संस्मरण भी हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इनमें लेखक ने तत्कालीन परिस्थितियों का चित्र खींचते हुए अपने जीवन का वर्णन इसी शैली में किया है।

इसके पश्चात् डायरियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें [illegible] शर्मा की [illegible] डायरी' यद्यपि इनके सम्पूर्ण जीवन का पता नहीं देती फिर भी [illegible] सराहनीय कार्य है। अभी तक हिन्दी साहित्य में कोई भी डायरी [illegible] जिसमें लेखक के सम्पूर्ण जीवन का उल्लेख हो। [illegible] डायरियाँ तो मिल जाती हैं। [illegible]

[illegible]

जिससे लेखकों को पत्र साहित्य की उपयोगिता का अनुमान हो जाय और वह अपने पत्रों को आगामी साहित्यिकों के लिए सम्भालकर रखें। अन्य भाषाओं के पत्र साहित्य का अनुवाद भी इस काल में किया गया। पत्र साहित्य का जो रूप हमें द्विवेदी काल में देखने को मिलता है वह इस काल में नहीं।

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि विशिष्ट समय में जीवनीपरक साहित्य की किस विधा का विकास हुआ और क्यों हुआ। समय और परिस्थितियों के अनुकूल ही साहित्य की रचना होती हैं, प्रत्येक साहित्य अपने युग की विचारधारा का प्रतिबिम्ब होता है—यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है।

साहित्येतिहासों के आलोक में जीवनीपरक साहित्य का महत्व

साहित्य अपने युग की विचारधारा का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य में लेखक अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए उनका तत्कालीन साहित्य पर प्रभाव दिखाता है। इसके पश्चात् वह साहित्य की विशेषताओं का उल्लेख जहाँ करता है वहाँ उस काल के उन विशेषताओं से युक्त प्रमुख लेखकों का परिचय पाठकों को करवा देता है। लेखकों का वह परिचय उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का ही पाठकों को ज्ञान करवाता है, जीवनीपरक साहित्य के लेखक की भाँति वह प्रत्येक लेखक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण अपने साहित्य में नहीं करता। जीवनीपरक साहित्य तो एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। मनुष्य का व्यक्तित्व मानसिक क्रियाओं का परिणाम होता है। वास्तव में मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन मन की क्रियाओं का निर्माण है। इसीलिए व्यक्तित्व का वास्तविक चित्र समझने के लिए मन का विश्लेषण आवश्यक है। जीवनीपरक साहित्य की यह सबसे बड़ी विशेषता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का लेखक जीवन के इन तत्वों की ओर ध्यान नहीं देता, उसका कार्य तो तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उस युग की साहित्यिक धाराओं की विशेषताओं का उल्लेख एवं उन धाराओं के लेखकों का वर्णन है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास जितने भी अभी तक प्रकाशित हुए हैं उनमें जीवनीपरक साहित्य के तत्वों का समावेश नहीं हो पाया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास अभी तक जितने प्रकाशित हुए हैं उनमें गार्सा दतासी, शिवसिंह सेंगर और ग्रियर्सन के इतिहास प्राचीन हैं। गार्सा दतासी के इतिहास का अनुवाद लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय ने किया। इस इतिहास के अनुशीलन से भी ज्ञात है कि लेखक ने जिन कवियों का उल्लेख अपने इतिहास में किया है उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर विचार न करके लेखक ने वंश, जन्मस्थान, जन्मतिथि का उल्लेख तो अवश्य किया है परन्तु अधिक ध्यान इनकी कृतियों की ओर दिया है। इस प्रकार इस साहित्य में भी जीवनीपरक तत्वों का समावेश नहीं आ पाया। हिन्दी साहित्य के प्रथम लेखक शिवसिंह सेंगर की पुस्तक 'शिवसिंह सरो[illegible] जिन कवियों का परिचय दिया गया है वह भी अपूर्ण है। उनसे पाठक को

है कि देश की परिस्थितियों के भिन्न होने से ही कवियों के व्यक्तित्व में भी अन्तर आ जाता है। इन्होंने जिन कवियों के जीवन-परिचय देने का प्रयास किया है उनके वंश, जन्मस्थान एवं साहित्यिक व्यक्तित्व को ही स्पर्श किया है, किसी भी ऐसी घटना का वर्णन नहीं जिसमें किसी उनके व्यक्तित्व की गोपनीय घटना का वर्णन हो। ग्रियर्सन के साहित्य के इतिहास में भी इतिहास की प्रवृत्तियों की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

इनके पश्चात् मिश्रबन्धुओं द्वारा लिखा हुआ हिन्दी साहित्य का इतिहास 'मिश्रबन्धुविनोद' नाम से प्रकाशित हुआ। इसके तीन भाग मिलते हैं। तीनों में जिन भी कवियों और लेखकों के विषय में इन्होंने लिखा है वह पन्द्रह-पन्द्रह पंक्तियों से अधिक परिचय नहीं है। केवल इनकी साहित्यिक कृतियों के विषय में, वह भी लेखक व कवि के व्यक्तिन्व की महानता को दृष्टि में रखते हुए, कुछ अधिक लिख पाए हैं। इसलिए इनके साहित्य में भी जीवनीपरक साहित्य की गहराई नहीं है। इन चारों इतिहासों में अतिप्राकृत घटनाओं और चमत्कारिक अनुभूतियों का अनपेक्षित संकलन करके कवि परिचय के कलेवर को बढ़ा दिया गया है। बाद के दोनों इतिहासों में विवरण की पूर्णता और ऐतिहासिकता का भी ध्यान रक्खा गया है। उपलब्ध सामग्री के वैज्ञानिक वर्गीकरण की प्रवृत्ति भी उक्त ग्रन्थों में नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त इनमें कवियों की आलोचना और प्रवृत्तियों का संकेत तो यत्र तत्र भले ही मिल जाय परन्तु उस व्यापक एकसूत्रता का अभाव है।

इनके पश्चात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास प्रकाशित होता है। शुक्लजी ने आरम्भ में ही यह सिद्ध किया है कि 'साहित्य जनता की विचारधारा का प्रतिबिम्ब होता है।' इस उक्ति को उन्होंने समस्त साहित्य के इतिहास का विवेचन करते हुए सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी साहित्य में जितने भी प्रकार का साहित्य प्राप्त होता है वह समयानुकूल रचा गया। इसके पश्चात् इन्होंने प्रवृत्तियों के विवेचन का जहाँ वर्णन किया है वहाँ तत्कालीन प्रसिद्ध कवियों और लेखकों का भी वर्णन किया है। शुक्लजी ने अधिकतर इनके सामाजिक व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डाला है। उनके व्यक्तित्व को तत्कालीन समय से प्रभावित दिखाते हुए उनकी साहित्यिक कृतियों के विषय में विचार रक्खे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शुक्लजी के इतिहास में भी कवियों एवं लेखकों के जीवन चरित्रों को इस ढंग से नहीं लिखा गया जिससे उनकी गुह्य एवं गोपनीय बातों का विश्लेपण हो।

डॉ० श्यामसुन्दरदास ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में हिन्दी की प्रमुख धाराओं, उनके विकास और विस्तार का निरूपण किया है। सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के साथ-साथ इन्होंने मुख्य कवियों का वर्णन किया है। इनके परिचय में लेखक ने इनके व्यक्तित्व को समाज से प्रभावित दिखला कर उनकी साहित्यिक कृतियों का उल्लेख कर दिया है। इससे आगे नहीं बढ़े, आवश्यकतानुसार उनकी कृतियों के उदाहरण दिए हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास' में समय की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए हिन्दी भाषा की प्रगति की ओर अधिक ध्यान दिया है। जिन कवियों और लेखकों का इन्होंने नामोल्लेख किया है उनके साहित्यिक पक्ष पर ही प्रकाश डाला है। उनकी कृतियों में से उदाहरण देकर उनकी कला-कुशलता का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त और कुछ इसमें नहीं है। सूर्यकान्त शास्त्री ने भी 'हिन्दी साहित्य के विवेचनात्मक इतिहास' में महान कवियों को समझने की अच्छी चेष्टा की है। इस साहित्य में लेखक ने अधिकतर अंग्रेजी साहित्य के भावों का प्रमाण देते हुए हिन्दी साहित्य को समझाने की चेष्टा की है। रमाशंकर शुक्ल रसाल ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में हिन्दी साहित्य की सभी ज्ञातव्य बातों का परिचय दिया है। लेखक ने उन्हें वैज्ञानिक ढंग से नहीं समझाया। कवियों एवं लेखकों का वर्णन इसने प्राप्त सामग्री के आधार पर किया, इसका अपना कोई निर्णय नहीं है। पंडित कृष्णशंकर शुक्ल एम० ए० ने अपने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास' में जिन लेखकों एवं कवियों का वर्णन किया उनके व्यक्तित्व की ज्ञातव्य बातें लिख दी हैं, जीवन परिचय देने में इनका कोई विशेष सफल प्रयास नहीं है।

संवत् १९९३ में श्री गौरीशंकर सत्येन्द्र ने 'साहित्य की झाँकी' पुस्तक प्रस्तुत की। इस पुस्तक में सात निबन्ध हैं। कहीं भी किसी कवि के जीवन पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है, साधारण-सा वर्णन है।

संवत् १९९४ में पंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित 'पुरातत्त्व निबन्धावली' पुस्तक प्राप्त होती है। इस पुस्तक में लेखक ने महायान बौद्धधर्म की उत्पत्ति, वज्रयान और प्राचीन चौरासी सिद्ध, हिन्दी के प्राचीनतम कवि और उनकी कविताओं पर प्रकाश डाला है। यद्यपि चौरासी सिद्धों का वर्णन इन्होंने उनके चित्रों के साथ दिया है फिर भी उनके व्यक्तिगत जीवन का विश्लेषण यह अपनी पुस्तक में न कर सके।

संवत् १९९६ में डॉ० इन्द्रनाथ मदान द्वारा लिखित 'माडर्न हिन्दी लिटरेचर' पुस्तक प्राप्त होती है। इसमें इन्होंने संक्षिप्त रूप से आधुनिक हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन किया है। कहीं भी किसी विशेष कवि व लेखक के जीवन चरित्र को विस्तारपूर्वक नहीं लिखा जिससे कि उनके व्यक्तित्व का ज्ञान पाठक को हो जाय। यही बात मोतीलाल मेनारिया के 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' में, हीरालाल जैन की 'जैन इतिहास की पूर्व पीठिका और हमारा अभ्युदान' में, श्री ब्रजरत्नदास की 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य के इतिहास' में एवं भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र के 'संत साहित्य' में देखी जाती है। साहित्य के विशेषकाल के अध्ययन में भी जीवनीपरक साहित्य के तत्त्व दृष्टिगोचर नहीं होते। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में जिन कवियों का परिचय दिया है वह प्राप्त सामग्री के आधार पर दिया है। अधिकतर उन्होंने उनके जन्म, जन्मतिथि एवं साहित्यिक कृतियों के उदाहरण देकर उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है। डॉ० [illegible] लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के इतिहासों में भी आधुनिक काल की प्रवृत्तियों का [illegible]

हुए उस काल के कवियों का नामोल्लेख किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के साहित्य में भी जीवनीपरक महत्ता देखने को नहीं मिलती है। माताप्रसाद गुप्त ने तो अपनी 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' में कवियों एवं लेखकों की मात्र सूची ही दी है। उन्हें जीवन-चरित्र का वर्णन तो क्या करना था, इन सभी इतिहासों के पश्चात् भवानीशंकर त्रिवेदी एवं डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का इतिहास हमारे सम्मुख आता है। त्रिवेदीजी ने तो अपने साहित्य में कवियों का साधारण-सा परिचय देकर उनकी कृतियों में से चुनकर उदाहरण दिए हैं परन्तु डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का इस दिशा में सफल प्रयोग है। द्विवेदीजी ने साहित्य की प्रवृत्तियों के विषय में तो लिखा ही है परन्तु कवियों और लेखकों का परिचय वह जितना अधिक दे सकते थे दिया है। जीवन परिचय देने में उन्हें जो भी प्रमाण मिल सके उन सभी के आधार पर इन्होंने उनके चरित्र को आँका है।

इस तरह गार्सा द तासी के इतिहास से लेकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तक के इतिहास के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इतिहास में लेखक का उद्देश्य अपने समय की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उसका प्रभाव साहित्य पर दिखलाना है और उस युग के प्रसिद्ध लेखक कवि एवं आलोचकों का वर्णन करते हुए उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की ओर प्रकाश डालना है। इनकी सीमा वंश, जन्मतिथि, जन्मस्थान तक ही सीमित रही है। व्यक्तिगत जीवन का पूर्णतया विश्लेषण यह नहीं कर सके हैं, यहाँ तक कि जिन लेखकों ने किसी विशेष काल के विषय में ही अपनी लेखनी उठायी है उनमें भी वह व्यक्ति का चित्रण पूर्ण नहीं दे पाए हैं। इसका कारण यह है कि इतिहासकार का कर्त्तव्य तो देश की परिस्थितियों का वर्णन करना होता है और उसका प्रभाव साहित्य पर दिखाना होता है। देश उसमें अंगी रहता है व्यक्ति उसमें अंग होकर आता है। जीवनीपरक साहित्य में प्रधानता व्यक्ति की होती है देश की घटनाएँ उसकी अनुवर्तिनी होकर चलती हैं। इसमें मुख्य लक्ष्य नायक के चरित्र का चित्रण होता है। देश एवं साहित्य की परिस्थितियों का वर्णन तो उसके चरित्र को उभारने के लिए किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास से जीवनी-परक साहित्य का इतना ही सम्बन्ध है कि दोनों में घटनाओं की सत्यता होती है।

जीवनीपरक साहित्य के आधार पर साहित्य के इतिहास में नए तत्त्वों एवं नए दृष्टिकोणों का समावेश हो सकता है। जीवनीपरक साहित्य में रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, पत्र एवं आत्मकथा साहित्य का समावेश है। इतिहासकार अपने साहित्य में जिस कवि या लेखक के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करता है वह जनश्रुतियों एवं किवदंतियों पर अधिकतर आश्रित होते हैं। किसी भी व्यक्ति के विषय में जो भी लिखा जाता है यह आवश्यक नहीं होता कि वह पूर्णतया सत्य ही हो परन्तु जीवनपरक साहित्य का लेखक नायक स्वयं होता है इसलिए उसके विषय में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं होता। जीवनीपरक साहित्य में लेखक अपने विचारों एवं व्यक्तित्व का विवेचन ही नहीं करता अपितु उसमें गुण-दोषों का विश्लेषण भी करता है इसलिए

उनके पढ़ने से बहुत लोगों की भ्रांतियाँ दूर होती हैं और साहित्य के इतिहास में नवीन तत्त्वों का समावेश होता है। लेखक अपने व्यक्तित्व की स्वयं आलोचना करता है, वह अपने समय की परिस्थितियों का स्वयं वर्णन करता है। वर्णन ही नहीं अपितु विवेचन करता है। इसलिए हम देखते हैं कि जीवनीपरक साहित्य से इतिहास में नए दृष्टिकोण एवं नए तत्त्वों का समावेश हो सकता है।

उपसंहार

हिन्दी में जीवनीपरक साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इसमें केवल साहित्यिक व्यक्तियों के ही जीवन की झाँकी नहीं प्राप्त होती, प्रत्युत साहित्य से भिन्न व्यक्तियों के विषय में भी प्रचुर मात्रा में सामग्री मिलती है। साहित्यिक व्यक्तियों ने जहाँ अपने जीवन के विषय में लिखा है और अन्य साहित्यप्रेमियों के जीवन चरित्रों को चित्रित किया है, वहाँ उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक पुरुषों पर भी लेखनी उठाई है। महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय, भगतसिंह, डा० राजेन्द्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू एवं राजा राममोहनराय की जीवनियाँ इस बात की प्रतीक हैं कि हिन्दी में जीवनी-साहित्य में अनेक उत्कृष्ट श्रेणी के राष्ट्रीय जीवन चरित्र भी लिखे गए हैं। इनके अतिरिक्त गंगाप्रसाद मेहता कृत 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य', राहुल सांकृत्यायन कृत 'अकबर' एवं लाला लाजपतराय द्वारा लिखी गई 'छत्रपति शिवाजी' आदि जीवनियाँ इस बात की प्रतीक हैं कि हिन्दी जीवनीपरक साहित्य में ऐतिहासिक वीर पुरुषों के जीवन चरित्र भी प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द आदि जैसे समाज सुधारकों के जीवन-चरित्रों की भी कमी नहीं है। धार्मिक व्यक्तियों के जीवन-चरित्र तो कई मिलते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जीवनीपरक साहित्य में जहाँ शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखी हुई 'गोस्वामी तुलसीदास', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'; श्यामसुन्दरदास एवं ब्रजरत्नदास द्वारा लिखी हुई 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की जीवनियाँ एवं अमृतराय की 'प्रेमचन्द:कलम का सिपाही' जैसी साहित्यिक जीवनियाँ प्राप्त होती है, वहाँ साहित्यिक व्यक्तियों के जीवन-चरित्र भी प्राप्त होते हैं। यही बात आत्मकथा-साहित्य एवं जीवनीपरक साहित्य की अन्य विधाओं में भी पाई जाती है।

अन्य महत्वपूर्ण बात इस साहित्य में यह भी देखने को मिलती है कि इनमें कुछ ऐसे व्यक्तियों को लेखकों ने अपना नायक चुना है जो उक्त सभी महान व्यक्तियों से भिन्न हैं। लेखक को उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व ने पूर्णतया प्रभावित किया है। ये व्यक्ति साधारण होते हुए भी अपने मानवीय गुणों के कारण असाधारण से दिखाई पड़ रहे हैं। ऐसे लेखकों में महादेवी वर्मा, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी एवं प्रेमनारायण टंडन हैं जिन्होंने लोकजनों को भी चुना है। ऐसे साधारण जन न तो समाज में प्रसिद्ध होते हैं और न जनता में, लेकिन लेखक के सम्पर्क में आने पर उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं का जब लेखक को अनुभव हो जाता है

तब वह उन्हें अपना नायक बना लेता है। महादेवी ने लछमा, रधिया आदि का जो चित्रण किया है वह इसी बात का द्योतक है। राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह ने भी 'सावनीसमां', 'टूटा तारा' एवं 'सूरदास' शीर्षक पुस्तकों में ऐसे ही व्यक्तियों को नायक चुना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी में जीवनीपरक साहित्य के लेखकों ने जहाँ राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक व्यक्तियों को नायक चुना, वहाँ इन्होंने एक विलक्षण प्रकार के लोकजनों को भी अपना नायक चुना है जिनके व्यक्तित्व इन सभी प्रकार के व्यक्तियों से भिन्न हैं।

जीवनीपरक साहित्य पाठक और लेखक के बीच एक स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित करता है। पाठक अपने साहित्यकार के प्रति प्रेम और सहृदयता की भावना रखने लगते हैं। दोनों का पारस्परिक दुराव हट जाता है जिसके बजाय एक नितान्त वैयक्तिक स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। पाठक पढ़ते-पढ़ते यह भूल जाता है कि यह किसी अन्य व्यक्ति की जीवनी है क्योंकि उसकी भावनाओं का साक्षात्कार लेखक से हो जाता है, उसके कष्टों को वह अपने कष्ट समझने लगता है और उसके सुखों को वह अपने सुख समझता है, अर्थात् वह उसके सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख समझने लगता है। वह 'जीवन-रस' में इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने आपको भूल जाता है कि मैं पाठक हूँ। यही इस साहित्य की विशेषता है। इस प्रकार जीवनीपरक साहित्य में लेखक और पाठक का एक स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

इस जीवनीपरक साहित्य का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि हमें किसी भी साहित्यकार की कृतियों को सहजतः समझने में सुविधा हो जाती है। जब तक हम उसके जीवन का अनुशीलन न करें तब तक उसकी साहित्यिक रचनाओं को समझना हमारे लिए कठिन हो जाता है। साहित्यकार की प्रत्येक कृति उसके जीवन के उन क्षणों में लिखी हुई होती है। इसलिए जब तक हम उसके जीवन के उन क्षणों का अध्ययन नहीं कर लेते तब तक उसको पूर्ण रूप से समझ नहीं सकेंगे। इस प्रकार जीवनीपरक साहित्य के अध्ययन से हम साहित्यकार की सृजनात्मक साहित्यिक कृतियों को भी समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि 'प्रेमचन्द : कलम का सिपाही' शीर्षक जीवन चरित्र पढ़ लिया जाय, तो हम उनकी समस्त कृतियों को बड़ी आसानी से समझ सकते हैं। उन्होंने किस उपन्यास को कब लिखा, कैसे वातावरण में लिखा, उनके लिखने का क्या उद्देश्य था और उसका उसके जीवन से क्या सम्बन्ध है—इन सभी बातों का ज्ञान हमें उनके जीवन-चरित्र के अध्ययन से हो जाता है। यही बात सभी लेखकों के विषय में कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त और सबसे महत्वपूर्ण बात यह देखी जाती है कि पाठक को यह अनुभव हो जाता है कि उसकी रुचियाँ साहित्य-कार के साथ कहाँ तक मिलती हैं। यदि पाठक की रुचियाँ लेखक के [illegible] मात्रा में मिल जाती हैं तो उसको अध्ययन का और भी आनन्द आने लगता है। [illegible] पाठक और लेखक में एक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

विशेष रूप से पत्र, डायरियाँ और आत्मकथाएँ पाठक को साहित्यकार के जीवन के सभी पक्षों का, उसके प्रेरणा स्रोतों का, ज्ञान करा देती हैं। पाठक को यह पता चल जाता है कि लेखक के जीवन के प्रेरणा स्रोत कौन-कौन से हैं और इसके साथ ही वह उसके मानसिक विकास से भली प्रकार परिचित हो जाता है। इसके व्यक्तित्व की सभी विशेषताएँ उसे दृष्टिगोचर होने लगती हैं। वह लेखक के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण-दोषों को भली प्रकार जानने लगता है। उसे यह पता चल जाता है कि लेखक का जीवन किन-किन व्यक्तियों, आन्दोलनों, परिस्थितियो आदि से प्रभावित हुआ है। इस प्रकार पाठक लेखक के मानसिक एवं भावात्मक जीवन से भलीभाँति परिचित हो जाता है।

जीवनीपरक साहित्य द्वारा हिन्दी साहित्य में—इतिहास लेखन शास्त्र (Historography) के क्षेत्र में एक नया परिवर्तन आ सकता है। जिन साहित्य की विशेषताओं को हम साहित्यकारों की कृतियों के अध्ययन से जान सकते हैं अर्थात् जिनका अनुमान हम उनकी कृतियों से करते हैं, उन सभी का वर्णन हमें उनके हाथों से लिखा हुआ प्राप्त होता है, जो कि तत्कालीन विशेषताओं को प्रामाणिक सत्य के रूप में घोषित करेगा। इससे स्पष्ट है कि हम कृतियों की अपेक्षा कृतिकारों के माध्यम से साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास को समझने का एक नया दृष्टिकोण पा सकते हैं। इस दृष्टि से जो भी इतिहास लिखा जाएगा वह बिल्कुल ठीक होगा।

इस प्रकार के साहित्य के द्वारा हम विशेष व्यक्ति द्वारा वर्णित इतिहास को समझ सकते हैं। इसके साथ ही हमें यह पता चल सकता है कि अमुक व्यक्ति का तत्का-लीन परिस्थितियों में क्या स्थान है, वह कहाँ तक उससे प्रभावित है और कहाँ तक उसका व्यक्तित्व उन परिस्थितियों से पृथक् है। इसके दो लाभ होते हैं : एक तो व्यक्ति के जीवन-चरित्र का अनुमान हो सकता है; और दूसरा पाठक को तत्कालीन इतिहास-विषयक जानकारी होने की अधिकाधिक सम्भावनाएँ प्राप्त होती हैं।

इस प्रकार के साहित्य द्वारा लेखक साहित्य और समाज का सम्बन्ध, एवं साहित्य और इतिहास का सम्बन्ध भी प्रकट कर सकता है। इससे पाठक को यह पता चल सकता है कि साहित्य और समाज का कहाँ तक सम्बन्ध तत्कालीन लेखकों ने निभाया है तथा किन-किन लेखकों ने समाज के प्रतिकूल होकर अपने जीवन को अपनाया है। इसके अतिरिक्त यह भी अनुभव हो सकता है कि साहित्य से समाज प्रभावित हुआ है अथवा समाज से साहित्य। विज्ञान एवं इतिहास का साहित्य में क्या स्थान रहा है ? क्या साहित्यकार वैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रभावित हुआ है ? यदि हुआ है तो कहाँ तक हुआ है ? इन सभी बातों की सम्भावना हमें इस प्रकार के साहित्य से प्राप्त हो सकती है।

इसके अतिरिक्त इस जीवनीपरक साहित्य के प्रकाश में आने से साहित्यिक आलोचना में अधिकाधिक मनोवैज्ञानिक गहराई, सामाजिक गहनता, कृतियों की प्रामाणिकता तथा यथार्थता का स्वस्थ विकास हो सकता है। अस्तु।

पुस्तकालयों की सूची

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
२. मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली
३. दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय
४. पंजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय
५. सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला
६. पंजाबी विश्वविद्यालय पुस्तकालय
७. दिल्ली पब्लिक पुस्तकालय
८. ब्रिटिश कौंसिल लाइब्रेरी, देहली

चुनी हुई पत्र-पत्रिकाओं की सूची

१. अजन्ता	१९४९ ई० से १९५५ ई० तक
२. अग्रवाल सन्देश	१९४४ ई० से ९५१ ई० तक
३. अग्रदूत	१९५० ई० से १९५२ ई० तक
४. अखंड ज्योति	१९४० ई०
५. अग्रवाल	१९२२ वि० से १९३६ ई० तक
६. अवन्तिका	१९५२ ई० से १९६३ ई० तक
७. आजकल	१९४७ ई० से १९६४ सन् तक
८. आकाशवाणी प्रसारिका	१९५४ ई० से १९५६ सन् तक
९. आलोचना	
१०. कल्पना	१९५० सन् से १९६४ सन् तक
११. कादम्बिनी	१९६१ सन् से १९६४ सन् तक
१२. चांद	१९२३ सन् से १९४५ सन् तक
१३. निकष	१९५५ सन् से १९५७ सन् तक
१४. नया समाज	१९४८ सन् से १९५८ सन् तक
१५. नागरी प्रचारिणी पत्रिका	
१६. प्रतिभा	सं० १९७४ से १९७७ सं० तक
१७. प्रभा	१९६० से १९२४ ई० तक
१८. प्रतीक	१९४९ सन् से १९५१ सन् तक
१९. प्रसारिका	१९५४ सन् से १९५६ सन् तक
२०. भारतीय साहित्य	१९५६ सन् से १९५७ सन् तक
२१. माधुरी	१९२३ सन् से १९४८ सन् तक
२२. माया	१९४० सन् से १९६३ सन् तक

२३. युग चेतना — १९५६ सन् से १९५८ सन् तक
२४. राष्ट्र भारती — १९५६ सन् से १९६२ सन् तक
२५. विश्वमित्र — १९३२ सन् से १९४६ सन् तक
२६. वीणा — १९५७ सन् से १९६१ सन् नक
२७. विशाल भारत — १९२८ सनु से १९६४ सन् तक
२८. विद्या विनोद — १९०१ सन् से १९०२ सन् तक
२९ सरस्वती — १९०० सन् से १९६४ सन् तक
३०. साहित्य — २००७ सं० से १९५० ई० तक
३१. सम्मेलन पत्रिका
३२. साहित्य सन्देश — १९४९ सन् से १९६२ सन् तक
३३. सुधा — १९२६ सन् से १९३४ सन् तक
३४. हंस — १९३२ सन् से १९५० सन् तक
३५. हिन्दुस्तानी — १९३१ सन् से १९६० सन् तक
३६. ज्ञानोदय — १९५२ सन् से १९६४ सन् तक

चुनी हुई पुस्तकों की सूची

१. आत्मकथा — महात्मा गांधी
२. आत्मकथा — डॉ० राजेन्द्रप्रसाद
३. अमिट रेखाएँ — सत्यवती मल्लिक
४. अरे यायावर रहेगा याद — सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
५. अर्थपिशाच — शील
६. अकबर — रांगेयराघव
७. अपनी खबर — पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'
८. अश्क एक रंगीन व्यक्तित्व — कौशल्या अश्क
९. आचार्य द्विवेदी — सम्पादिका निर्मल तलवार
१०. आत्मचरित चम्पू — अक्षयवट मिश्र
११. आलोचना उसके सिद्धान्त — डॉ० सोमनाथ गुप्त
१२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ० कृष्णलाल
१३. वही — डॉ० भोलानाथ तिवारी
१४. वही — डॉ० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय
१५. वही — पं० कृष्णशंकर शुक्ल
१६. आधे रास्ते — कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

१७. अतीत के चलचित्र	महादेवी
१८. एक आत्मकथा	देवीदत्त शुक्ल
१९. एक पत्रकार की आत्मकथा	मूलचन्द्र अग्रवाल
२०. एक युग एक प्रतीक	देवेन्द्र सत्यार्थी
२१. एक क्रान्तिकारी के संस्मरण	मनमोहन गुप्त
२२. एक साहित्यिक की डायरी	गजाननमाधव मुक्तिबोध
२३. काव्य के रूप	गुलाबराय
२४. कुछ देखा कुछ सुना	घनश्यामदास बिड़ला
२५. गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय
२६. गांधीजी की छत्रछाया में	घनश्यामदास बिड़ला
२७. गुप्त निबन्धावली	बालमुकुन्द गुप्त
२८. गोस्वामी तुलसीदास	शिवनन्दन सहाय
२९. गेहूँ और गुलाब	रामवृक्ष बेनीपुरी
३०. घुमक्कड़ स्वामी	राहुल सांकृत्यायन
३१. चरितावली	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
३२. चरित चर्चा	महावीरप्रसाद द्विवेदी
३३. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य	गंगाप्रसाद मेहता
३४. जीवन स्मृतियाँ	सं० क्षेमेन्द्र सुमन
३५. जैसा हमने देखा	सं० क्षेमेन्द्र सुमन
३६. जिन्दगी मुस्कराई	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
३७. टूटा तारा	राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह
३८. ठेले पर हिमालय	धर्मवीर भारती
३९. दीप जले शंख बजे	कन्हैयालाल मिश्र
४०. दैनन्दिनी	सुन्दरलाल त्रिपाठी
४१. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र	सं० बैजनाथसिंह विनोद
४२. द्विवेदी पत्रावली	सं० बैजनाथसिंह विनोद
४३. दो धारा	उपेन्द्रनाथ अश्क
४४. नक्षत्रों की छाया में	कृष्णदत्त भट्ट
४५. नये पुराने झरोखे	बच्चन
४६. नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन-चरित्र	रमाशंकर व्यास
४७. पद्मपराग	पद्मसिंह शर्मा
४८. पुरानी स्मृतियाँ	प्रकाशचन्द्र गुप्त

४९. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही	अमृतराय
५०. पद्मसिंह शर्मा के पत्र	सं० बनारसीदास चतुर्वेदी
५१. प्रेमचन्द चिट्ठी-पत्री भाग-१	
५२. प्रेमचन्द चिट्ठी-पत्री भाग-२	
५३. पुरातत्त्व निबन्धावली	राहुल सांकृत्यायन
५४. परिव्राजक की प्रजा	शान्तिप्रिय द्विवेदी
५५. पथचिह्न	शान्तिप्रिय द्विवेदी
५६. पांडेय स्मृति-ग्रन्थ	सं० प्रेमनारायण टंडन
५७. प्रेमचन्द स्मृति-ग्रन्थ	
५८. प्रेमचन्द : घर में	शिवरानी देवी
५९. प्रवासी की आत्मकथा	भवानीदयाल संन्यासी
६०. बालमुकुन्द गुप्त : जीवन और साहित्य	डॉ० नत्थनसिंह
६१. बादशाह दर्पण	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
६२. बन्दी की चेतना	कमलापति त्रिपाठी
६३. बालकृष्ण भट्ट (संस्मरणों में जीवन)	ब्रजमोहन व्यास
६४. भारतेन्दु ग्रन्थावली तीसरा भाग	ब्रजरत्नदास
६५. भारतेन्दु युग	डॉ० रामविलास शर्मा
६६. भारतेन्दु साहित्य	रामगोपालसिंह चौहान
६७. भारतेन्दु की विचारधारा	लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय
६८. भारतेन्दु के निबन्ध	संग्रहकर्त्ता और सम्पादक केसरीनारायण शुक्ल
६९. भूले हुए चेहरे	कन्हैयालाल मिश्र
७०. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	शिवनन्दन सहाय
७१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डॉ० श्यामसुन्दरदास
७२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	ब्रजरत्नदास
७३. मेरी असफलताएँ	गुलाबराय
७४. मिश्रबन्धु विनोद	मिश्र बन्धु
७५. मेरे निबन्ध (जीवन और जगत)	गुलाबराय
७६. मेरी कहानी	नेहरू
७७. मेरा जीवन-प्रवाह	वियोगी हरि
७८. मेरी जीवन-यात्रा	राहुल सांकृत्यायन
७९. मुदर्रिस की रामकहानी	कालिदास कपूर
८०. मेरे जीवन के अनुभव	संतराम बी० ए०

पुस्तक	लेखक
८१. मीराबाई	कार्त्तिकप्रसाद खत्री
८२. माखनलाल चतुर्वेदी	ऋषि जैमिनी बरुआ
८३. मेरी कालिज डायरी	धीरेन्द्र वर्मा
८४. माडर्न हिन्दी लिट्रेचर	डा० मदान
८५. मंटो मेरा दुश्मन	अश्क
८६. मैं इनका ऋणी हूँ	इन्द्रविद्यावाचस्पति
८७. मील के पत्थर	रामवृक्ष बेनीपुरी
८८. मेरी आत्मकहानी	डा० श्यामसुन्दर दास
८९. मेरी आत्मकहानी	चतुरसेन शास्त्री
९०. यात्रा के पन्ने	राहुल सांकृत्यायन
९१. ये और वे	जैनेन्द्र
९२. राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ	सं० ऋषि जैमिनी कौशिक
९३. रेखाचित्र	प्रकाशचन्द्र गुप्त
९४. रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी
९५. रेखाएँ बोल उठीं	देवेन्द्र सत्यार्थी
९६. रेखाचित्र	प्रेमनारायण टंडन
९७. रेखाएँ और चित्र	उपेन्द्रनाथ अश्क
९८. राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह व्यक्तित्व और कृतित्व	डा० कमलेश
९९. लाल तारा	रामवृक्ष बेनीपुरी
१००. वे जीते कैसे हैं	श्रीराम शर्मा
१०१. शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर
१०२. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	गोविन्द त्रिगुणायत
१०३. शिवपूजन रचनावली चौथा खण्ड	
१०४. शैली और कौशल	सीताराम चतुर्वेदी
१०५. सिद्धांतालोचन	धर्मचन्द संत बलदेव कृष्ण
१०६. साहित्य की झाँकी	गौरीशंकर सत्येन्द्र
१०७. सुमित्रानन्दन पंत स्मृति चित्र	सं० राजकमल प्रकाशन
१०८. सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी	बनारसीदास चतुर्वेदी
१०९. सावनीसमां	राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह
११०. सूरदास	वही
१११. सिंहावलोकन भाग १ से ३ तक	यशपाल
११२. साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण	किशोरीदास वाजपेयी

१३. साहित्यिकों के संस्मरण	सं० ज्योतिलाल भार्गव
१४. संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी
१५. साधना के पथ पर	हरिभाऊ उपाध्याय
१६. समीक्षा शास्त्र	डा० दशरथ ओझा
१७. सीधी चढ़ान	कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
१८. स्मृति की रेखाएँ	महादेवी
१९. सुकवि संकीर्तन	महावीरप्रसाद द्विवेदी
२०. स्तालिन	राहुल सांकृत्यायन
२१. साहित्य की मान्यताएँ	भगवतीचरण वर्मा
२२. साहित्य विवेचन	क्षेमेन्द्र सुमन
२३. साहित्य चिन्तन	इलाचन्द्र जोशी
२४. सिद्धान्त और अध्ययन	गुलाबराय
२५. हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास	चन्द्रावती सिंह
२६. हरी घाटी	रघुवंश
२७. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा	डा० रामअवध द्विवेदी
२८. हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२९. हिन्दी साहित्य की परम्परा	हंसराज अग्रवाल
३०. हिन्दी साहित्य का इतिहास	ग्रियर्सन
३१. हिन्दी साहित्य का इतिहास	श्यामसुन्दरदास
३२. हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास	अयोध्यासिंह उपाध्याय
३३. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	सूर्यकान्त शास्त्री
३४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा
३५. हिन्दी पुस्तक साहित्य	माताप्रसाद गुप्त
३६. हिन्दी साहित्य का इतिहास	हजारीप्रसाद द्विवेदी
३७. हमारे नेता	रामनाथ सुमन
३८. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	रामबहोरी शुक्ल

ENGLISH

1. Dictionary of World Literature by Shiply.
2. Design and Truth in Autobiography by Ray Pascal.
3. Encyclopaedia Britannica.
4. History of World Literature by Hudson.
5. Literary Biography by Leon Edol.
6. One Mighty Torrent by Edgar Johnson.
7. Personality by Gardener Murphy.
8. The Making of a Healthy Personality by Helen Leland Witmer Ruth Kotinsty.
9. Theory of Criticism by Wallook.
10. The Art of Writing by Andre Maurais.
11. Development of English Biography by Harold Nicolson.
12. Experiment in Autobiography by H.G. Wells.
13. Samuel Pepys in the Diary by Percival Hunt.

●